UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178856

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/S71S Accession No. G.H. 247

Author सोपान ।

Title संज्ञानी । 1937

This book should be returned on or before the date last marked below.

सं जी व नी

१

नवसर्जन ग्रन्थावलि

पानकोर नाका

अ ह म दा बा द

अक्तूबर] [१९३७

इस लेखक की अन्य गुजराती पुस्तकें:—

अंतरनी वातो : [जब्त]

संजीवनी : [तीसरी आवृत्ति]

प्रायश्चित्त : प्रथम भाग [दूसरी आवृत्ति]

प्रायश्चित्त : दूसरा भाग [,,]

लग्न—एक समस्या :

झांझवांनां जळ :

अंतरनी व्यथा :

आत्मभान : [अप्रगट]

जागता रे'जो : [,,]

कल्याणमूर्ति : [,,]

सं जी व नी

लेखक

सो पा न

अनुवादक

इन्दु वसावड़ा

प्रकाशक

शान्तिलाल छोटालाल परीख

भारती साहित्य संघ

अहमदाबाद

वर्ष पहला] [पुस्तक पहला

: संपादक :

इन्द्र वसावड़ा

कान्तिलाल शाह

सर्व हक्क लेखक के स्वाधीन

कीमत

कच्चा पुठ्ठा	पक्का पुठ्ठा
१–१२–०	२–०–०

भारती साहित्य संघ

पानकोर नाका : अहमदाबाद

: : शाखाएं : :

डेन्सो होल : प्रिन्सेस स्ट्रीट : सौराष्ट्र रोड

कराची बंबई राजपुर

राष्ट्रधर्म की ज्योति को अपने मूक स्वार्पण से
प्रज्वलित रखनेवाले भारतवर्ष के ग्राम्यसेवकों को
नम्रतापूर्वक अर्पण

सोपान

उत्क्रान्ति के विचार फैलाता हुआ बारहसो पृष्ठों का उपयोगी साहित्य आपको घर बैठे हुआ ही नीचे के वार्षिक मूल्य से मिल सकेगा।

: देश में :	: परदेश में :
कच्चा पुठ्ठा : रु. चार	कच्चा पुठ्ठा : शि. आठ
पक्का पुठ्ठा : रु. पांच	पक्का पुठ्ठा : शि. दस

: मुद्रक :
नागरदास मोहनलाल
स्वाधीन मुद्रणालय
राणपुर (काठियावाड)

आशीर्वचन

हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरवान्वित स्थान मिल गया तबसे हिन्दी के स्वरूप में और उसके सामर्थ्य में क्रान्ति हो ही गई ऐसा समझना चाहिए। यह क्रान्ति आज भले ही ध्यान में न आवे किन्तु वह हो चुकी है इसमें संदेह नहीं है। हिन्दी का कलेवर संस्कृत भाषा से पैदा हुआ है। अरबी और फ़ारसी साहित्य ने उसे चाहे जितना पोषण दिया हो किन्तु हिन्दी हमेशा के लिये संस्कृत की ही पुत्री कहलायगी। भारत की सब प्रांतीय भाषायें भी संस्कृत कुटुंब की ही हैं इसलिये भारतभर के सब साधुओं ने

हिन्दी के द्वारा ही अपना संदेशा अपने जमाने को दे दीया था। आज की राष्ट्रीय जागृति सारे भारत को फिर से एक कर रही है। ऐसे समन्वय-युग में हिन्दी को अपनाना सब प्रान्तों का स्वभावधर्म हो पडा है। जब दक्षिण के द्राविड लोगों ने भी हिन्दी में साहित्य का निर्माण शुरू कर दिया है तब गूजरात-महाराष्ट्र हिन्दी को अपनावें इसमें आश्चर्य ही क्या है?

इतिहास-विधाता की योजना ही ऐसी मालूम होती है कि पंजाब और युक्तप्रान्त हमारे राष्ट्रसंगठन में जटील समस्याएं पैदा करें और हम दक्षिण और पश्चिम के लोग अपनी नम्रता के कारण उन्हें हल करें। बेशक हिन्दी उत्तरीय भारतीय भाषा है। उसके व्याकरण में और महावरों में तबदीली करने का अधिकार आज हमारा नहीं है, किन्तु हमारे लिये हिन्दी कोई परायी भाषा नहीं है कि हम उसके साहित्य निर्मित कर के भारत की सेवा न कर सकें। सेवा का अधिकार सार्वभौम होता है।

अब सभी प्रान्तों में हिन्दी की प्रकाशनें शुरू होंगीं और भारत को अखंड और समर्थ बनायंगीं। इस नयी प्रवृत्ति के प्रारंभरूप यह प्रकाशनमाला मेरी नजर के आगे उपस्थित हुई है! मैं इसका अभिनंदन करता हूं और उत्तरीय भारत से प्रार्थना करता हूं कि इस प्रवृति के तरफ प्रेम की दृष्टी से देखें।

वर्धा ता. १७ : ८ : ३७ काका कालेलकर

संचालकों की ओर से-

समाज, धर्म और राष्ट्र के जीवन में जो शुभ परिवर्तन हम आज देख रहे है, उसीका पोषण करनेवाला-उसमें वेग देने वाला साहित्य हम प्रकाशित करें और फैलावे-यह हमारी भावना है। यह संस्था गत ढाई बर्ष से गुजराती-साहित्य-क्षेत्र में अपना काम कर रही है। गुजरात और बृहद् गुजरात के सैकड़ों नहीं वरन् हजारों घरों मे इस संस्था का साहित्य फैला हुआ है। गुजरात के अग्रगण्य साहित्यकों ने और लोक-सेवकों ने इस संस्था को अपने आशीर्वचनों से दृढ बनाया है।

हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश करने के पहिले हिन्दी जनता से नम्र प्रार्थना करते है कि हमें गैर प्रान्त के समझकर हमारी अवगणना न करें। हमारी भावना गैर प्रान्त में प्रवेश करने की नहीं-उस में ओतप्रोत हो जाने की है। इस संस्था की आशा तो यह है कि धर्म, ज्ञाति और प्रान्त प्रान्त के बंधनों को तोड़कर एक विशाल भावना जगाकर अखिल भारत के-राष्ट्र के-साहित्य में ओतप्रोत हो जाना-एक हो जाना-व्याप्त हो जाना। इस संस्था के कार्यकर्ता लोग आज तो गुजराती हैं-पर उनमें ऐसे भी गुजराती है जिन्होंने मध्य भारत, युक्त प्रांत और राजपूताने में बरसों-बीताये हैं, और हिन्दी की सेवा की है।

इस संस्था का जन्म तो दूर सिंध के करांची में हुआ है–और इसलिये हमें प्रान्त के बंधन छू नहीं सकते। अब अपने देश में राष्ट्र–सूर्य के उगने से प्रान्त और प्रान्त के बीच के भेद का कुहरा नष्ट होने लगा है और सारा भारतवर्ष एक देह में आत्मा के मुआफ़िक बन गया है। और इस एकता की भावना से भरे हुए आज राष्ट्रभाषा की सेवा करने चले हैं। हमें तो यह उम्मीद है कि कुछ ही समय में हम हमारी शाखाएं अजमेर, दिल्ही या इलाहबाद में खोल सकेंगे और वहां के मित्रों की मदद ले सकेंगें।

यद्यपि हमारे लिये हिन्दी–साहित्य–क्षेत्र नया ही है तथापि गुजरात में जो जो प्रवृत्तियां हम कर रहे हं उसका अल्प परिचय देना आवश्यक समझते हैं:–

(१) **ऊर्मि**–(मासिक) करांची से प्रगट होता है। गुजरात के श्रेष्ठ मासिकों में इसकी गिनती होती है।

गुजरात में जिनकी प्रतिष्ठा है और जिन्हें हिन्दी–साहित्य–प्रेमी लोग भी जानते हैं–वे हमारे काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला तथा गुजरात के अग्रगण्य लेखकवर्ग इस पत्र में लिखते हैं। वार्षिक मूल्य पांच रुपये।

(२) **नवरचना**–(मासिक) आम जनता को लक्ष्य में रखकर, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रश्नों की चर्चा इस मासिक में होती है। इसका वार्षिक मूल्य है मात्र दो रुपये। साथ वर्ष के अन्त में एक भेट पुस्तक भी दी जाती है। गुजरात का सस्ते में सस्ता यह मासिक है और इसका फैलावा भी सब से अधिक है।

(३) **अंजलि ग्रंथमाला**–इस ग्रंथमाला के पुस्तकों की

गुजरात के साहित्कारों ने और लोकसेवकों ने खूब प्रशंसा की है। गुजराती के प्रकाशनों में अपूर्व गिनी जायं इतनी प्रतें इसकी गुजरात में खपती हैं। आज गुजरात में यह सर्वश्रेष्ठ ग्रंथमाला गिनी जाती है। इसका वार्षिक मूल्य है रुपये चार। अत्यंत सस्ती और खूब फैली हुई है।

नूतन प्रकाशन मंदिर–ध्येयलक्षी पुस्तकें प्रकट कर रहा है। आज तक इसने दो प्रकाशन किये हैं **'लग्न–एक समस्या'** और **'झांझवांनां जळ'**। प्रथम पुस्तक की एक ही माह में एक हज़ार नकलें खप गईं थीं।

आरोग्य ग्रंथावलि–यह ग्रंथावलि थोड़े ही दिनों में प्रकट होने वाली है। नैसर्गिक उपचार की दृष्टि से इस माला में–आरोग्यरक्षण के उपाय और रोगों से बचने के तरीके बताती हुई पुस्तिकाएं प्रकाशित होंगीं। इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये।

नूतन साहित्य भंडार–हमारे तथा गुजरात के अन्य प्रकाशकों की शिष्ट पुस्तकें बेंचने को यह पुस्तक-भंडार खोला गया है। इसमें शिष्ट साहित्य के पुस्तक ही मिल सकते हैं।

इतनी प्रवृत्तियों के अनुभव बाद ही, हम हिन्दी साहित्य में प्रवेश करते हैं। हमें विश्वास है कि हिन्दी जनता हमारे प्रयत्नों को अपनायेगी और हम पर विश्वास रख, हमारी इस प्रवृत्ति को अधिक सुंदर, सस्ती और समृद्ध बनाने में सहायता देगी।

एक बात लिखने की खास आवश्यकता है। हम इस वार्षिक मूल्य में कम से कम बारहसो पृष्ठ देंगें ऐसी हमने घोषणा की है। **कम से कम** शब्दों पर आपका खास ध्यान खींचना चाहते हैं। ये शब्द मात्र लालच की दृष्टि से नहीं लिखे गये–किन्तु हमारे

मनोभाव व्यक्त करने ही के लिये लिखे गये है। गुजराती ग्रंथ-माला में हमने एक हजार पृष्ठ जाहिर किये थे और आज हम बारहसो पचास पृष्ठ दे रहे हैं। इसलिये इस ग्रंथावलि का एक ग्राहक होगा तो भी हम बारहसो पृष्ठ तो देंगें ही, बल्कि उम्मीद है–ग्राहक–संख्या बढ़ी और आपका सहकार मिला–तो बारहसो से अधिक भी देंगे। इस ग्रंथावलि में जुट जाने के बाद आप देख सकेंगें कि हमारा प्रधान हेतु-विचारों का प्रचार है–न कि पैसा पैदा करना। हमारी उम्मीद है की दो या तीन वर्ष में ही हम इसी वार्षिक मूल्य से पंदरहसो पृष्ठ दे सकेंगे।

इस वर्ष के पुस्तकों में अभी तो हमने तीन पुस्तकें देने का तय किया है। बाकी की पुस्तकों की जाहिरात हमारी द्वितीय पुस्तक में की जायगी।

(१) **संजीवनी**–एक अनोखा राष्ट्रीय उपन्यास।
(अक्तूबर में प्रसिद्ध होगी)

(२) **शोभा**–एक मौलिक सामाजिक उपन्यास।
(जनवरी में प्रसिद्ध होगी)

(३) **प्रायश्चित्त**–हरिजनों के प्रश्नों की चरचा करता हुआ उपन्यास।
(अप्रैल में प्रसिद्ध होगी)

भवदीय,

मुख्य संचालक

प्रवेशक

इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने को जब मुझसे कहा गया तब प्रथम विचार यह आया कि मैं इस–अपने क्षेत्र बाहर के काम में न पडूं। किन्तु लेखक के प्रेम और ममताभरे आग्रह को मैं हटा न सका। लेखक ने मुझसे कहा और पुस्तक पढ़ने के बाद मुझे भी लगा कि लेखक का ध्येय साहित्य की दृष्टि से साहित्य सर्जन करने का नहीं किन्तु सविनयभंग के संग्राम के बाद सैनिकों ने जो मनोवेदना और हृदयमंथन अनुभव किया है उनका निरुपण करने का ही है। इस पुस्तक में जिन सैनिकों के चित्र दिये गये हैं उनमें से एक खुद लेखक भी है, इस लिये सैनिकों की आशाएं, आकांक्षाएं, संकल्प, धर्मसंकट इत्यादि का जो वर्णन किया गया है वह पूर्णतया स्वानुभव से सना हुआ है। पुस्तक की भाषा जोरदार और भावपूर्ण है और शैली सरल और सीधी है। सेवा के विविध क्षेत्रों में कार्य करते हुए हमारे युवक युवतीयों को यह पुस्तक अत्यंत प्रेरणात्मक और नविन उत्साह देनेवाली साबीत होगी इस में संदेह नहीं।

इस समय अपना सविनयभंग का कार्यक्रम मोकूफ रहा है, किन्तु जब तक स्वराज्य-प्राप्ति न हो तब तक अपनी स्वराज्य की लडाई चल ही रही है और यह बात न भूलना चाहिए यह

ध्वनि सारी पुस्तक में गूंज रही है। 'संग्राम' यह एक शब्द ही मनुष्यों के चित्त में उत्तेजना पैदा करता है। शान्ति के समय में जो कार्य करनेका और जो भोग देनेका खयाल भी न आवे वैसे मुश्किल कार्य संग्राम के समय मनुष्य कर डालते हैं और संग्राम के निमित्त वे कोई भी भोग देने को तत्पर रहते हैं। फिर भी हिंसक युद्ध में जो मनोवृत्ति और वातावरण पाया जाता है वैसी ही मनोवृत्ति या वातावरण हम अहिंसक युद्ध में लावें तो हमारी भूल होगी। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो अहिसक युद्ध में लडाई जैसा कुछ है ही नहीं! कारण कि उसमें न तो किसीको दुश्मन ही गिनना है, न किसीका विनाश ही करना है, और न किसीकी बुराई। फिर भी अन्याय और जबरदस्ती का विरोध तो करना ही है! और ऐसा विरोध हो तब अन्याय और जबरदस्ती करनेवाला पक्ष विरोध करके सामने खडा हो जाता है और इसीसे लडाई का दिखावा होता है।

अहिसक और शांतिमय साधनों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के लिये दो प्रकार के कार्य करने की आवश्यकता है। एक-लोगों के बीच में रहना, अनेक सुख दुःखों में हाथ बटाना, उनके जीवन में ओतप्रोत होकर उनकी सेवा करना, उनके अर्ध भूखें देह को विशेष पोषण मिले; उनकी छोटी दैनिक आय में कुछ वृद्धि हो; उनकी आसपास की गंदकी और कुरूपता के बदले स्वच्छता का पदारोपण हो, उनकी निराशा और अज्ञान के बदले उत्साह और ज्ञान का संचार हो; उनकी दरिद्रता और कुसंप का नाश होकर समृद्धि और शान्ति की स्थापना हो; उनकी जूठी शंकाएं और डर नैश्त नाबूद होकर बुद्धि और निर्भयता का आगमन हो—यह सब करना है! तब ही प्रजा में स्वमान, स्वावलंबन और स्वातंत्र्य

की भावना जागृत होगी और इस प्रकार जागृत हुई प्रजा को स्वतंत्रता भुगतते हुए कोई रोक नहीं सकता। परंतु यह सब काम निर्विघ्न और शान्तिपूर्वक उसके निश्चित क्रम में चलता ही रहेगा ऐसी आशा न रखनी चाहिये। कितने ही कामों में राजकीय सत्ता बाधा डाले, कितनेक कार्य कायदे के फेरफार करने के बाद ही हो सकें, और कितने कार्य ऐसे भी हों जो सारा राज्यतंत्र बदले तब ही शुरू किये जा सकें। कार्य जब चल रहा है तब-जिन के कार्य में बाधा पडती हो वे लोग विरोध करें यह अत्यंत स्वाभाविक है। ऐसे अवसरों पर जहां २ अन्याय और जबरदस्ती दिखाई दें, प्रतिकार करना आवश्यक है। कदाचित ऐसे समय पर असहकार भी करना पड़े, कोई समय राज्यद्वारी और सामाजिक सत्ता के सामने सविनयभंग का प्रयोग भी करना पडे-ऐसे प्रयोग को हम लडाई कहते हैं। सच कहें तो उपरोक्त कथित प्रजा के काल में अभिवृद्धि करनेवाले रचनात्मक कार्य का एक अंग है, उसीका उग्र स्वरूप है। किन्तु प्रथम प्रकार के शांत कार्य के बदले दूसरा प्रकार के उग्र कामों में बहुतों को अधिक रस पडता है। कानून का भंग कर या हुकम का अनादर कर जुलूस निकालने में, सभा भरने में, लाटियों का सामना करने में, जेल जाने में-इन तमाम कार्यों में मन चंचल और प्रेरित रहता है। ऐसे समय पर जो विशेष त्याग करने का होता है, विशेष कष्ट सहन करने का होता है वह थोडे ही समय के लिये है ऐसा भीतर ही भीतर आश्वासन भी रहता है। इस लिये मनुष्य अपनी परिस्थिति का, कौटुंबिक जवाबदारीओं का, अपनी स्वार्थी अभिलाषाओं का विचार करने नहीं बैठता और कूद पडता है। तथापि अधिक महत्त्व का तो उपर कहा हुआ शान्त और

मूक कार्य ही है। उस काम बिना दूसरा गर्म काम संभवित ही नहीं। वह काम जितना संगीन और मजबूत होगा उतनी ही सफलता दूसरे गर्म काम में मिलती है।

सविनयभंग का कार्यक्रम समेट लेते समय गांधीजी ने तो तमाम सैनिकों को इस थंडे रचनात्मक कार्य में जुट जानेकी सलाह दी थी। किन्तु जेल में से ज्यों २ सैनिक लोग छूटते गये त्यों २ कोई विद्याभ्यास में, तो कोई शादी करने में, तो कोई पत्नी और बालकों को पढ़ाने में, कोई कुटुम्ब के कर्ज़ अदा करने में, तो कोई कमाने में–इस प्रकार के विविध व्यवसाय में पड़ते गये। असहकार और सविनयभंग जैसी उत्तेजना इस शांत कार्य में न हो यह देखी हुई बात है। उस में दृश्य परिणाम भी जल्द दिखाई नहीं देता। प्रेक्षक-वर्ग वाहवाह की प्रशंसा-ध्वनि का उच्चारण करे ऐसे प्रसंग भी इस में नहीं है। कार्य का तमाम रस और उत्साह बाहर के वातावरण में से नहीं किन्तु भीतर से ही प्राप्त करनेका होता है। फिर यह काम ऐसा होता है की जो सेवक के जीवन में अनेक परिवर्तनों की अपेक्षा रखता है। जीवन में संयम और सादगी प्राप्त करना, आवश्यकताएं घटाना, अंग–महेनत मजूरी करना और यह सब कर के लोगों के हित के और लाभ के लिये कार्यक्रम की योजना करना और उन्हें सफलतापूर्वक चलाने का कोशल प्राप्त करना यह कोई सहल बात नहीं। तथापि कोई विरल व्यक्तियों के हृदय में स्वराज्य-प्राप्ति की प्रतिज्ञा की याद आज भी मौजूद है और वे अपने इस दुष्कर कार्य में डटे हुऐ हैं, हालांकि तमाम वातावरण बदल चुका है और उनके मार्ग में अनेक बाधाएं और कठिनताएं सामने खडी होती हैं। इन कठिनताओं और विरोधों की तथा याहोम करके पडे हुए सेवा–

वीरों की जो असर उनके साथीओं तथा कुटुम्बीजनो पर पडती है उनके सच्चे चित्र ईस पुस्तक में लेखक ने बलपूर्वक तथा सफलता से चित्रित किये हैं।

अंतिम निर्णय पर आने के पहिले सेवकों को कैसी २ समश्याओं को सुलझाना पडता है यह देखें। प्रथम प्रश्न कुटुम्ब का उपस्थित होता है। मातापिता कहते हैं हमने दुःख झेलकर इतना बडा किया, पढ़ाया-लिखाया और अब ही—जब कि तेरे ऊपर आधार रखकर निश्चिंत रूप से जीवन बिताने की आशा रखते थे—तुझे देशसेवा की सूझी है। तू संग्राम में गया तब हमने कुछ कहा था? किन्तु अब लडाई कहां है? सब अपने २ धंधों में जुट गये है और तू ही अकेले किस प्रकार से स्वराज्य लेने निकला है? इन तेरे छोटे भाईबहिनों की पढ़ाई लिखाई का इन्तजाम करना है! खैर! और सब का तो ठीक—पर इस बहुरानी का तो विचार कर। और यह तमाम कर्ज कौन अदा करेगा? इन सब प्रश्नों में से पत्नी और कर्ज के प्रश्न तरुण को संकट में डाल देते हैं। अपनी सामाजिक परिस्थिति—तरुणों को पत्नी पल्ले बांध देती है और आर्थिक परिस्थिति कर्ज। कर्ज से मुक्त हो ऐसा कुटुम्ब अपने देश में शायद ही हो। अनंत अपनी कठिनताओं का विचार करने बैठता है। उस समय दूसरी कठिनताओं के संबंध में तो मन मना लेता है किन्तु कर्ज उसे पागल-सा बना देता है। बापदादाओं का कर्ज अदा करना उसका धर्म है—वह सोचता है। अपने कितने ही महत्त्वाकांक्षी युवक लोगों बापदादाओं के कर्ज के बोझे से दबकर कामधंधे में जुट जाते हैं? अनंत का भी ऐसा ही होता है। वह बम्बई जाता है उस में पिता के प्रति फर्ज अदा करने के बजाय कुटुम्ब का कर्ज अदा

करने की भावना प्रधान कारणभूत है। और वह वृत्ति उदात्त तो है ही। किन्तु देशसेवा का, स्वराज्य-प्राप्ति का उसका पूर्व संकल्प अधिक उदात्त है। और इसीलिये बम्बई जाने से प्रतिज्ञा-भंग का आघात वह सहन नहीं कर सकता। पानी के बाहर जीस प्रकार मछली छटपटाती है उसी प्रकार वह भी छटपटाता है। और उसका कसा हुआ सुदृढ शरीर गलने लगता है—टूटने लगता है। उसकी इच्छा के अनुसार उसे रामपुर ले जाते हैं और उसके पिता भी लाचारी से सम्मति देते हैं। और अनंत फिरसे अपने प्रिय देशसेवा के कार्य में जुट जाता है। पर उसके कर्ज का क्या? कुटुम्ब का क्या? लेखक कहना चाहता है उसका जो कुछ होना होगा—होगा! उनका विचार कर घर बैठा जाय तो भारत माता का क्या हो? उसके करोडों दीन, दुःखी, दरिद्रों का क्या हो? यह एक दलील है। पर उस में मातापिता और कुटुम्ब का प्रश्न तो खडा ही रहता है। अपने देश में किसानों के कर्ज का प्रश्न दिन पर दिन तीव्र बनता जा रहा है। किसानों कि मुआफिक शहर में रहनेवाला गरीब मध्यम वर्ग भी कर्ज में डूबा हुआ है। कर्ज की धौंस सिर पर लादे हुए दोनों ही के लिये व्यवहार चलाना मुश्किल हो गया है। दोनों वर्ग ज़्यादा और ज़्यादा व्याजखोर लेनदार के पंजों में फंसते जाते हैं और निकम्मे बनते जाते है। आज की परिस्थिति में यानी जबतक की राज्यतंत्र अपने अनुकूल नहीं है तबतक इस प्रश्न को हम पूर्णतया हल नहीं कर सकते। पर नादारी का उपाय तो बडे लेनदेन के समय में ही अजमाया जा सकता है। इनेगिने शहरों के सिवाय और किसी जगह नादार बनना अच्छा नहीं समजा जाता। ऐसा करना हीन

वस्तु समजी जाती है। पर अपनी तमाम मिल्कत लेनदारों को देकर सारा ही अर्थव्यवहार फिर से शुरू करना यह सीधा और ईमानदार रास्ता है। पर कुटुम्ब के अन्य लोग इस बात में संमत न हो तो भी सेवाकार्य में पडनेवाले सेवक को कौटुम्बिक मिल्कत में से तमाम हिस्सा छोड़कर लेनदेन के उत्तरदायित्व में से मुक्त हो जाना आवश्यक है। बापदादाओं ने अपने विचार अनुसार खर्च कर जो कर्ज किया है और बहुत से तो आज की अन्यायी तथा जुल्मी समाजव्यवस्था तथा अर्थ-व्यवस्था के कारण ही कर्ज में फंसे हुए हैं—उस कर्ज को—माल-मिल्कत का त्याग कर, अपरिग्रह-वृत्त धारण कर सेवा करनेवाला पुत्र ऊंची से ऊंची नैतिक दृष्टि से भी अदा करने के लिये बंधा हुआ नहीं है।

पर इस प्रकार कौटुम्बिक उत्तरदायित्व को त्याग कर सेवा-कार्य में पड़नेवाले को एक चेतावनी देने योग्य है। उसका खुद का जीवन अतिशय सादा और कठिन होगा तो ही उसका कार्य शोभा देगा। घरपर मातपिता को दुःख भुगतना पड़ता हो और देशसेवा में पडा हुआ सशक्त युवान पुत्र मातापिता के बनिस्बत अधिक विलास-मय, अधिक सुखी, अधिक खर्चीला, अधिक ऐशआरामी जीवन बितावे तो समाज के नीति-तंत्र को अवश्य धक्का पहुंचेगा।

अनंत के जीतना ही महत्वपूर्ण दूसरा पात्र कान्ता का है। लेखक ने उसे अडिग निश्चयवाली तेजस्वी और वीर स्त्री-शक्ति चित्रित की है। अपने देश की स्त्रीयों की बेडीयां उस के द्वारा तुडवाने की लेखक की उम्मीद है! किन्तु मुझे लगता है की अपनी बहिनों की शृंखला तोडने के लिये कान्ता के बनिस्बत अधिक

शक्तिशाली और अधिक स्वावलंबी स्त्री की आवश्यकता है। गांधीजी की प्रेरणा से और खास कर असहकार के युग के बाद से अनेक बहिनें सार्वजनिक प्रवृत्तियों में आगे आने लगी हैं। किन्तु कुछ बिरले अपवादों के सिवाय लगभग तमाम बहिनें अपने कार्य में कोई न कोई पुरुष के सहारे की आशा रखती दिखाई दी हैं। पुरुषों को चाहिये कि वे उन्हें मदद दें। पर अपनी दूसरी बहिनों की जंजीरें तोडने का काम तो वे ही स्त्रियों कर सकेंगी जो पुरुषों की मदद की अपेक्षा किये बिना झूम सकने की ताकत रखती हैं। कान्ता जब सेवा के कार्य में अनंत की सहायता की याचना करती है तब वह स्त्री-शक्ति नहीं किन्तु सामान्य अबला प्रतीत होती है। किन्तु लेखक ने अंत में उसे अकेले ही दूसरे गांव में काम करने को भेजा है वह अच्छा ही किया है। बहिनों को पुरुषों की मदद बिना काम करने की दृढता बताना ही चाहिये। अकेली काम करने वाली बहिन स्त्री-समाज में तो अधिक काम कर सकेगी। अपने स्त्री-समाज में काम करने के लिये पुरुषों की सहाय शायद अंतरायरूप भी साबित हो।

युवक युवतियों को-चाहे सेवा के कार्य में ही-साथ हिलते मिलते देखकर प्रेक्षक लोगों के दिल में उनकी शादी का विचार एकदम आ जाता है ऐसा हमारे समाज का मानस है। इस पुस्तक के आरंभ में कितने ही पाठकों को लगा होगा की कान्ता और अनंत शादी करेंगे। सुमन को उनकी शादी इतनी महत्त्वपूर्ण लगती है की वह उसके लिये खास प्रयत्न भी करता है। परिणीत सेवक सेविकाएं अपने समाज में और खास तौर पर गामों में अधिक अच्छा काम कर सकते हैं या अपरिणीत, यह प्रश्न अनेक बार चर्चा जाता है। शायद परिणीतों को कोई सुलभताएं

अधिक मिल सकती हों–किन्तु आदर्श सेवा के लिये तो ब्रह्मचर्य आवश्यक है ही। इस दृष्टि से लेखक ने कान्ता और अनंत को लग्न-बंधन में नहीं बांधा है यह अच्छा किया है।

ऐसे सेवा के कार्य में किशोर किशोरीकाएं आगे आवें उस समय दूसरा महत्त्व का प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वे एक दूसरे के प्रति किस प्रकार बरतें? कितने किशोर किशोरी-काएं परस्पर स्वतंत्रता से हिलने मिलने में, अकेले हिरने फिरने में, एकांत में बातचीत और चर्चा करने में कुछ हर्ज़ नहीं मानते है, और इस प्रकार बरततें भी है! इस प्रकार की मान्यता और व्यवहार समाज में भय की बात है! वे मिलजुलकर कोई भी सार्वजनिक कार्य न करें, या बिलकुल बातचीत या विनोद न करें यह मेरे कहने का आशय नहीं। किन्तु साथ मिलकर सार्वजनिक कार्य करने वाले स्त्री पुरुष अपने वर्ताव के संबंध में अमुक नियम और मर्यादाओं का पालन करेंगे तो उसीमें उनका श्रेय है। अपनी निर्दोषिता और पवित्रता पर अधिक से ज्यादा विश्वास रख-कर परस्पर अधिक साथ रहना और [illegible] करना यह एक भय की बात है। लंबे अरसे तक इस प्रकार का अधिक स्वतंत्र बर्ताव और मेलजोल रखनेवाले मन से भी शुद्ध और विकार रहित रह सकेंगे यह मानना मुश्किल है। जैसे अति सहवास में से अनजानें भी परस्पर कामाकर्षण उत्पन्न होने की और मन पर के काबू गुमा बैठने का अंदेशा अधिक है। इसलिये हम दृढतापूर्वक अमुक मर्यादाओं को ठीक कर अपना व्यवहार चलाएंगे तो ही अपनी सार्वजनिक प्रवृत्तियां और अपने सामाजिक कार्य किसी प्रकार के विक्षेप बिना निर्विघ्न चल सकेंगे। अंग्रेजी में कहावत है की 'सीझर यानी राजा, और उसकी रानी किसी भी

शंका से पर होना चाहिये।' इसी प्रकार सार्वजनिक सेवा की प्रवृत्ति में काम करनेवाले स्त्री-पुरुष का चारित्र्य शंका से पर होना चाहिये। इस पुस्तक में कान्ता, विनु, अनंत, सुमन वगैरह के व्यवहार के कारण यह चेतावनी देना आवश्यक है।

पर मैं यहां सेवाकार्य की पद्धति लिखने नहीं बैठा हूं। इस पुस्तक के प्रवेशक के तौर पर इतना विवेचन काफ़ी है। लेखक ने अपना अनुभव कुशलतापूर्वक देकर अपने साहित्य में कीमती और उपयोगी अभिवृद्धि की है। इस लिये उनको बधाई देकर खतम करता हूं।

नरहरि द्वारकादास परीख

अनुवादक का वक्तव्य

'संजीवनी' जब पहिले पहल पढ़ी तब ही विचार हुआ था कि प्रचार की दृष्टि से इस का अनुवाद राष्ट्र-भाषा में हो तो अच्छा। सत्याग्रह-संग्राम के बाद फैले हुए नैराश्य में यह पुस्तक संजीवनी का काम करेगी। पर तब यह संभावना भी न थी कि भारती साहित्य संघ की स्थापना होगी, और 'संजीवनी' को 'नवसर्जन ग्रंथावलि' की प्रथम पुस्तक की तौर से दे सकेंगे; न यही पता था कि अनुवाद का कार्य मुझे ही करना होगा।

'संजीवनी' का गुजरात में काफी सत्कार हुआ है और इसी से इस देढ वर्ष में ही पुस्तक की तीन हज़ार से अधिक नकलें खप चुकी हैं, और तीसरी बार छप रही है।

पढ़ते समय जितना रस आया उस से अधिक रस आया अनुवाद करते। अनुवाद की भाषा सरल और सीधी रक्खी गई हैं। पर दुःख एक बात का है कि प्रथम तीनेक फरमों में अशुद्धियां अनेक रह गई हे। पर इसका एक कारण है। स्वाधीन मुद्रणालय का–जहां कि यह पुस्तक छपी है–यह हिंदी में छापने का प्रथम प्रयास है। आशा है पाठकवर्ग इन्हें निभा लेगा। भविष्य में यकीन दिलाते हैं की ऐसी अशुद्धियां न रहने पावेंगीं।

क्या अंत में नचिकेत, अरविंद और नंदकुमार का–कि जिन्होंने मुझे मेरे कार्य में सहायता दी है–आभार स्वीकारूं?

विले पारले
जुहु रोड
'गांधी जयन्ति'
ता. २ : १० : ३७

इन्द्र वसावडा

अनुक्रम

	प्रवेशक	१३
१	नैराश्य की छाया	२५
२	मध्यरात्रि में ...	३०
३	रामपुर छोड़ा ...	३६
४	अनुभव मिलने लगे	४१
५	सुमन के घर ...	४८
६	कान्ता	५५
७	अनंत का हृदय ...	६५
८	स्त्री-शक्ति ...	७१
६	अगम्य की याद ...	८१
१०	आश्रम पर ...	८८
११	सैनिक का धर्म ...	६६
१२	सुमन	१०३
१३	स्वाद ही नहीं ...	१०८
१४	भागने की तैयारी...	११४
१५	माँ बाप	१२०
१६	रेवाबाई धर्मशाला में	१२७
१७	घर की राह... ...	१३१
१८	प्रेम की समाधि ...	१३६
१६	उस रात को ...	१४०
२०	सुधारक पिता ...	१४६
२१	पिता-पुत्री... ...	१५३
२२	स्वप्न और जाग्रति	१५६
२३	यह पलटा ! ...	१६४
२४	बादल चारों ओर...	१७१
२५	मेरा देश	१७५
२६	विनु का पत्र ...	१८०
२७	घर का प्रश्न ...	१८५
२८	कुटुम्ब-धर्म ...	१६२
२६	धंधे की तलाश ...	१६८
३०	सुमन को मनोराज्य	२०८
३१	अन्त में घर छोड़ा	२१४
३२	विचित्र अनुभव ...	२२०
३३	इकरार	२२६
३४	बम्बई की ओर ...	२३३
३५	पिता का हृदय ...	२४०
३६	अनंत के समाचार	२४६
३७	परिवर्तन	२५२
३८	कान्ता की प्रेरणा	२६०
३६	प्राणक्षय	२६८
४०	भयंकर बीमारी ...	२७३
४१	स्वराज्य के साधक	२८१
४२	रामपुर में	२८६
४३	मूक वेदना ...	२६०
४४	मिलन	२६४
४५	यह परिवर्तन ! ...	२६६
४६	रामपुर के रास्ते ...	३०५
४७	अमुभाई न समझे	३१०
४८	प्रेम और धर्म ...	३१५
४६	सुमन निराश हुआ	३१८

१

नैराश्य की छाया

संध्या का समय। भादर नदी की रेत में दो युवक टहल रहे हैं। सिर नीचा—मंद मंथर गति मानों कोई अथाग विचार में डूबे हो—वे चुपचाप नदी के प्रवाह की ओर चले जा रहे हैं। दूर दूर क्षितिज में संध्या खिली है—पर दोनों का ध्यान उस ओर नही है—उस अपार्थिव सौंदर्य को लूटने में नहीं है। मानों तमाम इन्द्रियां शिथिल होगई हों—बधिर होगई हो—वे चले जा रहे हैं—आगे आगे उस रेती के पट पर जो नदी के इस ओर लेटा हुआ है। न पक्षियों का कलरव उन्हें जगाता है न वापिस लौटती गौओं के गलों की घंटियां तोड़ती हैं उनकी विचार समाधि।

मन्दर कदम बढ़ाते, वे रामपुर से एकाध मील दूर निकल आये हैं! संध्या की लाली अब डूब गई है और कृष्णपक्ष की अष्टमी का अंधेरा छा गया है। वनराजि शांत है। इस शांति का भंग किया अनंतने।

"वापिस लौटेंगे?"

"अच्छा" आसपास के अंधकार में दृष्टि फेंकते हुए विनुने कहा।

दोनों वापिस लौटने लगे। फिर शांति व्याप्त होगई। कोई कुछ न बोलता था।

"फिर क्या तय किया ?" एक दो खेतों को छोड़ने के बाद विनुने पूछा।

"अभी कुछ तय नहीं कर पाया विनु। एक समय तो सबको मिल आने की इच्छा होती है। देख तो आऊँ कैसे जीवन बिता रहे हैं वे ?"

"पर जाने से फायदा ?"

"फायदे बायदे से मतलब नहीं। मन का समाधान तो होगा ही। इस चरखे-धुनई, घंटी और झाडु के साथ जीवन व्यतीत करते करते शंकाएं उठने लगी हैं। या तो इन शंकाओं का समाधान करना होगा-या इन सब को छोड़ देना।"

"पर इसके लिये उन सब मित्रों से मिलने की आवश्यकता ? क्या हम सोच नही सकते ? हम में विचारशक्ति नहीं ? जो हमारी मज़ाक करना चाहते हों करें। अगर हम जो कुछ कर रहे हैं सच है—

"यह मै भी समझता हूँ-पर मैं सोचता हूँ हमारे दिनु भैया और चंपक; गनपत और हीरा-ये सब यहां क्यों नहीं हैं ? विचार करता हूँ और मन कहता है कि जो काम कर रहे हैं-जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं-वही सच्चा है-पर फिर विचार उठता है जिन मित्रों के साथ चार चार वर्ष बिताये, जिनकी बुद्धि-प्रभा और बलिदान-शक्ति के अनेकों बार दर्शन किये वे सब आज यहां क्यों नहीं हैं ? और एक के बाद दूसरी-शंकाएं मन में घर

करने लगती है।" विनु की ओर देखते हुए अनंत बोला; "और सुना तेने ? दिनु भैया और चंद्रकांत तो विलायत जा रहे हैं।"

"मैंने तो बहुत कुछ सुना है। आज प्रातःकाल ही दादा का पत्र था जिसमें दिये हैं समाचार अपने तमाम मित्रों के। शांतिने एक प्रेस में नोकरी करली है। चमनने कटपीस की दुकान खोली है और अरुण एक छापखाने में काम कर रहा है। और अपना प्रेमचंद, कोठारी, पंडित......"

"बस बस ! विनु ! सुनना नहीं चाहता। उन्होंने सोच लिया है स्वराज्य मिल गया।"

"अभी खास समाचार बाकी है। अपनी सुशीला बहिन और दिनु भैया की शादी तय होगई है। विलायत से लौटनेपर दिनु भया विधिसर उनका पाणिग्रहण करेंगे। तुलसी की भी सगाई होगई। चंपक उर्मी फेर में है। और प्रेमचंद..."

"विनु" बीच ही में अनंत बोल उठा, "यह सब सुनकर तुझे कुछ नहीं होता !"

"अगर हो तो भी क्या ? पर डंका बजते ही सब दौड़ते चले आयगे। समझे ?"

"पर वह तो एक निरा पागलपन ही है न ?"

"पागलपन कहो या अक्लमंदी। पर सत्य स्थिति यह है। 'डंका बजा और सब गाने लग जायँगे' "सर जावे तो जावे पर......" और उस समय अगर सिर दे देने का अवसर आया तो वे अपना सिर भी दे देंगे।"

इसी बातचीत में गाम भी आ गया । मन्दिर में आरती हो रही थी । दोनों सुनते सुनते आगे बढ़े ।

"चलो जाएं, जल्दी करें । मन्दिर में सब लोग इकट्ठे हो गये होंगे ।" अनंत ने कहा ।

गाम में आ पहुंचे । अंधेरी गलियों में से हो, आरती खतम होने के पहिले मन्दिर में आ गये । गांव के लोग बैठे इन्हीं की बाट जोह रहे थे ।

"बहुत दूर निकल गये थे ?" एक किसान ने पूछा ।

"हां, आज तो हवाखोरी करते करते माता की देरी तक पहुंच गये ।" विनुने जवाब दिया; बैठ गये, जन समूह आसपास बैठ गया ।

"अब तो तुम लोग भी हम जैसे हो गये हो । रातको भी रास्ता बास्ता नहीं भूलते ।"

"हो ! अब कैसे भूल सकते हैं ।"

"अच्छा तो वह भजन चलने दो ।"

"कौनसा ?"

" वही ! 'मन लागो' "

विनुने भजन शुरू किया । 'मन लागो मेरो यार फकीरी में ।' भजन हो रहा था और अनंत विचार सागर में गोते लगा रहा था । मनमें आज शांति नहीं है । भजन के बाद गाम-देश परदेश के समाचार सुनाये गये-पर अनंत कुछ न बोला ! और जब विसर्जन का समय हुआ तब किसीने कहा ।

"आज अनंतभाइ को घर की याद आती दीखती है ।"

उसे स्वतः घर की याद न आई थी । पर किसीने उसे घर की याद दिलाई थी । दो दिन हुए, और घर से खत आया था । माताजी बहुत बिमार हैं—चले आओ । और इस समाचार ने उसे गमगीन बना दिया था ।

धीरे धीरे सब जाने लगे—और जबतक चारों ओर पूर्णतया शांति व्याप्त न होगई—अनंत ने अपने विषाद को दबाने की, और मुह पर कृत्रिम हास्य लाने की कोशिश जारी रक्खी । सब लोगों के चले जाने के बाद विनु और कृपेश ने बिस्तर बिछाया । अनंतने अपनी दरी बिछाई, सिरहाने अपने कपड़े रक्खे और लेट गया ।

कुटुंब का प्रश्न अनंतने इसके पहिले अनेक बार विचारा था; और हरेक समय कुछ न कुछ समाधान कर—वह प्रवृत्ति में मशगूल हो गया था सोचता हुआ कि प्रश्न अब हल हो गया है । पर माह दो माह बाद फिर से वही प्रश्न खड़ा हो जाता—अपनी विकट समस्याओं सहित—और अनंत घबरा उठता ।

घर हो आऊं ? वह सोचता—पर फिर विचार बदलता 'अब घर बार कौनसा ! वह तो सैनिक है, राष्ट्रसेवक है—सन्यासी है । और फिर वह दृढ हो जाता ।

लंबी रात तक अनंत करवटें बदलता रहा । रामपुर छोड़ने की इच्छा मानो प्रबल होने लगी—इन विनु और कृपेश को छोड़ कर चला जाय ।

और विचारों ही विचारों में अनंत की आंखें मुंद गई—रामपुर गाँव के मन्दिर में अनंत, विनु और कृपेश खर्राटे लेने लगे ।

२

मध्यरात्रि में

"विनु ! तो मैं आज जाता हूं। कुछ दिन तुम और कृपेश मेरे काम को सांध लेना !"

"अच्छा ! हो आओ। पर जाने में मुझे कुछ सार दिखाई नहीं देता।" विनुने जवाब दिया।

उसी नदी के किनारे प्रातःकाल दातन करते हुए दोनों बातें कर रहे थे। पास ही कृपेश खड़ा था।

"तो अनंतभाई कहां जा रहे हैं ?" सोलह साल के सुकुमार कृपेशने पूछा।

"ओह ! सच, कल तुम साथ न थे क्यों ?" अनंतने कहा, "मैं अहमदाबाद, बंबई वगैरह घूम आना चाहता हूं"।

कृपेश साश्चर्य देख रहा था !

"पंद्रह बीस दिन में वापस आ जायेंगे" विनुने कृपेश की ओर देखते हुए कहा।

"पर जाते क्यों हैं ?" कृपेशने विनुसे पूछा।

"अनंतभाई कहेंगे" विनु बोला।

अनंत कुछ शरमा गया। सूझा नहीं क्या जवाब दे।

"क्यों जा रहे हो अनंत भैया ?" कृपेश ने अब अनंत से पूछा।

"संग्राम के तमाम मित्रों को मिलने के लिये।" अनंतने जवाब दिया।

"मात्र मिलने ही को ?"

"हां—और देखने को कि वे सब क्या कर रहे हैं।"

कृपेश ने अधिक न पूछा। दातन बाद, बहती भादर नदी में कपड़े धो, स्नान कर, पो फटते पहिले अपने स्थान पर आगये।

रामपुर पांचसो की बस्ती का गाम। मुख्य बस्ती कुली और कुनबी लोगो की। बनियों के दो घर; और दो घर ब्राह्मणों के। एक मुसलमान का, एक नाईका, दसेक चमारों के और दस बारह भंगियों के। बस।

गत एक वर्षसे अनंत और विनु इस गाँव में ग्रामसेवक बन कर बैठ हैं। सत्याग्रह के दिनों में इन्हें इस गाव का ठीक परिचय हुआ था। सैनिकों को खिलानेवाले जब राज्यद्रोही गिने जाते थे, और एसे राज्य द्रोहियों के घर भी लूटे जाते थे, उस समय भी उस गाँव के किसानों ने सैनिकों को भूखे न जाने दिये थे। और संग्राम जोरों में छिड़ा हुआ था—कितने ही सैनिको ने निश्चय किया था कि संग्राम के बंद होने के बाद भी वे इस व को गाँव छोडेंगे—अपनी प्रवृत्तियों का इसे केन्द्र बनायंगे—पर उन अनेक सैनिकों में

से मात्र अनंत और विनु ही इस गाव में आये थे। और इन तीन चार महीने पहिले–आया था यह छोटा सा कृपेश। बस।

अनंत और विनु लगभग एक ही उम्र के थे। दोनो की उम्र तेईस तोईस वर्ष की थी। संग्राम के पहिले दोनों मित्र थे। इतनी गाढ़ मैत्रि थी दोनो में, कि लोग बाग इन्हें भाई ही समजते थे। संग्राम में जुड़ने के पहिले दोनो कोलेज में पढ़ते थे। एक दिन दिनुभाईने कोलेज में व्याख्यान दिया था, और बीस विद्यार्थी कोलेज छोड़ संग्राम में जुड़ गये इन में प्रथम था विनु। उस दिन दिनुभाई के व्याख्यान ने गांधीजी की प्रतिज्ञा याद दिला युवकों में चिनगारियां रख दी थी : "कुत्ते और कोए इस शरीर को नोच खाय, वन वन भटकना पड़े; पर स्वराज्य विना वापस न लोटेंगे" अनंत और विनुने प्रतिज्ञा ली थी।

पर उनके बारह साथियो में से एक भी व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय उपस्थित न था। पर उस दिन भी दिनुभाई तो थे ही। दीनानाथ के लिये अनंत के हृदय में खूब मान था। राष्ट्रसैनिक की तरह यदि उसका उत्थान का कोई जिम्मेदार था तो वह था दीनानाथ। दीनानाथ के शब्द अनंत के हृदय में बार बार गूंज उठते थे : "स्वराज्य–संग्राम अनंत काल तक क्यों न चलता रहे–हम थकनेवाले नहीं। मरेंगे तो भी वासना तो बनी ही रहेगी–और इसलिये दूसरे जन्म में भी इसी झंडे को फहराते फिरेंगे।" और अनंत मुग्ध हो जाता।

पर विनोद कुछ ठंडी प्रकृति का था। वह किसीकी ओर एकदम न खींच जाता। अनंत को वह बहुत चाहता था। अनंत के लिये वह कुछ भी करने को तैयार था।

जब कृपेश मेट्रिक में था, गांधीजी का आगमन हुआ उस के गाव में; और जब गांधीजीने युवकों को देहातों में जाने को आदेश दिया तो कृपेश का दिल पसीज उठा। उसने निश्चय किया जाने का देहात में। सत्याग्रह के दिनो में वह बच्चा था। राष्ट्रप्रेमी उसके पिता ने देहात में जानेकी उसे इजाजत दे दी। और कृपेश अनंत के साथ चला आया रामपुर में।

आसपास के प्रदेश में रामपुर की ख्याति थी। सरकार के दफ्तर में रामपुर का नाम बारडोली और बोरसद के साथ साथ लिखा गया था। रामपुर का किसान मर्द गिना जाता था। गाव में चमार और भंगी थे पर उनके वास अलग अलग थे गांव के लोग उनसे अच्छा व्यवहार रखते थे। अनंत और विनोद के प्रयत्नने परदेशी कपड़ा गाव से निकाल दिया था। गांव में घर घर चरखा चलता था। छोटे बच्चे तकली चलाते-स्कूल में भी तकली फिरती। पाठशाला सरकारी थी पर माष्टर साहब अनंत की सहायता से ही मानों पाठशाला चलाते थे। रात को आधा गाव मन्दिर में इकट्ठा होना और विनोद अनंत उनसे सुखदुःख की बातें करते।

महसूल और कर्ज से किसान लोग मुहताज हो गये थे- किन्तु व्यर्थ खर्चों में कमी सीखने से फिर भी उनकी स्थिति और गाँवों के किसानों मे अच्छी थी। शादी और कारज के खर्चों में खूब कमी होगई थी- एक चाय की होटल थी वह भी अनंत के प्रयत्न से बंद हो गई थी।

सत्याग्रह बंद हुआ, जेलमें से सैनिक लोग छूटे, और जब छावनियां तोड़ दी गई तो अनेक सैनिकोंने निश्चय किया कि कोई भी रचनात्मक

कार्य में वे जुट जायँगे । किन्तु पराजय की मार से अनेकों की कम्मर टूट गई थीं. और अनेक राष्ट्रव्यापी नैराश्य में इतने दब गये थे कि गये सो गये, और किसी न किसी काम में जुट गये । जब अनंत और विनु रामपुर आये तो उनके हृदय आशा से भरे थे— वे सोच रहे थे "हमारा 'जूथ' जमायँगे; और सारे गुजरात भर पर सैनिकों को भेज देंगे; और पांच वर्ष में तो गुजरात की सूरत बदल देंगे ।" पर जब सुना कि चमन नहीं आया और मगन भी—जब सुना कि गुलाबने शादी कर ली है और चिनुने भी—तो उन्हें भी निराशा घेरने गई ।

रामपुर में बैठे बैठे वे सेवा कार्य कर रहे थे । एक समाचारपत्र भी आता—और सारे देश के समाचार पाते और ग्रामवासियों को सुनाते; जवाहर के और सुभाष के, गांधीजी के और सरदार के व्याख्यानों को पढ़ते और सुनाते, पर अनंत को शान्ति न होती । भादर नदी के किनारे बसे हुए रामपुर में जीवन का संचार हो रहा था । जोम और उत्साह बढ़ रहा था । पर इधर अनंत की उत्साहाग्नि शांत पड़ती जा रही थी ।

एक दिन रात को अपने मकान से बहार निकल, अनंत भादर की रेत में खड़ा हो गया । समसम करती हुई मध्यरात्रि उसे भयंकर लगने लगी । भादर नदी का कलकल निनाद उसे बुरा लगने लगा । सामने लेटा हुआ रामपुर उसे निर्जीव, चेतना-विहीन मालूम हुआ । कभी नहीं और आज उसके मनमें प्रश्न उठने लगा "इस प्रकार स्वराज्य मिलेगा ?'

और फिर तो शंकाओं की परंपरा उठने लगी । "रामपुर में पचास से सो चरखे चलें । रामपुर के किसान बहार का माल

न खरीदें। रामपुर की स्त्रियां हाथ ही से चक्कियां चलावें। रामपुर के लोग अपने अपने आंगन साफ रक्खे, पर इससे स्वराज्य कैसे मिल सकता है? सात लाख देहातों में फैले हुए भारत की गुलामी की जंजीरें कैसे टूटे? रामपुर के पांच हरिजनों को गांव के लोग अपना लें पर इससे देश के करोडों हरिजनों की अस्पृश्यता कैसे नेश्त नाबूद हो?

अनंत को उत्तर मिलते थे-पर उन उत्तरों में उसे विश्वास न था। वह आज विश्वास खो बैठा था।

उस रात को लडाई और छावनी के संस्मरण उसके सामने सजीव हो नाचने लगे। दीनानाथ के अंगार जैसे व्याख्यान उसे याद आये। चंपक के युद्ध-गीत सुनाई दिये। कान्ति के सिर में मारी हुई पुलिस की लाठी और उस में से बहती हुई रुधिर की धाराएं याद आई। अनंत के नेत्रों के सामने हजार दृश्य खड़े हुए-और वह बोल उठा "इन्किलाब पुकारती वह सेना कहाँ?" पर जवाब न मिला।

वापिस आया। नींद न आई। विनु को जगाया। सब बात कही। "मुझे यहां अच्छा नहीं लगता। मुझे कुछ नहीं सूझता। यह हवा में लठ्ठ मारना है। इस से स्वराज्य नहीं मिलेगा।"

विनोदने एक वर्ष में जो परिवर्तन रामपुर में हुआ था, समझाया-पर अनंत को न समझना था। प्रातःकाल ही मित्रों ने फिर बातचीत की पर अनंत अपने विचार पर दृढ़ था।

३

रामपुर छोड़ा

नहा धो कर वापिस आने के बाद अनंत और विनु कातने लगे ।

"तो मैं आज जाता हूं" अनंत ने कहा ।

"यहां से प्रथम कहां जाओगे ?"

"भावनगर; और वहां से अहमदाबाद !"

"वापिस कब आओगे ?"

अनंत एक क्षण के लिये विनुकी ओर देखता रहा !

"विनु ! वापिस तो आउंगा ही । और यह भी याद रखना विनु ! कि जब आऊंगा तो इतनी श्रद्धा के साथ कि फिर रामपुर छोड़ने का नाम न लूंगा"

"ठीक है–पर अब भी मैं नहीं समझ पाता तुम क्यों जा रहे हो–क्यों जाना चाहते हो ।"

"तू भी ठीक है भाई । देख भैया । तेरे जितनी श्रद्धा–मनोबल मेरे में नहीं है । मैं अब समझने लगा हूं कि मेरे में और तेरे में कितना और क्या अंतर है । संग्राम के समय में मैं तुझसे अधिक आवेगी

और जोशीला था। मै ने तेरे साथ अन्याय किया है विनु।" अनंत के आवाज़ में कंपन था। "न्याय अन्याय तो ठीक ! पर कागज पत्र तो देना रहेगा न ! तेरे साथ वे लोग क्या क्या बातें करेंगे–क्या क्या दलील पेश करेंगे वह तो मै अच्छी तरह जानता हूं। पर फिर भी सूनना चाहता हूं कि किस प्रकार मनुष्य अपने आपको मूर्ख बनाता है–बनाने की कोशिश करता है।"

"विनु !" अनंत का गला रुंध रहा था। "तुझे अकेला अच्छा लगेगा ?" चरखा रुक गया था।

"अकेला ? मै अकेला ? पांचसो मनुष्यों का गांव यह–और मैं अकेला ?" विनुने कहा। उसके मुख पर हास्य था।

"पर..."

"पर क्या ?" विनोद का चरखा भी रुक गया था "अनंत ! तू सोचता होगा· इन मनुष्यों में से अपने जैसा कौन–हृदय खोल कर बातें कर सकूं ऐसा कौन ? किन्तु अनंत इसी में तेरी निराशा का कारण नहीं सूझता ? चार वर्ष के संग्राम, और एक वर्ष के रचनात्मक कार्य के बाद भी रामपुर में यदि एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो हमारे मनोरथों को समझ सके, हमारे हृदय की भावनाओं को समझ सके–तो क्या यह हमारे लिये शर्म की बात नहीं ?"

अनंत चूप था।

"तू सोचता होगा–मैं उपदेश दे रहा हूं–पर क्या यह बात सच नहीं कि हमारी प्रवृत्ति और हमारा हृदय एक नहीं है ? हमारे मनोरथ स्वराज्य के अलावा और क्या हो सकते हैं ? अपने दिल

के मनसूबे दीन दुखियों की सेवा के सिवा और क्या हो सकते हैं ? और यह बात रामपुर के लोग नहीं समझते ?" विनु अटका; और फिर बोलने लगा, "जा । तू जा । मै अभी तुझ से कुछ नहीं कहता । तू जा-सारे देश में हो आ-घूम आ-और वापिस लौट कर मुझसे कह हमारी पराधीनता का क्या कारण है ।" विनोद का आवाज़ बढ़ता जाता था । "दीनानाथ के पास जा और उसे पूछ आ कि वे किस लोक-कल्याण के लिये परदेश पधार रहे हैं ? चंपक के पाससे उसकी सगाई की बातें सुन लेना। कोठारी और पंडित से उनके प्राफसरोंकी बात चीत पूछ लेना । जा भैया जा । एक वार तो तू इन सब को देख आ । उन्हें ही क्यों ? देख आ, अपने नेताओं को, धन लुटाने वाले उन दिन्हों के धनिकों को, और फूल चढ़ाने वाले उन प्रजाजनों को-और देख आ अगर देशका सौभाग्य हो तो-देश के कोने में पड़े हुए अपन जैसे एकदो युवकों को ।"

विनु शांत हो गया। अनंत उसकी ओर देख रहा था मानों किसी आदर्श की मूर्ति को देख रहा हो। थोड़ी देर के लिये-मौन ।

"विनु ! मैं नहीं जाता" अनंत ने मौन तोड़ा ।

"नहीं, अब यहां रहना ठीक नहीं अनंत ! अब तो मेरा भी आग्रह है अनंत तू जा-जा और सब अपनी आंखों से देख आ। तेरे जाने में देश का कल्याण ही है अनंत ।"

जब अनंत जाने से इन्कार कर रहा था और विनु उसे जाने को आग्रह कर रहा था, कृपेश आया-और उसके साथ आया गांव के कुमारों का वृन्द ।

"वन्देमातरम्" पांच सात कुमार बोल उठे ।

"वन्देमातरम्" अनंत और विनुने हाथ जोड़ते हुए उत्तर दिया ।

"आज आप बंबई जाने वाले हो ?" एक बालकने आगे आकर पूछा ।

अनंत ने कृपेश की ओर देखा । वह समझ गया । बाड़ी में काम करते समय कृपेशने ही यह समाचार फैलाये होंगे ।

"हां क्यों ?" अनंत ने चरखा चलाते हुए कहा ।

"क्यों जाते हो ?"

"यूं ही । कुछ दिन टहलने ।"

"यहां मन नहीं लगता तुम्हारा ?" एक चौदह साल के बनिये के लड़के ने पूछा ।

"मन क्यों न लगेगा ?" अनंत का उत्तर । चरखा रुक गया था ।

"कृपेश भैया कहते थे तुम अपने दोस्तों को मिलने के लिये जा रहे हो; हमने कहा 'अनंत भैया तो हमें दोस्त कहते हैं" तो क्या हमारी दोस्ती तुम्हें अब नहीं सुहाती ? यहां अच्छा नहीं लगता ?" फिर उस कुमारने पूछा ।

"पर थोडे दिनों के लिये भी बहार नहीं जा सकते क्या ? तुम्हारे अनंत भैया एक महीने में तो वापिस आ जायँगे । समझे ?" अनंत को चूप देख कर विनुने चरखा चलाते चलाते ही जवाब दिया ।

"अगर बंबई पहुँचे—तो वापस नहीं आयेंगे जनाब" बनियो के लड़के ने कहा।

अनंत चमका।

"अरे विलायत जावें तो भी वापस आनेवाले हैं अनंत भाई। समझे? तुम्हारे बिना भला इन्हें कहीं सुहा सकता है?" विनुने अनंत की ओर देख कर बालकों से कहा।

कृपेश चूपचाप सुनता था। सब बालकों ने कृपेश की ओर देखा।

"बस? पूछ लिया? अब जाओ घर। नाश्तापानी कर आ जाओ स्कूल। समझे?"

हसते कूदते बालक–वृन्द बिखरे। कृपेश चरखा लेकर कातने लगा।

उस दिन शाम तक विनु और अनंतने मनभर बातें कीं। विनु स्वस्थ होकर सुनता था और जवाब देता था; और अनंत बार बार आवेश में आ जाता था। रामपुर छोडनेका उसे इतना दुःख न था जितना दुःख था विनु को छोड़ने का। विनुने संध्या को उसे बिदा दी। एकाध मील तक विनु, कृपेश और गाँव के कुछ लोग और बालबच्चे उसके साथ आये; और जब वे 'राम राम' और 'बंदे मातरम्' कर बिदा हुए तो अनंत की आंखें आंसू से छलछला आई। बड़ी देर तक उस राह पर खड़ा अनंत, लौटते विनु और गांव के लोगों को टळटळी लगाये देखता रहा, और जब वे सब ओझल हो गये, अनंतने स्टेशनकी ओर चलना शुरु कर दिया, वेगसे।

४

अनुभव मिलने लगे।

रामपुर से स्टेशन तीनेक मील दूर था। विचारों की तरंगों में गोते खाता हुआ अनंत स्टेशन आया। गाडी आने में अभी आध घंटे की देर थी। अनंत प्लेटफार्म पर टहलने लगा। सब से प्रथम भावनगर जाउंगा-विचारधारा कार्यरुप में परिणत होने लगी-वहां चंदुभाई, मगनभाई, प्रवीण और कान्ता बहिन-कान्ता बहिन ?-और विचार प्रवाह बदलने लगा।-कान्ता बहिन! इस समय मेट्रिक क्लास में पढ़ती है। तीन माह बाद वह मेट्रिक हो जायगी। फिर ? संग्राम में कान्ता बहिन कैसी लगती थीं ? सुशीला बहिन ?-हां अधिक गंभीर-और-शांत-पर उन में कान्ता बहिन जितना जोश नहीं। कान्ता बहिन तो मानों रणचंडी-और अनंत के नेत्रों के सामने कान्ता की मूर्ति खड़ी होगई। उस दिन उन्होंने सारी सभा को रूला दिया था-और उनका रुप कैसा भव्य ? बाल बिखरे हुए-केसरिया साड़ी-हाथ में त्रिरंगी राष्ट्रध्वज और जीभ पर इन्कलाब! पुलिस भी उनके सामने आंख न ऊठा सकते। और आज! आज! कुछ भी नहीं-सामान्य लड़की सी वे बनगई हैं।

दूर से ही आती हुई गाड़ी के प्रकाशने अनंत का ध्यान खींचा। छोटा सा स्टेशन था। तीन चार मुसाफिर लोग खड़े थे-गाडी को आते देख अपना २ सामान संभाल तैयार हो गये। गाडी आई-स्टेशन मानों कांप ऊठा। गाडी थोडी ही देर ठहरती थी-सामने ही के डिब्बे में अनंत चढ़ बैठा। पास ही के डिब्बे में बैठे हुए युवकने अनंत को देख पुकारा, पर अनंत सून न सका-उस डिब्बे में इतना शोर गुल मचा हुआ था। बैठ कर जब अनंतने दरवाज़ा बंद किया तो पता चला वह किसी कुनबी की जान के मध्य में बैठा है।

गाडी चल दी। अनंतने शृंगार में सज्ज लाड़ाजी को देखा। दसेक बर्ष का बालक गहनों और वस्त्रों से लदा हुआ था। स्त्रियों का समुदाय चिल्ला २ कर गला फाड़ २ कर गा रहा था 'लाड़ाजी की लाड़ी हो..." एकांत-प्रिय अनंतने ऊपर की सीट पर दृष्टि डाली-खाली थी। तौलिया बिछा, कपडों की थैली सिरहाने रख अनंत लेट गया।

दसेक मिनिट बाद एक स्टेशन आया। एक युवक खिड़की में अनंत को तांक रहा था।

"ओह! सुमन! तू?" नीचे ऊतरते अनंतने युवक से कहा।

"मैं तो ठीक। पर आप? कहां से आन टपके?"

"वाह! याद नहीं? रामपुर से।"

"पर तेने तो निश्चय किया था न गाँव न छोड़ने का?" सुमन ने फिर से पूछा।

"फिर कहूँगा। पहिले बता कहाँ बैठा है?"

"पास ही के डिब्बे में" सुमन ने उत्तर दिया ।

"वहाँ जगह है ?"

"हाँ, हाँ । चल तो । सामान क्या है थैली ही न ?" सुमन हँसा ।

"हाँ, और एक कम्बल" अपने सामान को समेटते अनंतने कहा ।

दोनों ऊतरे, सुमन के डिब्बे के लिये चल दिये ।

"बहुत दिनों बाद मिले न ?" सुमन ने कहा, "मैं रामपुर आनेवाला था । मैंने सुना था कि तुम लोग तो वहाँ से निकलने वाले नहीं–तो फिर विचार किया मैं ही हो आऊँ ।"

डिब्बे में बैठ गये । पास बैठे हुए एक पटेलने राम राम किया ।

"राम राम !" अनंत बोला "कहाँ तक ?"

"ए...भावनगर तक ।" पटेलने कहा और फिर पूछा "आप कठे ?"

"ओ ! मैं भी भावनगर तक ।"

"हूँ । भावनगर चल रहा है ?" सुमनने आश्चर्य से पूछा ।

"हाँ । क्यों ? आश्चर्य होता है ?"

"नहीं–नहीं–वैसे ही । खास काम होगा ।"

"काम तो क्या ? पर हाँ एक काम था–खास—"

"क्या ?"

"तुम लोगों को मिलने का और जानने का कि क्या मामला है।"

"अच्छा ? मज़ाक कर रहे हैं ?"

"मज़ाक नहीं। सच कहता हूँ। अपनी छावनी के तमाम दोस्तों से मिलना है।"

"अच्छा ? गाँव को संदेश सुनाना है ?"

"नहीं। उसका संदेश सुनना है।"

"अब रहने दीजिये – फिल्सुफी–सच बात बताइये। जनाब मन भावनगर क्यों तशरीफ ले जा रहे हैं ?"

"सच कहता हूँ–और कोई काम नहीं।"

"पर सब को मिलने से क्या काम है ?"

"आज विनु और हम रामपुर में बैठे हैं– मैं पूछना चाहता हूँ, वे घर क्यों बैठे हैं ?"

उस में क्या ख़ाक समजना है ? लड़ाई ख़तम हुई, और सब अपने २ घर गये।"

"पर किसने कहा लड़ाई बंध हो गई है ?"

"क्यों ?"

"कयों ?" अनंतने आश्चर्य से कहा : "क्या स्वराज्य मिल गया ?"

"स्वराज्य तो..." सुमन शब्द निगल रहा था "स्वराज्य तो न जाने कब मिलेगा–पर लड़ाई तो पूरी हो गई न ?"

"जब तक स्वराज्य न मिले तब तक लड़ाई कैसे खतम हो सकती है ?"

"पर इन परिस्थितियों में और हो ही क्या सकता है ?" सुमन का आवाज़ धीमा था।

"क्या हो सकता है ? क्या जेल में जाना ही एक काम है–एक रास्ता है ?"

"तो तू कहना चाहता है हमें गाँवों में बैठ जाना चाहिये क्यों ?"

"न। स्वराज्य के लिये कुछ न कुछ करना चाहिये। इसी लिये मैं भावनगर जा रहा हूं। मैं देखना चाहता हूँ–हमारे मित्र लोग किस कार्रवाई में पड़े हैं।"

"भई, और कोनसी कार्रवाई ? दालरोटी की कार्रवाई।" सुमन हँस रहा था, "वह प्राणलाल था न–मिल में भरती हो गया। कनुभाई ने साबुन की एजन्सी ले ली है; और अपने केशुभाई पुस्तक भंडार खोलने की योजना में हैं। समझे ?"

"हँ, और तू ?" अनंत ने पूछ डाला।

"मैं–मैं–अभी विचार में हूँ।"

"किस विचार में है ?

"मैं...अपने चचा की इन्फ्लुअन्स से रेवेन्यु दफ्तर में भरती होने के विचार में हूँ" सुमन बोला–पर शर्म से सिर झुक गया था ।

"शाबाश । दोस्त ।" अनंत के शब्द वज्र जैसे थे ।

"तो भैया–और क्या करूं ?" शब्दों में नम्रता थी–दीनता थी "अनंत ! और कुछ होना असंभव है । रामपुर में, मै नहीं आसकता, और भावनगर में क्या कर सकता हूँ ?"

"क्यों ? रामपुर में क्यों नहीं आसकते ?"

"मै–मैं ग्राम्य–जीवन नहीं बिता सकत्ता ।"

"भई वाह । रामपुर में ऐसा क्या है कि तू वहाँ नहीं रह सकता ! गाँव की सीम पर नदी बहती है । गाँव की प्रदक्षिणा करते वृक्षों के झुरमुट हैं । गाँव में अनेक सुंदर बाड़ियां हैं । शुद्ध घी, दूध और अनाज मिलता हैं । रामपुर से क्यों डरता ?"

"यह सब ठीक है पर–पर मै वहाँ रह ही नहीं सकता–गाँव मुझे सुहा ही नहीं सकता ।"

"हूं ।" और अनंत चूप था ।

"सोवेंगे नहीं ?" कुछ देर बाद सुमन बोला । "यहाँ सोना हो तो यहाँ, नहीं तो ऊपर ।"

"मैं ऊपर जाता हूं" अनंतने कहा–और दूसरे क्षण वह अपने तौलिये पर–थैली के सिरहाने लेटा था और सुमन अपने बिस्तर पर ।

संग्राम के दिनों में अनंतने ट्रेन से इतनी दोस्ती करली थी कि वह गाड़ी में लेटता, और निद्राधीन हो जाता। पर आज नींद नहीं आती। गाड़ी की विचित्र चाल और शोर उसे सोने नहीं देते। रामपुर से निकलने के बाद जो कार्यक्रम उसने ठीक किया था उसे तो गाड़ी में बैठते ही उसने शुरू कर दिया था। नीचे लेटा है—उसका सैनिक साथी सुमन—खर्राटें ले रहा है—उसे परवाह नहीं देश की—और उसके शरीर पर नहीं है खादी की धोती, और शाल ही परदेशी ही मालूम होती है। अनंत के मुँह से एक दीर्घ निश्वास निकल गया।

गाड़ी धसी जा रही थी—अंधेरी रात्रि को चीरती हुई—नीचे खर्राटें ले रहा था सुमन और इधर से उधर करवटें बदल रहा था अनंत।

५

सुमन के घर

वरतेज स्टेशन आया, और दोनों मित्र ऊठे । अनंत नीचे ऊतरा । तौलिया थैली में डाला, और तैयार हो सुमन के पास बैठ गया ।

"सुमन ! कान्ता बहिन आजकल क्या कर रही हैं ?"

"मालूम नहीं । एकाध महीने बाद उनकी शादी होने वाली है ?"

कहाँ ? किसके साथ ?" साश्चर्य अनंतने पूछा ।

"उन्होने तो खूब सिर पटका – पर एक न चली" सुमन के आवाज में दुःख था, "पोरबंदर के कोई शेठसाहब के पुत्र हैं । बंबई में व्यापार करते हैं ।"

"पर कान्ता बहिन के पिता तो सुधारक हैं न ?

"हाँ–विचार तो हैं ऐसे ।"

"पर कान्ता बहिन तो बड़ी दृढ़ हैं । वे कैसे सम्मत हो सकती हैं ?"

हाँ । बहादुर–दृढ–सब कुछ हैं–पर स्त्री हैं न ।"

अनंत चूप था । गाड़ी भावनगर स्टेशन पर खड़ी थी ।

"कहाँ जायगा ? चल न मेरे ही घर ।" सुमन बोला ।

"अच्छा" अनंतने कहा ।

चल दिये । तख्तेश्वर प्लॉट पर सुमन के चचा का बंगला था । तांगा वहां रूक गया । अनंत थैली और कम्बल ले नीचे ऊतर आया । सुमन इधर उधर देख रहा था ।

" मैं ले लेता हूँ " सुमन की बेग उठाते हुए अनंतने कहा ।

"नहीं–नहीं–नौकर आ जायगा ।" और सुमनने अनंत के हाथों से बेग छीन ली । भीतर गये । नौकर दौड़ा–सामान लेने–बाबू जी आये हैं ।

"अच्छा ! अब ?" आराम कुरसी पर लेटते हुए सुमनने पूछा ।

" मैं–असनान–पसनान कर लूं । फिर मित्रों से मिलूंगा ।"

"क्या जल्दी है ? मिल लेना ।'

"नहीं–नहीं–कल तो मैं चल दूंगा ।"

"वाह ! ऐसे कैसे जा सकते हो ? कम से कम आठ दिन तो ठहरना ही पड़ेगा ।

"आठ दिन का काम नहीं है ।"

"काम । अरे भई ! देख लिया काम । अगर पांच दिन देर से पहुंचे तो कुछ लूट न जायगा ।

"अब और लूटना क्या बाकी रहा है?" कठोर मुद्रासे शब्द निकले। सुमन चूप हो गया—अनंत के भावों को वह ताड़ गया।

"अच्छा—नहा लो। कपडें तो नौकरानी धो डालेगी।"

"सुमन। मेरे कपड़ों की अधिक चिन्ता न कर। संग्राम तेरी दृष्टि से खतम हो गया है; मेरी दृष्टि से नहीं।"

सुमन चूप हो गया। और एक मिनिट के लिये सन्नाटा छा गया।

"चाय लाऊं सरकार?" नौकरने पूछा।

"नहीं। दो प्याले दूध।" सुमनने जवाब दिया।

"तू चाय ले सकता है सुमन!" अनंतने कहा।

"नहीं। मुझे आदत नहीं है।"

दूध के दो प्याले आये। चूपचाप दोनों ने दूध पी डाला।

"अच्छा—तो बाथरूम बता दूं?" सुमनने पूछा।

"हां।"

स्नान के बाद, अनंत सुमन के पास आया और बोला, "भोजन—बारह बजे?"

"हां। पर इस समय सवारी किधर?"

"इधर मित्रों में। भावनगर भूल नहीं गया। एक एक को ढूंढ निकालूंगा; और कल तो यहां से चल दूंगा।"

"कान्ता बहिन को भी मिलना है न ?"

" जरुर ! जरुर ! वे कहां मिलेगीं ?"

" अगर बारह बजे तू वापिस आ–तो शायद यहीं पर मुलाक़ात हो जाय । पर ठहर–माताजी से पूछ आउं ।" सुमन भीतर गया ।

"हं । ठीक है अनंत ! बारह बजे" सुमनने वापिस आकर कहा, "तुझे याद नहीं–कान्ता मेरी मैासी की लडकी होती है ।"

"अच्छा ?" अनंत ने कहा ।

"तभी तो मै उसे कान्ता कहता हू–कान्ता बहिन नहीं !"

"हं । अच्छा तो मैं बारह बजे आ जाउंगा ।"

अनंत गया । और सुमन खड़ा खड़ा देखता रहा इस खादी धारी–थैली झुलाते हुए, चले जाते हुए युवक–और मुखसे निकल गया 'शाबाश ! अनंत ।"

सुमन की माताजी बाहर आई, और बोलीं "कौन है यह ?"

"मेरा दोस्त–मां । हम जेल में साथ थे ।"

अभी भी वह गांधी के साथ है ?" माताजीने पूछा ।

"हां" सुमनने कहा ।

"उसके मां–बाप कुछ नहीं कहते ?"

"सब कोई कहते हैं–पर वह मेरे जैसा नहीं ।"

"पर अब है क्या ? लड़ाई तो ख़तम हो गई न ?"

सुमनने अपनी माता की ओर देखा और बोला "मां! अभी लड़ाई पूरी नही हुई। वह तो तब पूरी होगी जब स्वराज्य मिल जायगा। समझीं?"

"स्वराज्य! बेटा स्वराज्य रास्ते में तो नहीं पडा है जो मिल जायगा।"

"सच है मां।" सुमन बोला। माताजी भीतर गई–और सुमन विचार करने लगा, "सच है–अनंत मर्द है। ऐसे मर्द जब भारत के कोने कोने में पैदा होगे तब ही स्वराज्य मिलेगा। हमारा उत्साह तो दूध के उफान जैसा है। गरमी मिली, उबलने लगे, पानीका छींटा पड़ा, और बैठ गये–शांत हो गये!"

सुमन बंगले के दालान में आराम कुरसी पर लेटा हुआ था। विचारों में तल्लीन उसकी दृष्टि रास्ते पर पड़ी–कान्ता आ रही है–वही कान्ता जो संग्राम के समय रणचंडी की भांति गरजती थी।

"सुमन भाई" कान्ता आते आते ही बोल ऊठी।

"आज जल्दी कैसे कान्ता?"

"अनंत भाई आये हैं क्या?" कान्ताने दूसरा ही प्रश्न किया।

"किसने कहा तुझ से?"

"निमुने। उसने तुम दोनों को तांगे में आते हुए देखा। बहार गये हैं?"

"हां। तुम्हें याद करते थे। मैंने कहा तुम बारह बजे आनेवाली हो। वे भी ठीक बारह बजे आ जायँगे।"

"मैं सोचती हूं-वे अभी ही आयंगे। मैं खादी-भंडार गई थी-कह आई हूं कि आते ही इधर भेज दें।"

अनंत आ रहा था। सुमनने देखा।

"वे आ रहे हैं जनाब!"

"हूं। सुमन भैया! तुमने उन से कुछ कहा? मेरे संबंध में?"

"हां।"

"क्या कहा?"

"बस इतना ही कि तुम्हारे पिता तुम्हारी इच्छा विरुद्ध तुम्हारी शादी कर रहे हैं।

"उन्हों ने क्या कहा?"

"वे तो पूछने लगे--ऐसे कैसे हो सकता है-तुम्हारे पिता तो सुधारक हैं?"

"हूं!" कान्ता गुनगुनाई "तुमने क्या कहा?"

अनंत आ पहुंचा। उसके मुंह पर हास्य था।

"क्यों कान्ता वहिन? मजे में?"

"हो! हमें क्या दुःख है?"

"तुम्हारा संदेशा मिला, और मैं चला आया।"

"अच्छा-तो रास्ते में और कोई नहीं मिला क्यों?"

देवचंद भाई मिले थे। कंधे पर कपड़ों के ताके; और हाथ में गज और कतरनी। मुझे देख सिर नीचा कर गये।"

"अच्छा! हूं-तो कितने दिन का मुकाम है?

"कल सुबह की फास्ट में जाऊंगा।"

"नहीं जा सकते" कान्ताने कहा- मानों आदेश देती हो।

"पर कोई खास काम तो है नहीं।"

"अगर काम हो तो?"

"तो रुक सकता हूं।"

"बस! तो समझ लो काम है।"

"पर काम भी तो बताओ।"

"तो क्या खड़े खड़े ही कह दूं? जरा बैठो। इस थैली को उस कोने में रक्खो। जरा शांत हो-और कहूं।"

"अच्छा! यह लीजिये" थैली को एक खूंटी पर लटकाते हुए अनंतने कहा।

पर कान्ता बोल न सकी। उसने सुमन की ओर देखा।

"और काम क्या? मैने रेल में तुझ से न कहा था? शायद उसी के बारे में कुछ काम हो।"

अनंत कान्ता की ओर सभाव देखने लगा! कान्ता के मुंह पर बादल छा गये थे। सुमन सोचता था उसे वहां से ऊठजाना चाहिये-वह इस वार्तालाप में बाधारूप है। वह ऊठा।

"बैठ जाओ न सुमन भाई!" कान्ता बोली।

"तुम बातें करो-मैं तो सब सून चूका हूं।" और वह भीतर चला गया।

कुछ क्षण के लिये सन्नाटा-सा छा गया।

६

कान्ता

"कान्ता बहिन" अनंतने उस गंभीर शांति को तोड़ते हुए कहा, "कहो ! मेरे लायक क्या काम है ?"

कान्ता का मुंह ढल गया–मानों कोई गूढ विचार में हो–सहसा उसके मुंह पर लाली दौड़ गई–नेत्र नीचे हो गये ।

"डेढ वर्ष बाद आज हम मिल रहे हैं क्यों ? अंतीम मुलाक़ात अपनी हुई थी तुम्हारे जेल में से छूटने के बाद । इसके बाद तो कुछ पत्रव्यवहार भी नहीं–और मैं तो रामपुर में जम गया था ।"

कान्ताने उपर देखा ।

"मैंने सोचा था तुम पत्र लिखोगे–पर शायद सोचा हो चार पैसे सरकार को क्यों दिये जायँ ?"

"खैर ! तुम्हारे हाथ तो किसीने न रोके थे ?" अनंतने जरा कान्ता को छेडते हुए कहा ।

"ओह ! पर तुम्हारे पत्र के बिना मैं कैसे पत्र लिखती ?"

"और मैं भी तुम्हारे पत्र बिना कैसे पत्र लिखता ?"

"ओह ! इसी से यह डेढ वर्ष यों बीत गया क्यों ?" कान्ताने कहा।

"हूं-अच्छा अब कहो शादी कब कर रही हो ?" अनंतने एकदम सीधा ही प्रश्न पूछ डाला।

"जब पिताजी शादी कर दें तब।"

"पिताजी कब शादी कर रहे हैं ?" फेंके हुए कटाक्ष की ओर ध्यान दिये बिना ही अनंतने पूछा।

"एक महीने बाद" गंभीर हो कर कान्ताने जवाब दिया।

"फिर तो आप बंबई तशरीफ ले जायगीं न ?" कुछ मजाक करते हुए अनंतने कहा।

"शायद" कान्ता के मुंह पर फिर सुरखी दौड गई थी। फिर वह बोली "ज़ाना तो पड़े ही गा न ? बंबई नहीं तो कलकत्ते। बाप के घर तो जिंदगी नहीं निकाल सकती।"

"कान्ता बहिन !" अनंत गंभीर भाव से बोल रहा था, "तुम इस शादी से नाराज हो-यह सच बात ?"

कान्ता अनंत को ताक रही थी। मानों अनंत के भावों को ताड़ना चाहती हो।

"मानों मैं बंधुभाव से ही पूछता हूं।" अनंत अटका और फिर बोला "इस डेढ वर्ष के समय में मैंने तुम्हें पत्र नहीं लीखा है-न अधिक याद ही किया है-पर भाव तो वैसे ही हैं जैसे पहिले थे। समझीं ?"

"हां हां ! मैं जानती हूं। तभी तो दौड़ती आई हूं।"

"मैं क्या कर सकता हूं कान्ता बहिन?" अनंत के शब्द स्नेह से भरे थे।

"हां–कोई क्या कर सकता है?" कान्ता बोली "मेरे ही में दृढ़ता नहीं है।"

"कान्ता बहिन! क्या कहती हो? तुम तो रणचंडी जैसी हो।"

"अरे भैया! मेरे में क्या धरा है?"

"नहीं–नहीं–संग्राम में मैंने अनेक बहिनें देखी हैं–अनेक के परिचय में आया हूं–पर कान्ता जैसी एक भी नहीं" अनंत ने कहा।

"नहीं, यह तुम्हारा पक्षपात है।"

"यह पक्षपात नहीं। मेरा परिचय एक दो दिन का नहीं। संग्राम के इन चार वर्षों में अनेकोंबार देखा है कि कान्ता बहिन में शक्ति है–दृढ़ता है।"

"हां–पर अब तो लड़ाई खतम हुई और साथ ही खतम हुई वह शक्ति, वह दृढ़ता। अब कान्ता तो एक साधारण लड़की ही रह गई है।"

"क्या कहती हो कान्ता बहिन? यह असंभव है। कान्ता वही कान्ता है–पर मैं पूछता हूं तुम्हारी सगाई कब हुई?"

"दो महीने हुए।"

"तुमने विरोध न किया?"

"मेरा कौन सुनता है? मैंने विरोध ही नहीं किया–उस युवक को पत्र भी लिखा कि वह इस फेर में न पड़े-नहीं तो आजन्म कुआरा रह जायगा।"

"अच्छा !" आनंद में आ अनंतने पूछा ।

"और उस जवांमर्दने वही पत्र मेरे पिताजी को डाल दिया" कान्ता क्रोधावेश में बोली ।

"फिर ?"

"फिर क्या ? वही रोज का रोना धोना–सिरखपी और आंसू ।"

"और अन्त में तुमने कबूल किया न ?"

"मैं कभी कबूल नहीं कर सकती। माता पिता को करना हो करें–मैं क्यों उनकी परवाह करूं ? वे मेरा खयाल नहीं करते, मैं क्यों करूं ?" कान्ता के एक एक शब्द में प्राण था ।

"पर तुम्हारा धर्म ? अपने मातापिता की ओर ?" अनंतने पूछा ।

"धर्म ? फर्ज ? फर्ज कौन से बाग की चिड़िया है ? क्या उन्हें भी मेरी ओर कोई फर्ज नहीं ? जानते हो वे मेरी शादी क्यों कर रहे हैं ?"

"न"

"इस लिये कि फिर मैं कुछ उफांड न कर बैठूं। फिर कहीं संग्राम के दिनों की तरह किसी प्रवृत्ति में न जुट जाऊं–तुम्हारे जैसे किसी लुच्चे लफंगे से शादी न कर बैठूं ! समझे ?"

अनंत कान्ता के मुंह की आभा को देख रहा था।

"समझा" वह बोला, "और इसीलिये तुम्हारे पिताजी ढूंढ लाये पोरबंदर के शेठ का लाल !"

"हां, ढूंढ लाये। पांच लाख का आसामी है। पच्चीस वर्ष का नौजवान है। तंदुरस्त है। रसीला है।"

कान्ता के प्रत्येक शब्द में उलाहना और व्यंग का मिश्रण था।

"तो हर्ज क्या है?" अनंतने पूछा।

"हां हां। क्या हर्ज है? बांका ज़वान है। सो सो नारियल उसके वहां चढ़ चूके हैं। लोगों ने पुकारा है वाह! कैसा भाग्यवान है–अब मेरे सौभाग्य में क्या देरी है–पर..." और कान्ता जोश में बोली "पर मज़ाक की बात नहीं अनंत भाई। मुझे क्या पड़ी है उसकी दौलत की, उसकी ज़वानी की?"

"यानी!"

"यानी? तुम भी पूछते हो यानी–अनंत भाई?" कान्ता कठोर बनती जा रही थी। "मैं तो समझती थी लड़ाई औरों ही के लिये बंद हुई है–तुम्हारे लिये नहीं।"

"अनंत झेंपसा गया।

"नहीं बहिन! मेरी लड़ाई अभी बंद नहीं हुई, कभी बंद होनेवाली नहीं।"

"और मैं भी जीवन पर्यंत लड़ना चाहती हूं। समझे?"

"समझा बहिन–पर..."

"पर...हां...मैं समझती हूं–तुम क्या पूछना चाहते हो–मैं घर के बंधनों में इतना बंध गई थी कि उन्हें तोड़ कर अबतक न चली आई–और तुम जानते हो–मैं कान्ता हूं–अगर कान्तिलाल होती तो इतनी देर न लगती।"

"तुम्हें मालूम था–मैं रामपुर में हूं?"

"हाँ। जानती थी। पर वहां कैसे आ सकती? तुम दो ुवक और म एक अकेली युवती। समाज चाब न जाता?"

"पर..."

"पर क्या? समाज के बंधनों को मैं तोड़ सकती हूं–और ुम्हारी दृढ़ता भी मैं जानती हूं–पर...अगर गांव के लोग ही ुम से विरुद्ध हो जाते–तो ग्रामसेवा लटकी रहती न?"

अनंत कान्ता की विचारशक्ति पर मुग्ध हो रहा था। युद्ध ꣿ दिनों में तो वह सैनिका ही मालूम होती थी–आज तो वेचारक भी।

"तुम्हारा कहना सच है" अनंतने इकरार किया।

"इस लिये अन्तिम मार्ग रहा पढ़ने का। अबतक ाढ़ती रही–पर पढ़ते पढ़ते विचार आते थे अब क्या किया जाय? ेट्रिक तो हो जाउंगी–अगर पिताजी को समझाकर कालिज में दाखिल ो गई–तो बी. ए. तक चार वर्ष और कट जायँगे। पर इस प्रकार ीवन कैसे बिताया जा सकता है? पर पिताजीने–मानों जीवन की ारलता ढूंढने के लिये–एक नया ही मार्ग ढूंढ निकाला। और एक ाई आफत मचा दी।"

"हं। पर अब क्या करना है?" अनंतने पूछा।

"इसीलिये तो तुम्हारे पास आई हूं–मुझे कुछ नहीं सूझता। ौर यहां किस से सलाह लूं? सुमन भाई में दम नहीं। वे क्या ालाह देंगे?"

"पर प्रश्न है, मैं क्या कर सकता हूं–मैं क्या सलाह दे सकता हूं" अनंत की आवाज़ में थर्राहट थी।

"अगर यह याद होता तो तुम्हारे पास आती ही क्यों? यह प्रश्न अब शादी का ही नहीं–सारे जीवन का है। फिर विचार होता है शादी न करूं तो और क्या करूं? इस प्रकार जीवन बिताना है तो शादी करने में क्या बुरा है? सामान्य पुरुष से उतरता वह नहीं–और सुना है–वह मार्ग में अन्तरायरूप भी न होगा।"

"तो तुम जीवन पर्यन्त शादी करना नहीं चाहती क्यों?" अनंतने पूछा।

"नहीं जानती। मैं भी यही प्रश्न तुमसे पूछना चाहती हूं" कान्ताने पूछा।

अनंत चूप था।

"चूप हो गये? हं...शादी नहीं करोगे–क्यों? मैं समझी–पर तुम पुरुष हो–इसलिये यह सवाल तुम्हें आश्चर्य में नहीं डालता–तुम इसे कुछ अस्वाभाविक भी समझते हो न? पर मैं कान्ता हूं। इसलिये तुम्हें भी पूछना पड़ता है कि मैं शादी करूंगी या नहीं। भैया मेरे! सच कहूं तो मुझे शादी का विचार तक नहीं आता। याद आती है उन दिनों की जब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि इस शरीर को भारत की सेवा में घिस डालूंगी। उन चार वर्षों में जो कुछ हो सका किया। पर फिर भी क्या? मैं सोचती हूं–काश, पेशावर में जन्मी होती–और इस सीने पर गोलियाँ की बौछार झेलती हुई संसार से बिदा ली होती। कितना अच्छा होता? जीवन तो सफल हो जाता। यहां तो जेल और लाठी के दो चार

फटाके–बंदूक की आवाज़ तो सुनी ही नहीं–पर–पर–अब क्या करना ? सूझता ही नहीं ।"

अनंत कान्ता के वाणीप्रवाह में खींचा जा रहा था । उसने मनसूबा तो किया था कान्ता को सलाह देने का–पर वे सब मनसूबे कहां ? कान्ता अद्भूत दिखाई दे रही थी ।

"भैया ! तुमने तो ठीक किया । रामपुर में जा कर बैठ गये–पर कभी यह भी विचार किया कि तुम्हारी जीजी कान्ता कहां जाय ?"

"कान्ता बहिन" अनंत को शब्द न सूझ रहे थे, "मैं–मैं–तुम्हें मार्गदर्शन कराने के लिये नालायक हूं ।"

"तुम इस प्रकार नहीं छुटक सकोंगे अनंत भाई ।"

"छुटकने की बात नहीं ! मैं सच कहता हूं कान्ता बहिन ! और मुझे तो तुम से माफी भी मांगनी है–रामपुर में सेवा करते करते मुझे अभिमान हो गया था कि हमारे छावनी के मित्र लोग कायर की भाँति भाग गये हैं । पर मेरी भूल थी । मुझे क्या याद थी इस प्रकार की ज्वालाएं धधक रही होंगी हरेक के हृदय में । तुम में जितनी शक्ति है–जितना राष्ट्रप्रेम है–मुझ में नहीं–मैं कबूल करता हूं । "

"अनंत भाई ! मैं न आई हूं अपने तारीफ के पुल बांधने–न बंधवाने । अगर तुम मुझ से दूर भागोगे तो कान्ता गुमाओगे–और एक दफ़े बंबई गई हुई कान्ता फिर वापिस आनेवाली नहीं–चाहे महात्माजी ही क्यों न द्वार खटखटायें ।"

" नहीं–नहीं–ऐसा न होगा।" भावि की कल्पना से मानों डरता हो–अनंत बोला।

" तो कहो–मैं क्या करुं ? "

कान्ता ताड़ गई। अनंत फंसा हुआ था विचार भंवरों में–उसे कुछ न सूझता था।

"रात को आऊं ? तुम सब सोच लेना" कान्ताने यकायक कहा।

" हां–हं–पर–मैं क्या सोचूंगा ? कुछ नहीं सूझता कान्ता ! "

"सूझेगा। अवश्य सूझेगा। तुम ऐसी विकट मानसिक परि-स्थिति में नहीं पड़े हो इससे नहीं सूझता–पर भैया ! थोडी देर के लिये सोचना–तुम्हारी ही बहिन अगर इन परिस्थितियों में होती तो तुम क्या करते ?"

"तो–तो–मैं अपने पिता को समझाता।"

"अगर वे न समझते तो ?"

"तो उपवास करता।

"अगर फिर भी न माने तो ?"

"तो प्राण त्याग दूं।"

"बस ! मैं यही सुनना चाहती थी। मैं जाती हूं। आठ बजे रात को आऊंगी। सब विचार कर लेना, समझे ?" कान्ता ऊठी और फिर बोली, "कल तुम नहीं जा सकते।"

अनंत कान्ता की ओर देख रहा था। कान्ता भीतर गई।

"जाती हूं, मौसीजी !"

"बस ? जायगी ?"

"जी !"

"अच्छा । आना, हं !"

"आना, कान्ता !" सुमन की भीतर से आवाज़ थी । कान्ता बाहर आई ।

"अच्छा ।" कान्ताने हंसते २ कहा और वह चल दी ।

अनंत उस रास्ते पर अदृश्य होती कान्ता की ओर न जाने कब तक देखता ही रहा ।

७

अनंत का हृदय

बारह बजे तक अनंत बैठा ही रहा–विचारों में मग्न। कान्ता असाधारण कुमारी लगने लगी। 'वह शादी न करे यही अच्छा। ऐसी प्रचंड शक्ति राष्ट्र के कार्य में लग जाय तो कैसा?'–प्रश्नों की परंपरा ऊठ रही थी–'क्या ऐसा स्थल नहीं जहां बहिनें काम कर रही हों? ऊन्ही की साथ में काम करने लगे तो? कान्ता में शक्ति है–दृढता है–क्या नहीं है? रामपुर? हां, अगर रामपुर में आवें तो वहां की स्त्रियों में वे जान भर सकती है जान। कैसी प्रचंड शक्ति दिखाई देती है उन आंखों में?' अनंत इन्ही विचारों में गोते खाता रहा पर यह निश्चय नहीं कर सका कि कान्ता को क्या सलाह दी जाय। वह तो कान्ता की मुख–कान्ति, तेज और ओजस को ही याद करता रहा।

बारह बजे, अपने ऊपर वाले कमरे से सुमन नीचे ऊतरा।

"क्यों अनंत! भूख लगी है न? रोटी खा लें।"

"हो! चलो" अनंतने कहा–और रसोई–घर के लिये चल दिये।

"बहुत बातें कीं ?" सुमनने रोटी खाते खाते प्रश्न किया।

"हां" अनंतने कहा, और फिर विचारों में डूब गया।

रोटी खाने के बाद सुमनने पूछा, "कहीं जाना है-या आराम करोगे ?"

"आराम तो नहीं करना-पर थोड़ी देर बाद जाऊंगा" अनंतने कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

"तो कान्ता की बातें सुन लीं ?" सुमनने पूछने का साहस किया।

"हां ! अद्भूत स्त्री है !"

"पर शादी......"

"वे शादी करेंगी ही नहीं" अनंतने कहा।

"शादी न करेंगी तो क्या करेंगी ?"

अनंत की विचारमाला टूटी-ऊसने पूछा 'सुमन ! तू ऊन्हें मदद नहीं कर सकता ?"

"मदद ? इसमें मदद करने की क्या बात है ? कान्ता शादी करना नहीं चाहती-हो चुका। अगर वह किसी ओर से शादी करना चाहे-तो ऊसके पिता को भी समझा सकते हैं। पर यहां तो मामला ही ओर कुछ है। भला बीस वर्ष की लड़की को मां-बाप घर में कैसे रख सकते हैं ?"

"तो लड़कियों को आजन्म ब्रह्मचर्य पालने का अधिकार नहीं क्यों ?"

देखिये भाई साब ! चर्चा में शायद उन्हें अधिकार हो—किन्तु व्यवहार में ऐसा हो ही नहीं सकता। उन्हें शादी करनी ही चाहिये। भला, मैं पूछता हूं अगर कान्ता शादी न करे तो क्या करे ?"

"सेवा।"

"किस की सेवा ? कहां करे सेवा ? यह तो बताइये। नौजवान लड़की बाप के घर में नहीं रह सकती—तो वह कहां जा कर रहे ?"

"यही एक कठिनता है।" अनंतने धीरे से कहा।

"यह कठिनता छोटी नहीं जनाब ! इसीसे तो मैं कहता हूं—तमाम परिस्थिति को सोचकर कान्ता अपना मार्ग ठीक करे।" सुमन बोल रहा था

"कौनसी परिस्थिति ?"

"यानी शादी तो करनी ही पड़ेगी।"

" नहीं। कान्ता शादी कर ही नहीं सकती। कदापि नहीं " अनंत ने निश्चयतापूर्वक कहा, " और मैं तो यहां तक कहूंगा—जो कोइ भी उनके साथ शादी करने को तैयार होगा—भूल करेगा—दुःखी होगा। "

" तो फिर वह क्या करेगी ? "

" कुछ भी करेगी—पर शादी न करेगी। शादी ही क्या समाज में रहने का—जीवन गुजारनेका—प्रमाणपत्र है—पट्टा है ? "

"तो यह तेरी सलाह है ?"

"मैं सलाह देनेवाला कौन हूं? उसमें मुझ से अधिक विचार-शक्ति है, आचार-शक्ति भी।"

सुमन आश्चर्य से सुन रहा था। वह यह मानने को तैयार न था कि उसकी मौसी की लड़की अनंत से अधिक शक्तिशाली हो। यह कैसे हो सकता है?

"स्त्री कैसी भी शक्तिशाली क्यों न हो-वह आखिर स्त्री है। उसे पुरुष के मदद की आवश्यकता है ही।" सुमन ने अपने विचार प्रकट किये।

"पुरुष की मदद लेने में कोई पाप है? सवाल है उसकी शरण में जानेका। कान्ता बहिन कभी किसी पुरुष के आश्रय में नहीं रह सकतीं। दुनिया में मदद एक दूसरे की ली ही जाती है। मै भी रामपुर में विनु की मदद लेता हूं-उस की सहायता बिना शायद मे वहां रह भी न सकूं-पर इस से यह नहीं हो जाता कि विनु मेरा पति ही बने?"

"अच्छा ठीक है-पर मैं कहे देता हूं, कान्ता को शादी करनी ही पड़ेगी।"

"तो उसमें संतोष और आनंद लेने की कोई बात नहीं-समझे! अगर कान्ता को शादी करनी पडे-तो हमें ही चुल्लू पानी में डूब मरना चाहिये।

सुमन का मुंह ढल गया था। अनंत के वाक्योंने उसके मर्मस्थल को बंध दिया था। "कान्ता जैसी कुमारियों को हम पैरों तले रौंदे चले जा रहे हैं। हम कहते हैं-भारत का आधा अंग अपंग है-पर हम नहीं सोचते इस अंग को अपंग बनाने में

हमारा कितना हिस्सा है ? अगर इस आधे अंग में संचार हो ! देश उन्नति के शिखर पर पहुंच जाय। कान्ता बहिन ही लो न ! उनमें इतनी शक्ति है कि वे अकेली ही सारे काठियावाड़ और गुजरात की स्त्रियों को जगा सकती हैं। उन के नेतृत्व में गुजरात का स्त्री-संघ क्या नहीं साध सकता ? पर वह दिन कब आयगा !" अनंत के अन्तिम वाक्यों में निराशा छलाछल भरी थी।

"एक बात पूछूं ?" अनंतने सकुचते हुए पूछा।

"पूछो।"

"तू कब शादी करनेवाला है ?" सुमन के प्रश्न में आतुरता थी।

"यह क्यों पूछना पड़ा ?" अनंत आश्चर्य में था।

"तू ही कान्ता से शादी कर ले तो ?" सुमनने पूछा-पर मानों डरते डरते। अनंत चूप था, पर चहरा सख्त होता जा रहा था। सुमन को प्रतित हुआ-ऊसने ऐसा प्रश्न किया था-जो उसे कदापि न पूछना चाहिये था।

"कान्ता बहिन मेरी बहिन है, तुझे पता नहीं ?" अनंत के शब्दों में गांभीर्य था।

सुमन अनंत के मुख पर व्याप्त सात्त्विक तेजस्विता को देखता रहा।

"सुमन !" कुछ क्षण बाद अनंत बोला, "अगर कोई और मजाक में ये शब्द बोला होता तो मुझे बुरा न लगता। पुख्त उम्र के युवक और युवती के संबंध में ऐसी बातचीतें हो सकती हैं, पर आज का प्रसंग जुदा ही था। जब कान्ता बहिन जीवन के एक आदर्श के लिये महान वेदना और मंथन अनुभव

कर रही हैं—तब ऐसे विचार करना हमें सुहाता नहीं। तैंने सोचा होगा इस प्रकार कान्ता की समस्या सुलझायी जा सकती है—पर तैंने यह न सोचा होगा कि इस समस्या को सुलझाने के लिये कान्ता बहिन दुःख अनुभव नहीं करती। जीवन को एक ऊच्च और सत्य आदर्श पर लेजाने के लिये—अपनी प्रतिज्ञा को वफादार रहने के लिये—वे वेदना अनुभव कर रही हैं—इस दुःख की ज्वाला में धधक रही हैं।"

सुमन मुंह लटकाये बैठा था।

"समाज हम से इसीलिये तो डरती है न! किसी युवक और युवती को मिलता देख समाज यही सोचने लगता है "ऊं—गुड़े बैठ रही है।" और कभी कभी ऐसा हो भी जाता है। और इस लिये कुमार कुमारिकाओं के मिलने में अंतराय बढ़ते ही जाते हैं। विश्वास उठता जा रहा है। छि! हमारी मनोदशा कैसी क्षुद्र होती चली जा रही है!"

सुमन चूप था। अनंतने अधिक बोलना ठीक न समझा। कुछ देर दोनों चूप बैठे रहे।

"अच्छा! सुमन! मैं बाहर हो आता हूं। शाम को कब आऊं?"

"छ बजे।" सुमन बोला।

"आठ बजे के करीब कान्ता बहिन आनेवाली हैं। मैं सात बजे आऊं तो हर्ज है?"

"कोई हर्ज नहीं। सात बजे आ जाना।"

"अच्छा।" और अनंतने थैली उठाई और चल दिया।

८

स्त्री-शक्ति

शाम को छ साढ़े छ बजे अनंत कालेज के कम्पाउंड को छोड़, सुमन के घर की ओर आ रहा था। दोपहर को वह दस बारह मित्रों से मिला था। उन सब मित्रों का विचार करता हुआ-वह टेकरियोंवाली सड़क पर आन लगा था। क्षितिज पर सूर्य भगवान अस्त होने की तैयारी में थे-और सामने का टेकरीवाला मैदान शांत प्रकाश में आलोकित था। सामने के रास्ते पर होस्टेल की तर्फ जाते हुए कालेजिअन्स दिखाई दे रहे थे।

लोगबाग कहते हैं भारत निर्धन है, गरीब है-भारत के असंख्य लोगों को भरपेट खाना भी नहीं मिलता-अनंत सोच रहा था-पर कोई इस बात को मान सकता है-यदि वे इन कालेज्ज में पढ़ते विद्यार्थीयों को देखें-उनके जीवन को देखें। और उसे कालेज-जीवन याद आया। कितना मस्त था वह! अपने सुख का विचार-अपने ही आनंद में मस्त-उसने कभी औरों के दुःख या संताप के संबंध में सोचा था? वह तो डाक्टर या बेरिष्टर बननेवाला था।

अगर संग्राम शुरू न हुआ होता तो? वह भी इन्हीं युवकों जैसा होता। किसी किशोरी को आकर्षित कर सका होता–सब कुछ कर सका होता पर...पर क्या यह जीवन–सत्त्व प्राप्त कर सका होता? इन्हीं विचारों में झूमता हुआ, वह सुमन के घर नज़दिक आ पहुंचा था। पास ही के एक बंगले से मोटर निकली–अनंत का ध्यान उस ओर गया। वे बैठे हैं भावनगर के लक्षाधिपति शेठ साब! अभी ही उन्होंने पचीसवां बंगला बनवाया है। इतने कौड़ी कौड़ी को फूंकनेवाले की सारे शहर में मशहूर! और व्यापार इतना की सारे भावनगर शहर में परदेशी कपड़े का व्यापार–उनके बराबर किसी का नहीं–और धन का इतना सुंदर उपयोग कि सारे शहर के जाहिर जीवन को पैरों तले रोंद दिया था। ऐसे महानुभव को देख अनंत के मन विचारों की परंपरा उठे तो वह बिलकुल अस्वाभाविक नहीं।

अनंत घर आन पहुंचा। सुमन उसकी राह देख रहा था।

"किस किस को मिले?"

"सब को।"

"अनुभव?"

"दुःखद।" अनंतने आरामकुर्सी में लेटते हुए कहा।

"किसी को देश की नहीं पड़ी है" अनंत बोला, "ये चार वर्ष संग्राम के गये हैं ऐसा मालूम ही नहीं होता–मानो युद्ध एक नाटक था–तमाशा था–खत्म हुआ।"

"ऐसा ही है अनंत! फिजूल क्यों दुःखी होता है?"

"मैं फिजूल दुःखी नहीं होता अनंत! इस छाती में लाय लग रही है–इससे दुःखी हो रहा हूं। रामपुर छोड़कर तो अभी यह पहला शहर देख रहा हूं। अहमदाबाद–बंबई–कराची–कलकत्ता इन्हें–देख, न जाने क्या होगा? जब रामपुर था–मुझे लगता था–हमारे सैनिक मित्र शहर में बैठे बैठे भी कुछ सेवा का कार्य कर ही रहे होंगे। पर यहां आकर देखता हूं तो सब अप अपनी सेवा में पड़े हैं। कोई कोई पछता रहे हैं–उनका धंधा नष्ट हो गया–उनका अभ्यास बिगड़ गया। वह जयंत! जिस दिन छावनी पर आक्रमण हुआ–शहीद जैसा लगता था और आज पट्टणीसाब और दीवानसाब के तलुवे चाट रहा है। गुणवंत! कितना बहादुर था? कोई खयाल भी कर सकता है वह परदेशी स्टेशनरी की दूकान खोलकर बैठ जायगा? और कन्हैयालाल......"

"तो फिर वे क्या करें?" सुमन ने पूछा।

"क्या करें? बहादुरी से अगर जीवन नहीं बिताया जा सकता है–तो गला घोंट लें। मुझे होता है लड़ाई में ये लोग इतने बहादुर क्यों लगते थे? उस दिन तो कभी प्रश्न न उठा था–अगर घायल होंगे–लुट जायंगे–मर जायंगे तो कुटुंब का क्या होगा? यह सब आज ही कैसे सूझ आया है? सुमन! सारे देश पर 'या होम' करनेका जो प्रचंड तूफान छा गया था–उसमें कुछ न कुछ कहीं पर भूल थी। इन देशाभिमानी युवकों की देश भावना में भी कहीं न कहीं जबरदस्त भूल छुपी हुई थी। नहीं तो ऐसा कैसे हो सकता है? देश तो अब भी पराधीन है–अधिक कंगाल और पतित है। फिर भी ये लोग कैसे मान बैठे हैं कि लड़ाई खतम हो चुकी है सुमन? मैं तुझ से पूछता हूं।"

सुमन अनंत की ओर ताक रहा था ।

"क्यों चुप है सुमन ? अगर मानता है लड़ाई खतम नहीं हुई-तो रेवेन्यु दफ्तर में घुसने की पेरवी क्यों कर रहा है ? कहां वह, 'गनी कपडे' और 'डंडे बेडी' में शोभता सुमन और कहां वह रेवेन्यु दफ्तर-कारकून सुमन ? सुमन ! तू कहां जा रहा है ?" अनंत उत्तेजनापूर्ण बोलता हुआ चला जा रहा था ।

सुमन बैठा था-नीचा मुंह किये हुए-उसे कुछ उत्तर न सूझता था ।

"रोटी खालो"' माताजी ने कहा-और दोनों चल दिये भोजन करने-पर बिना बोले ।

"अनंतभाई !" कान्ता किवाड़ के पास खड़ी बोल रही थी।

"ओह ! आगई तुम ! आया-बस पांच मिनिट में" अनंत ने जवाब दिया ।

"जल्दी मत करना । धीरे धीरे चलने दीजिये । मै पांच दस मिनिट जल्दी आई हूं । समझे ?"

पांचेक मिनिट के बाद अनंत कान्ता के पास था। सुमन ने कहा "यहां बैठना हो तो यहां-नहीं तो ऊपर ठीक रहेगा-वहां कोई 'डिस्टर्ब' न करेगा ।"

दोनों ऊपर गये। ऊपर के कमरे में दो तीन कोच और चार पांच कुर्सियां जमाई गईं थीं। सुंदर सजावट थी। अनंत कोच पर बैठा-एक कुर्सी पास ला-कान्ता अनंत के सामने बैठ गई।

कान्ता को देखकर ही अनंत की चिंता शुरू हो गई थी। वह कुछ विचार ही नहीं कर सका था। इस समय एक विचार

आया—कान्ता और कृपेश चंदनपुर में काम करें तो? चंदनपुर रामपुर के नज़दीक तो है ही—सुंदर भादर नदी बहती है, रामपुर से भी अधिक रमणीय—हरे हरे खेत—वृक्षों की घटाएं—बस यही ठीक है।

"क्यों? अनंतभाई! क्या विचार किया?"

"कान्ताबहिन!" अनंत बोला, "तुम रामपुर आ सकती हो?"

"आ तो सकती हूं—पर भय है गांव के लोग हमें ठहरने न देंगे।"

"रामपुर जाकर विनु से मिलें। मेरा विचार है कि तुम और कृपेश—जो अभी बच्चा ही है—रामपुर के नज़दीक किसी गांव में रहकर सेवाकार्य शुरू कर दो।"

"पर मेरा प्रश्न तो अभी खड़ा ही है। गांव के लोग मुझे रहने देंगे?"

"कान्ताबहिन! जितना डर गांव लोगों का तुम्हें है मुझे नहीं। गांव के लोग इतने मूर्ख नहीं कि तुम्हारी भावना—साधना न समझ सकें। तुम्हें नहीं लगता—कभी कभी हम लोग फिज़ूल के गांव लोगों से डरा करते हैं? जो समाज इतनी जैन साध्वीओं को निभा सकता है—तो क्या एक कान्ता को नहीं निभा सकता? विचार तो करो मुक्ति—फौज की कितनी बहिनें गांवों में अकेली बैठीं सेवा कर रही हैं; और लोक उनकी दयालुता को पूजते हैं। जैन साध्वीओं के बनिस्बत या लोकसेवा करतीं अंग्रेज और अमेरिकन विदुषीओं से तुम में क्या कम है? मैं तो मानता हूं तुम्हारे तप का तेज शंका के बादलों को काफ़ूर कर देगा।

"पर मुझे—वहां......"

"डर लगेगा ?"

"डर तो नहीं," कान्ता अटकती हुई बोली, "मैं...मैं अकेली वहां क्या करुंगी ?"

"तुम अकेली ? बहिनजी—तुम्हें वहां सूनापन लगेगा ही नहीं। गांव के लोग—अपनी पुत्री की भांति तुम्हारा सत्कार करेंगे—और तुम्हारा आदेश झीलने को तत्पर रहेंगे।" अनंत बोल रहा था—मानो दिनभर की उसकी मनोव्यथा और चिन्ताएं—भाग गईं हो और उसके हृदय में प्रकाश प्रकाश झलझला रहा हो।

"तो अब करें तैयारी" अनंत ने कहा—कान्ता को चिन्तालीन देखकर।

कान्ता चुप थी। अनंत उसके मनोभावों को ताड़ने की कोशिश कर रहा था—पर समझ न सका—पूछ बैठा—

"कान्ता बहिन। एक बात पूछूं ?"

"अवश्य" कान्ता मानो जागी, "तुम्हें पूछने का अधिकार है।"

"अकेले रहते हुए—क्या तुम्हें अपने से ही डर लगता है ?" साहस बटोरते मानो अनंत ने प्रश्न किया।

"गांव में ?" कान्ता की आंखें पैनी हो रहीं थीं, "शहर में भय हो सकता है—पर गांव में ? कदापि नहीं। शहर में तो संस्कारी लोग रहते हैं न—उनसे डरते हुए रहना पड़ता है। अनंत भैया ! इस समय बीसवां वर्ष चल रहा है, संग्राम के बाद घर में तो मैं बहुत कम रहती हूं। चार वर्ष का

संग्राम और एक वर्ष ये-इनमें तो मुझे खूब अनुभव मिल गया है। सब बातें करने का यह समय नहीं-पर इतना समझ लो-अनंतभाई ! जहां जहां मैंने संस्कार और आदर्श देखे हैं-वहां वहां मैं डरी हूं मुझे-भय लगा है। जहां जहां अज्ञान और दरिद्रता देखे हैं-वहां वहां मैं अभय रही हूं-सुरक्षितता का अनुभव किया है। मुझे गांव के किसान या चमार का डर नहीं-गांव के बदमाशों का डर नहीं-जितना डर है इन देश की आशा सिर पर धर चलने वाले-इन खूबसूरत संस्कारी जवानों का। ये बिचारे गांव के जवान तो मेरी ओर आंख भी न उठावेंगे-पर डर तो है मुझे इन शहर के छैले युवानों का-महलातों में रहते इन धनिक और जमींदार के पुत्रों का। बिचारे गांव के भोलेभाले लोग मुझे क्या डरायँगे ?"

"कान्ताबहिन !" कान्ता के शब्दों ने अनंत के हृदय में आनंद मचा दिया था। "तुमने तो मानों समाज का सच्चा पृथक्करण कर दिखाया। देखा न ! सारा ही समाज आज युवक और युवतियों की ओर शंका की दृष्टि से देखता है।"

"अनंतभाई ! मैने तो अनेक दुःख और अनुभवों के बाद भी यही निश्चय किया है कि युवतीयों को पुरुषों का सहवास करना ही पड़ेगा-बिना परवाह किये हुए समाज की बातों का और उन भयंकर परिणामों का जो कभी कभी ऐसे सहवासों के कारणभूत होते हैं। नहीं तो एक दिन ऐसा आयगा जब भूखे डांस की भाँति युवक युवती एक दूसरे को देखकर भडकेंगे और संयोग होते ही एक दूसरे को खा जाने की वृत्ति सेवेंगे। अनंतभाई ! अगर चंदनपुर आई तो तुमसे कहूंगी ऐसी अनेक बातें-अनुभव की-सुनकर तुम कान काटने लग जाओगे।"

अनंत कान्ता के अनुभव की बातें सुन आश्चर्यमुग्ध–सा बन गया ।

"मैं तो कहता हूं–तुम चंदनपुर चलो ही" आवेश में अनंत बोला ।

"चलना तो चाहती हूं–पर यह इतना सरल नहीं । पर हां–मुझे अब हिम्मत आ रही है ।"

"तो इस शादी के संबंध में क्या करोगी ?"

"तलाक और क्या ?" कान्ता ने जोश में कहा ।

कान्ता की बातें सुन अनंत पागल–सा हो रहा था; और सोच रहा था–इतनी बलवती है–फिर भी मुझसे मदद मांगने क्यों आ रही है ? मुझमें है ही क्या ?

"अनंतभाई !"

अनंत की विचारमाला टूटी ।

"तुम मुझे पूरी सहायता करोगे ?" कान्ता ने पूछा ।

"कान्ता । मैं सच कहता हूं मुझमें तुम जितनी शक्ति नहीं ।"

"मैं यह सुनना नहीं चाहती । देखो–तुम पुरुष हो । और इसीलिये तुम्हें अनेक अनुकूलताएं हैं । अगर मैं तुमसे कुछ भी सहायता पा सकी–मैं उबर जाउंगी भैया ! मात्र समाज के प्रचलित रिवाज के सामने अगर मैं अपना झंडा खड़ा करती होती–तुम्हारी सहायता न मांगती–पर मदद मैं इसलिये मांगती हूं कि मैं जीवन में कुछ करना चाहती हूं–पिताजी को साफ कहकर–घोड़े पर चढ़े हुए लाड़ाजी को तोरण से वापिस लौटाकर–और सारे गांव की टीकाओं

को सुनकर भी मैं रह सकती हूं-जीवन बिता सकती हूं-पर मैं ऐसा जीवन मात्र बिताना नहीं चाहती। मुझे तो इस समाज की सेवा करनी है-भारत के पैरों को पखारना है-और मेरी अनेक बहिनों की परतन्त्रता की जंजीरों को तोड़ना है। पिता के सामने मैं लडूंगी-उस धनिक युवक को निराश करूंगी-मेरी जाति के लोगों की गालियां सुनूंगी-मुझे इसकी परवाह नहीं। और इसपर भी मुझे विश्वास है-एक दिन अवश्य आवेगा-जब ये लोग मुझे समझेंगे। मुझे ही नहीं-मेरी जैसी अनेक रोंदी जाती बहिनों का दुःख पहचानेंगे।

पर अनंत चुप था। सोचने लगा-कान्ता को मदद करना मदद करना नहीं है-पर आती हुई स्त्री-शक्ति की पूजा करना है।

"कान्ताबहिन! मैं विश्वास दिलाता हूं-मैं तुम्हारे पास खड़ा हूं-कुछ भी करने को तैयार हूं।"

"बस मै इतना ही चाहती हूं। अपना मार्ग मैं अब तय कर लूंगी। तुम अगर कल सुबह जाहना चाहते हो तो जासकते हो।

"पर मै रामपुर नहीं जा रहा हूं।"

"तब?"

"वह तो मैने तुमसे कहा ही नहीं। रामपुर से मैं निराशा से भरा हुआ निकला था। यहां आते ही मुझे यकीन होगया-कि जो मार्ग मैंने ग्रहण किया-वही ठीक है-फिर भी अनुभव लेने के लिये-संग्राम के अपने तमाम मित्रों को मिलने के लिये-मुझे अहमदाबाद, बंबई-हो आना चाहिये।"

"वापिस कब लौटोगे?"

"तुम कहो तब। मेरी आवश्यकता हो–तो मैं आज ही रामपुर चलने को तैयार हूं।"

"विनुभाई वहीं पर रहनेवाले हैं?"

"हो।"

"तुम उन्हें ये सब समाचार देनेवाले हो?

"अवश्य। कल सुबह ही।"

"वे तुम्हारे मुकामों जानते हैं?"

"जानते हैं।"

"ठीक। तो तुम अपनी मुसाफिरी शुरू कर दो। विनुभाई द्वारा मैं तुम्हें समाचार देती रहूंगी।"

"चाहो तो मेरे प्रवास के समाचार देता रहूं।"

"नहीं। ऐसी आवश्यकता नहीं। पिताजी समझेंगे–मै तुम्हारे कहने के मुताबिक सब कर रही हूं।"

"ठीक है' अनंत ने कहा।

कान्ता चल दी अपने घर की ओर।

९

अगम्य की याद

कान्ता के जाने के कुछ समय बाद सुमन बाहर से आया। अनंत आरामकुर्सी पर लेटा लेटा कान्ता का सामीप्य अनुभव रहा था। सुमन ने अंदर आते ही पूछा।

"कान्ता गई?"

"हां।"

"कितनी देर हुई?"

"करीब आध घंटा।"

"हं—पर अनंत—उसकी शादी रुकने वाली नहीं" सुमन ने कुर्सी पर बैठते बैठते कहा।

"तू उसके घर गया था?"

"हां।"

"अच्छा—क्या क्या बातें हुईं?"

"और तो क्या? ये ही—कान्ता की शादी के संबंध में। पिताजी अपने ही फिराक में हैं—पर कान्ता तो साफ नट गई है।"

"हुं ! पर सुमन ! तुझे नहीं लगता कान्ता शादी न करे वही अच्छा ? कितनी उसकी शक्ति है ? कान्ता एक शक्तिशाली क्रान्तिकारी बन सकती है !"

शायद सुमन को यह अभिप्राय मान्य न था। "देखो ! क्या होता है ?" सुमन बोला।

सुमन के शब्दों ने मानो अनंत को निरुत्साह–सा कर दिया।

"सुमन ! मैं कल सुबह जानेवाला हूं।"

"बस ? दो चार दिन भी नहीं ठहरना ?"

"नहीं। काम हो गया।"

"क्या काम हो गया ?"

"बस यही। कान्ता बहिन अपना मार्ग तय कर लेंगी।"

"तो उन्हें तेरी आवश्यकता नहीं ?"

"आवश्यकता होगी तब वे मुझे बुला लेंगी। मैं योग्य सहायता दूंगा।"

"अगर वह शादी न करे–और घर छोड़ना पड़े तो तू उसे अपने साथ रक्खेगा क्यों ?"

"हां–अगर ऐसी आवश्यकता हो।" सुमन दिग्मूढ़–सा रह गया।

"पर लोग बाग क्या कहेंगे ?"

"लोग बाग जो कहेंगे–और फिर सत्य समझेंगे। लोगों से डरना मूर्खता है।"

"पर आजदिन तक जो कुछ कार्य तेने किया, जो कुछ प्रतिष्ठा तेने प्राप्त की है–उस सब पर पानी न फिर जायगा ?"

"पतिष्ठा के खातिर फर्ज छोड दी जासकती है ?"

"पर इसमें फर्ज की क्या बात है ? तू कौन ? कान्ता कौन ?"

अनंत चमका ।

"मै कौन ? कान्ता कौन ? मेरे और तेरे क्या ? विनु से क्या ?" अनंत बोलता चला जा रहा था, 'मुझे और मेरे देश को क्या ? सुमन ? क्या कहता है तू ? मेरे और कान्ता के बहुत है–मुझे कान्ता से उसके पिता से भी अधिक बनिस्बत है। मै और कान्ता एक आदर्श के लिये झूम रहे हैं–मर रहे हैं। हमारी आत्मीयता सच्चे और एक खून से भी अधिक है। समझा ?"

सुमन चुपचाप सुन रहा था। कुछ क्षण बाद बोला, "पर साथ रहने से तेरे काम में अन्तराय न होगा ?"

"यह विचार तुझे ही आता है ? कान्ता और मुझे यह विचार न आया होगा ? काम में अन्तराय न आवे यह सब कुछ हम देखेंगे–किन्तु काम में अन्तराय से डर कर एक दूसरे को न छोडेंगे। और काम में अन्तराय कभी नहीं आसकता। अगर हम में शक्ति है–दृढता है–सत्य है तो हम समाज के मानस को पलट सकते हैं। अवश्य !"

"अनंत।" कुछ शरमाते हुए सुमन बोला। "मै भी रामपुर आऊं तो ?"

"आऊं तो? तुझे आना ही पड़ेगा। मुझे समझ में नहीं आता रेवेन्यु दफ्तर में जुट जाने का तुझे विचार ही कैसे आया? कहां गये वे दिन जब यही सुमन कंधे पर धनुकी रखकर गांव गांव फिरा करता था? क्या वह नशा था? अब उड गया?"

सुमन विचार में था।

"कान्ता आई तो मैं भी आऊंगा" एकाध मिनिट बाद वह बोला।

"तेरे आनेमें कान्ताबहिन से क्या संबंध? गांव के लिये आना चाहता है या कान्ताबहिन के लिये?"

"ऐसा नहीं। पर...पर एकाध महीने बाद–विचार करने के बाद आऊंगा–आ सकता हूं" सुमन ने गंभीर होते उत्तर दिया।

"डेढ वर्ष तक विचार पूरा नहीं हुआ? अभी बाकी है?"

"हां–उसी विचार का परिणाम है रेवेन्यु दफ्तरी की क्लरकी, समझे? अब फिरसे विचार करना है।"

"हां हां। विचार कीजिये! पर अब के विचार करके ही आवें; फिर लौटने का नाम न लीजिये" अनंत ने कहा।

"अवश्य" सुमन का जवाब था।

दोनों मित्र ऊपर–जाकर सोने के कमरे में चले गये। लेटते लेटते सत्याग्रह के दिनों के दृश्यों का तांता बंध गया।

घड़ी में साडेतीन बजे और दोनों उठे। हाथ मुंह धोकर, अनंत ने अपनी थैली और कम्बल उठाया।

"अच्छा सुमन ! फिर कभी" चंपल पहिनते हाथ ऊंचा करते अनंत ने कहा ।

"अरे भले मानस ! मैं भी तो आरहा हूं। रात को गाडी-वाले से कहना ही भूल गये। ठहर तो । मैं रामा को भेजता हूं ।"

"अब तांगा ही है। तू चलता है तो आ चल । पैदल पैदल ही चल दें।"

अनंत नीचे आया। पीछे पीछे सुमन भी। दोनों स्टेशन की ओर चल दिये। रास्ते में कान्ता की और दूसरे मित्रों की बातें होती रहीं-बीसेक मिनिट में स्टेशन पर आ पहुंचे। अनंत ने अहमदाबाद की टिकिट ली और गाड़ी में बैठा।

गाड़ी चलते तक दोनों ने अनेक बातें कीं, और जब गाडी चलने लगी, तो सुमन का कंठ रुंध गया और उसने कहा कि वह अवश्य रामपुर आयगा।

गाड़ी चलदी। दोनों मित्र बिछुडे। हर्ष और शोक के बीच डोलता अनंत विचारों में डूबने लगा। एक के बाद दूसरे स्टेशन आते हैं और जाते हैं। अनंत की आंखों में निद्रा आने लगी-और वह खाली बेंचपर लेट गया-आंख मूंद लीं-पर मनःचक्षु के सामने तो वेग से एक चित्र के बाद दूसरे उठने लगे !

रामपुर-मनोमन्थन, विनु, कृपेश, गांव के भोलेभाले किसान-गांव की बाडियां-आंखों के सामने नाचने लगीं। सुमन और कान्ता ने नये विचार पैदा किये और अजीब मनोमन्थन भी। भावनगर के दूसरे मित्रों ने निराशा भी पैदा की। सुबह के सात बजे तक-विचित्र भावों के बीच झोंके खाता अनंत लेटा रहा। जब

बालातप खिड़की में से उसपर झांकने लगा, अनंत उठा। सूर्य-नारायण के दर्शन किये। गाडी के दोनों ओर फैले हुए खेत और पवन के साथ गेल करते हुए हरे अनाज के पौधों पर पड़ते सुनहरी किरण उसे बडे अच्छे लगे। अनंत ने दूर दूर तक दृष्टि फैलाई। आस्मान जहां नीचा नीचा होकर धरती को चुंबन करता है—क्षितिज को देख अनंत को अगम्य की याद आई और उसका हृदय भक्ति से पुलकित हो गया—गद्गद हो गया। गाड़ी अपने वेग से धसी जा रही थी। कठोर किन्तु तालबद्ध गाडी की आवाज़ अनंत को प्रिय लगी। नदी—नाले—टेकरियां—पहाड और खेतों को देखते देखते अनंत का हृदय नाचने लगा—उसे लगा मानो अखिल विश्व आज नाच रहा है—अजीब हास्य में लास्य ले रहा है।

सूर्य ऊपर चढता जारहा था—और उसके असंख्य किरण बादलों के बीच से—असंख्य फुवारों की भाँति फैलते चले जा रहे थे 'कितना भव्य' अनंत सोच रहा था 'कौन चित्रकार इस क्षण क्षण पर बदलते हुए—किन्तु फिर भी शाश्वत प्रकृति के सौंदर्य को खींच सकता है ?' अनंत ने फिर से अगम्य को याद किया और अपना सिर नवां लिया।

अनंत के पेट में चूहे दौड़ने लगे। साथ कुछ न था। स्टेशन से केले और पकी अरंडककडी—पपैया लिया और भूख शान्त की। थैली में से एक पुस्तक निकाल पढ़ने बैठा, पर चित न लगा। विचार आते ही विनु को एक पत्र लिख डाला और विरमगाम स्टेशन पर डाक में डाल दिया।

अहमदाबाद पहुंचते पहुंचते उसने कान्ता और उसकी तमाम बातें याद कीं। स्टेशन आते ही उतरा-पर स्टेशन पर कोई

मित्र दिखाई न दिया—फिर थैली उठा—स्टेशन बाहर हो रेवाबाई धर्मशाला की ओर चल दिया। एक कमरा ठीक कर बती जलाई।

गत रात्रि को ठीक नींद न आई थी—इसलिये आंख में उंघ थी—पर फिर विचारों का प्रवाह इतना प्रबल हो उठा कि नींद काफूर हो गई। कमरा साफ दिखाई न दिया—एक खाट किराये पर ठीक कर—तौलिया बिछा—लेट गया।

भावनगर के अनुभवों को याद करता, अहमदाबाद के कार्यक्रम को रचता, रामपुर का ग्रामसेवक अनंत रेवाबाई धर्मशाला में अनेक विचारों में झोंके खाता अंत में सो गया।

१०

आश्रम पर

अनंत प्रातःकाल पांच बजे जग उठा। छ घंटे की मीठी निद्रा ने उसकी थकावट मिटा दी। स्वस्थ हो खाट में बैठा। कार्यक्रम ठीक करने लगा-पर ठीक न कर सका-बार बार कान्ता का विचार आने लगता। वह अहमदाबाद की एक धर्मशाला में बैठा है-यह जानता हुआ भी, वह कान्ता के सामीप्य अनुभव करने लगा। कोई भी विचार शुरू करता-और उसके और विचारों के बीच कान्ता आ बैठती।

वह श्यामल तेजस्वी वदन, निश्चल आंखें, स्पष्ट मधुर आवाज-और सुडोल शरीर उसे याद आने लगे। अनंत विचारों में गुथने लगा-अभी ही भावनगर जाय-कान्ता को लेकर रामपुर चला जाय। कान्ता के रामपुर में पैर रखते ही-गांव में नई चेतना प्रकट हो जायगी।

घड़ी में छ बजे तबतक अनंत विचारों में बैठा रहा। डंके की आवाज़ ने उसे जागृत किया। नित्यकर्म समाप्त कर बाहर जाने को तैयार हुआ। कम्बल खूंटी पर लटका, खोली को ताला लगा-हाथ में झोली ले-चल दिया।

शहर की दूकानें और मनुष्यों की भीड को देखता हुआ अनंत एलिसब्रिज पर आ पहुंचा। कहां जाय? वापिस लौटा और भद्र की ओर जाने लगा। एक मित्र के घर गया-पर मुलाकात न हुई। अंत में विद्यापीठ जाने का निश्चय किया। वहीं से मित्रों का पता लगेगा।

एलिसब्रिज को पार कर अनंत विद्यापीठ की राह चलने लगा; और उसे याद आया वह दिन जब कान्ता से उसकी प्रथम मुलाक़ात हुई थी-वह किस प्रकार उसकी ओर खींचा था-और याद आया वह दृश्य जब इसी शहर के रास्ते पर एक युवक को कान्ता ने चांटा लगाया था।

"ऐसी कान्ता को कौन रोक सकता है?" उसके मन में प्रश्न उठा। इस एक प्रश्न ने अनेक प्रश्न उठाये। दीनानाथ की शादी की बात याद आते ही-वह विचार में पड़ गया-और फिर तो विनु याद आया-उसके साथ ही रामपुर भी। उसे लगने लगा-मानो वह अपने घर से बहुत दूर निकल आया है। रामपुर के वृक्ष और खेत, नदी और तलाब-वहां के किसान और बाल बच्चे स्वजन-से लगने लगे।

विचार के वेग के साथ पैर उठाता हुआ अनंत विद्यापीठ के मकान पर आ लगा। नाले के पास दो तीन विद्यार्थी खड़े थे। उसने पूछा।

"रामभाई हैं?"

"वे तो चले गये!"

"अनुभाई?"

"जंबुसर हैं।"

"प्रेमशंकर ?"

"उन्होंने भी विद्यापीठ छोड़ दी।"

विद्यापीठ में कोई मित्र न मिले। वापिस लौटने के बजाय आश्रम की ओर जाने का निश्चय किया। चल दिया। एक दिन का गांधी-आश्रम अब हरिजन-आश्रम बन गया है-अनंत जानता था। जानता था आश्रम में कोई मिलनेवाला नहीं, फिर भी आश्रम का प्रेम-वहां के संस्मरण उसे खींच लाये। फिरा। चारों ओर। आश्रम के वृक्ष देखें, पाठशाला देखी, चमार-गृह देखा, कार्यालय देखा और अनंत ने एक दीर्घ निश्वास खींचा। गांधीजी का निवासस्थान देखते ही अनंत के नेत्र गीले हो गये-यह पवित्र स्थल जहां पर महात्माजी इतना समय रहे-जहां से दांडी कूच किया और घोषणा की कि स्वराज्य बिना वापस न लौटूंगा। वह सूना-सा कमरा खड़ा है-आज कोई नहीं-और वह बैठ गया!

पांचेक मिनिट अनंत बैठा बैठा मानो आसपास का पवित्र वातावरण पीता रहा-भक्तिपूर्वक चारों ओर देखता रहा। अनंत का सिर नम गया।

अनंत आश्रम से बाहर निकल रहा था कि एक मित्र मिला। मित्र के आग्रह से वह वापिस लौटा। बारह बज गये थे। अनंत ने प्रातःकाल से कुछ खाया न था। मित्र ने मूंगफली के दाने और गुड सामने रक्खा और दोनों खाने लगे।

"कीर्तिभाई! कितने समय से यहां हो ?" अनंतने पूछा।

"एक महीना हुआ" कीर्ति ने जवाब दिया। आवाज़ मधुर थी।

"इस पहिले कहां थे ?"

"घर"

"यानी ?"

"कलकत्ता। पिता के पास।"

"कलकत्ता ? वहां क्या करते थे ?"

"ओ ! बहुत कुछ" कीर्ति हंसा।

"कुछ रोज़गार करते थे ?"

"जाकर तीनेक महीने तो खूब चक्कर लगाये। फिर चारों ओर से दबाव होने लगा कि कोलेज जोइन कर दूं। एक दिन प्रिन्सिपाल मशाय ने फरमान निकाला कि कोई कोलेजिअन सभा या जुलूस में न जाय। बहतर समझा हमने कि कोलेज छोड़ दें। फिर तो चारेक महीने कलकत्ते में भटकता रहा। पिताजी ने फरमाया कि उनकी दलाली में हाथ बटाऊं ! पर वहां क्या सुहा सकता था ? छह माह तो बिताये। पिताजी ने आशा छोड़ दी, और एक मित्र के स्वदेशी भंडार पर रख दिया। पिताजी का मित्र भी अजीब आदमी था–स्वदेशी के नाम पर वह तो कमाना चाहता था। तीन महीने बाद तो उससे भी लड़ा। पिताजी से मन की बात कही–कहा पिताजी यह धंधारोजगार हमसे होता नहीं–हमें तो भेज दो सेवाकार्य में। अंत में पिताजी ने इजाजत दी, और चला आया यहां।"

"शाबाश" अनंत ने खुश हो कर कहा।

"मेरे एक की ऐसी हालत नहीं। ऐसे चार पांच मित्रों

को तो मैं जानता हूं। संग्राम ने तो कितने ही युवकों का मानस पलट दिया है।"

"मुझे तो कुछ और ही दिखाई देता है" अनंत ने कहा "मानो लड़ाई को सब भूल गये हैं।"

"ऐसे भी हैं—पर मैं कहता हूं ऐसों की भी संख्या कम नहीं।"

अनंत ने मानो ये शब्द न सुने हो—दूसरा प्रश्न किया।

"वातावरण कैसा लगता है?"

"बर्फ़ जैसा ठंडा।"

"मुझे भी ऐसा लगता है। पांचेक वर्ष के भीतर लड़ाई शुरू हो सकती है?"

"लडाई की बात मत करो। कौन जानता है कब और कैसे सुलग उठे? और ऐसा भी हो कि सारा देश फिर सिहर उठे।"

"अभी तो सब को गांवों में बैठ जाना चाहिये न! तेरा क्या अभिप्राय?"

"अभिप्राय? मेरा मानना है हरेक को कोई न कोई काम में जुट जाना चाहिये। क्या अपने पास प्रश्नों की कमी है? काम की कमी है? यह अस्पृश्यता ही ले लो न।"

"हां। ठीक है। और तारीफ तो यही है—बापूजी के संग्राम की कि इसमें राष्ट्र के एक अंग की भी उपेक्षा नहीं।"

शाम तक दोनों बातें करते रहे। वर्तमान परिस्थिति को

छान डाला। अनंत ने अपनी रामपुर की मनोव्यथा–भावनगर के अनुभव–कह सुनाये। दो वर्ष पूर्व जेल में थे–तबसे भी अधिक मानो आज निकटता का अनुभव किया।

"जेल की ओर घूम आय ?" कीर्तिने पूछा।

"हो ! चलो" अनंत उठा।

"थक तो नहीं गया है न ?"

"नहीं रे। गांव लोग इतने जल्दी थक सकते हैं ?"

दोनों जेल की ओर चलदिये। अचानक याद आते ही कीर्ति ने पूछा।

"तू श्रीकांत को मिला ?"

"नहीं ! वह कहां है ?"

"यहीं था। दो दिन पहिले यहां से कहीं गया है।"

"कहां गया ? वह क्या करता है ?'

"तुझे याद नहीं ? वह बड़ा जबरदस्त है। डेढ वर्ष से बस प्रवास ही कर रहा है। खास जरूरत पड़ने पर ही गाडी में बैठता है, वरना पैदल पैदल चलता है।"

"पर क्यों ?" अनंत ने जिज्ञासा से पूछा।

"अभ्यास की दृष्टि से।"

"वाह !"

"और सुखलाल की खबर है ?"

"न।"

"वह भीलों में काम करने गया है। तू फिज़ूल ही निराश हो रहा है। अपने सब मित्र लोग अपने अपने तरीके से देश की आज़ादी के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।"

"कीर्ति ! बहुत माने कितने ?" अनंत की आवाज़ गंभीर थी, "स्वराज्य के लिये हमें कितने साधकों की आवश्यकता है– जानता है ? हिंद में सात लाख गांव पड़े हैं।" अनंत स्थिर दृष्टि से देख रहा था।

"और कीर्ति!" कुछ देर बाद अनंत बोला, "अपन सैनिक लोग भी कैसे स्वार्थ में पड़ गये हैं ? जितना दुःख मित्र–वियोग से होता है–उतना इन गरीबों के प्रति क्यों नहीं होता ? सच कहता हूं जब गांधीजी ने यरवदा में उपवास किये, मेरा दिल हचमचा गया। मुझे हुआ–हमें इस प्रकार मरने की उत्कंठा क्यों पैदा नहीं होती ?"

कीर्ति अनंत की ओर देखता रहा। दोनों जेल के फाटक के पास आ लगे।

"अनंत ! याद आता है ?" कीर्तिने हंसते हंसते पूछा।

"कैसे भूल सकते हैं ? मैं सोचता हूं अपन अधिक सुखी थे, जब भीतर थे। उस समय हृदय में एक प्रकार का संतोष था। बाहर आने के बाद तो वह शान्ति न जाने कहां लुप्त हो गई ?"

दोनों मित्र जेल के फाटक के पास आकर खड़े रह गये। जेल के दरवाज़े में सात के डंके पड़े।

"बेरक्स बंध होती होंगी" कीर्ति बोला।

"हां" अनंत के मुख पर विषाद की छाया थी।

दोनों ने चुपचाप उस बडे-से जेल के दरवाज़ों को देखा-और देखा उस दीवाल को जिसके पीछे थे असंख्य कैदी।

"कीर्ति! इन अफसरों के हृदय होंगे कि नहीं?"

जेल के स्मरण याद करते, और वहां के ज़ुल्मों को याद करते चलदिये। आश्रम के दरवाजे के पास अटक अनंत ने कहा।

"अब मैं जाऊंगा।"

"भोजन का समय हो गया है। भोजन करके ही जाना"

"अच्छा!"

"भोजन की घंटी बजी-दोनों भोजनालय के लिये चलदिये।

"कीर्ति! कहां बापूजी रहते थे वह आश्रम और कहां आज का आश्रम। मानों भीतर से आत्मा ही चला गया हो। हरिजनसेवा का यहां पवित्र कार्य हो रहा है-पर मुझे होता है क्या गांधीजी फिर इसी देह में यहां पर आ सकेंगे?" अनंत गद्गद हो गया था, "तुझे नहीं लगता आश्रम के ये वृक्ष और लताएं-बापू बिना रो रही हैं!"

कीर्ति अनंत की अश्रु-गीलीं आंखों की ओर देखता रहा।

११

सैनिक का धर्म

अनंत ने आश्रम के विद्यार्थियों के साथ भोजन किया। कीर्ति से बिदा होते समय अनंत बोला—

"तेरे पते पर मेरा पत्र आवे तो रख छोड़ना। आज के पत्र में मैं तेरा पता देनेवाला हूं।"

कीर्ति दरवाज़े तक अनंत के साथ गया। उस अंधेरे में अनंत ने अहमदाबाद का मार्ग ग्रहण किया। म्युनिसिपैलिटी की हद शुरू होते ही–एक बिजली की बत्ती के वृत्त में अनंत ने जेल के एक मित्र को देखा। चंद्रशंकर को देख अनंत खुश हो गया।

"अनंत तू? कहांसे?" चंद्रशंकर के प्रेमभरे शब्द थे।

"कल रात को आया। तुम किधरसे?"

"चारेक दिन हुए। सुबह की गाड़ी में जानेवाला हूं।"

"यहां से कहां जाओगे?"

"नडियाद। यहां की एक मील में हमारे गांव के आठ दस किसान काम करते हैं–उनके लिये आया था।"

कुछ देर चुपचाप चलते रहे।

"तू कहां है?" चंद्रशंकर ने पूछा।

"रामपुर!"

"शाबाश! और कौन है?"

"विनु और एक विद्यार्थी।"

"क्यों, मज़ा आती है न!"

"हां–जरा मज़ा कमती होने लगी–इसीलिये भ्रमण में निकला हूं। दस बारह दिन में वापिस पहुंच जाऊंगा।"

"यहांसे कहां जाओगे?"

"एक दो दिन यहां ठहरुंगा, इसके बाद बंबई जाऊंगा।"

"वहां तो अनेक मित्रों से मुलाक़ात होगी।"

"हां-उन्हें मिलने के लिये तो जा रहा हूं। चंद्रभाई! कुछ दिनों से रामपुर में मेरा मन बहुत डांवाडोल–सा रहता था।"

"काम में कठिनताएं मालूम होती थीं?"

"नहीं–नहीं–कठिनताएं तो मन में ही उठती थीं–शंका होती थी–भला इस प्रकार स्वराज्य मिलेगा? और यह भी सोचता था–संग्राम के इतने साथी सब के सब क्यों धंधे रोजगार में पड़ गये हैं? और इन्हीं विचारों में परेशान–मैंने निश्चय किया कि बाहर घूम कर मुझे अपने प्रश्नों को हल कर लेना ही चाहिये।

"गांव लोगों का तो सहकार है ?"

"हां-खूब सफलता मिली है।"

"संग्राम के दिनों में तू किस गांव में था ?"

"रामपुर में ही। वहीं से तीन बार जेल हुई।"

"तब तेने ठीक गांव पसंद किया है। अनंत ! अपन लोगों से कहा करते थे कि स्वराज्य के लिये हम लोग फना हो जायंगे। जब वे ही लोग देखते हैं कि हम अब भी इसी कार्य में जुटे हुए हैं-उनके हृदय श्रद्धा से भर जाते हैं। मेरी तो सलाह है तुम दोनों अन्त तक रामपुर न छोड़ना।"

"बिलकुल ठीक है।"

"दोनों एलिसब्रिज के नज़दीक आ पंहुचे थे।

"पर तुम्हें तो अनेक कठिनताओं का मुकाबला करना पड़ता होगा।" कुछ देर बाद अनंत ने पूछा।

"कैसे ?"

"लडाई का रंग तो तुम्हारी ओर ही था न ? जो लोग फना हो गये हैं-वे अपनी ओर किस दृष्टि से देखते है-मैं जानता हूं।"

"अनंत ! लोगों का सद्भाव तो वैसा ही है-किन्तु उनकी दशा देख आंखों में पानी आता है। कितने ही किसान सफाचट हो गये। जिनके द्वार गायें बंधती थीं-उनके बाल बच्चे दाने दाने को तरस रहे हैं-कहीं रोजगार का नाम नहीं। ज़मीन, घरबार, माल-असबाब तमाम को गुमाए हुए-चोपट बने हुए-हमारे किसानों

को याद करता हूं–और मेरा तमाम देशाभिमान गल जाता है। अनंत ! कहां उनका त्याग–कहां हमारा ? कोई कोई थके हैं–कोई अफसोस भी करते है और पछताते भी हैं–किन्तु अनेक अपनी छाती कठिन कर बैठे हैं। अड़ग और निश्चल ! ! न उनकी आंखों में आंसू है-न जीवन में उल्लास ! पत्थर की भाँति खड़े हैं–उन्हें देख दिल कांप उठता है।"

"सच्चा त्याग उन्हींका था" अनंत बोला।

"वही तो मैं कहता हूं। हमने क्या गुमाया है ? जब मैं बेकार बने हुए, और थके हुए हमारे सैनिकों को अपने नेताओं को गालियां देते याद करता हूं–तब मुझे होता है उन्हें इन कुटुंबों को बताऊं जो उजड़ गये हैं। एक बार उसी गांव के पटेल को दो आने दिन की मजूरी करता बताउं। उन्हें बताऊं इन त्यागवीरों को जो आज दाने दाने को मुहताज हैं–और तब ये हमारे सैनिक लोग समझेंगे युद्ध के अंत में ऐसी स्थिति अनिवार्य है।"

विक्टोरिया गार्डन के पास पहुंचते ही चंद्रशंकर रुका। दोनों के रास्ते यहांसे अलग होते थे।

"अच्छा अनंत ! तो कभी खेडा ज़िले की ओर भी चक्कर लगा जाना।"

"अवश्य ! बंबई से लौटते समय वहां उतरना है।"

"ठीक है। वहां तू बहुत कुछ देख सकेगा–जान सकेगा। इस घोर नैराश्य में भी तू देखेगा अनेक सच्चे सेवक अपना आसन जमा कर बैठ गये हैं।" चंद्रशंकर ने

अनंत के कंधेपर हाथ रखते हुए कहा " एक दिन अवश्य आयगा अनंत ! जब इन्हीं कार्यकर्ताओं का कार्य काम आयगा । देश की सीधी भोली प्रजा इन्हीं पर विश्वास धरेगी । अनंत ! तुम लोग रामपुर मत छोड़ना। एक गाम से क्या होना जाना है–ऐसा विचार मन में न उठाना । कार्यकर्ता मिलें तो कार्य–विस्तार करना–किन्तु जो गांव हाथ में लिया है–वहां प्राण निचो देना । अपने पराधीन देश को स्वाधीन बनाना है–यह सतत याद रखना ।"

अनंत आनंदित हो उठा ।

"ठीक है चंद्रभैया ! मेरा निश्चय दृढ है । मै कभी पीछे न हठूंगा ।"

"तो एक दिन तुम्हारी बिखरी हुई छावनी फिर से खड़ी होगी–आबाद होगी और गांव के दारिद्र्य मिटाने के काम में लग जायगी। अगर तुम मित्रों को मनाने जाओगे–इससे कुछ होना जाना नहीं–तुम्हारा कार्य ही लोह–चुंबक का काम करेगा। सत्य जीवन बितानेवाला–उस मार्ग पर अवश्य ही आवेगा। सात लाख गांवों को अंधेरे में रख, बंबई या कलकत्ता स्वराज्य की लड़ाई लड़ने जाने वाले नहीं। इसलिये स्वराज्य के पाये को मजबूत करने–उसे भरने–देश की गरीबी मिटाने–हमको गांवों में गड़ जाना होगा। गांव में हमें समाचार पत्र न मिलें, पुस्तकें न मिलें, देशपरदेश का ज्ञान न मिलें–कला और साहित्य का सहवास न मिलें–फिर भी देश के असंख्य गरीबों को मात्र जीवनप्रदान करने के लिये भी–हम जैसे हजारों युवकों को स्वेच्छा से गांव में बस जाना होगा–और इस ज्ञान का मोह छोड़ देना होगा। जिस प्रकार हम भूखे मरतों के लिये धन छोड़ते हैं, दुःखियों के लिये सुख

छोड़ते हैं, इसी प्रकार इन ज्ञानरहित दुःख में डूबे हुए बांधवों के लिये ज्ञान की भी तिलांजली देना होगा।"

"किन्तु जगत के प्रवाह से अनभिज्ञ रहना भी तो हमारे लिये ठीक नहीं" अनंत ने पूछा।

"जब तक जगत के प्रवाह को गांवों तक पहुंचाने के सुभिते हमारे पास नहीं तब तक हमें अनभिज्ञ रहना ही पडेगा। मुझे कई बार विचार आया है हम सब जो गांव में बैठ गये हैं, मिलें और एक संघ की स्थापना करें और किसी भी व्यवस्था द्वारा एक दूसरों को अपने काम का परिचय देते रहें। इसके अलावा ऐसी भी एक योजना करें जिससे ग्रामसेवक देश और जगत के प्रवाहों से वाकिफ रहें। किन्तु यह न होवे तब हमें अटकने की आवश्यकता नहीं। ऐसा अभ्यास मिल सकता है तो अवश्य करें-पर अगर नहीं मिलता है तो इससे हम हमारा कर्तव्य न छोड़ें। जेल में था तब भी, और बहार आया तब भी मैं देख रहा हूं-अभ्यास का पवन फूंक रहा है-पर इस पवन की दिशा ओर ही कुछ है। अभ्यास का अर्थ आज पुस्तकें पढ़ना हो रहा है। पुस्तकों का अध्ययन आवश्यक है, पर परिस्थिति का अवलोकन इससे कहीं अधिक आवश्यक है। क्यों यह विचार नहीं उत्पन्न होता कि किसी ज़िले का अभ्यास चारों ओरसे किया जाय? क्यों यह विचार नहीं आता कि अभ्यास की दृष्टि से गुजरात के तमाम गांवों का पर्यटन किया जाय? क्यों कोई-साधुओं के अड्डोंका, गांव गांव भटकते बनजारों का, वाघरीओं का अभ्यास नहीं करता?"

अनंत चंद्रशंकर पर मुग्ध हो रहा था। और चंद्रशंकर, मानों अनंत की तमाम आशंकाएं जान गया हो-बोलता चला जा रहा था।

"अपने युवक लोग अध्ययन में–विदेशी साहित्य के अध्ययन में इतने मशगूल हैं–मानों इस परतंत्रता की जंजीरों को तोड़ने का कोई मसाला ढूंढ रहे हों। किन्तु वे यह नहीं सोचते कि गुलामी तोड़ने का इल्म तो अपने ही राज्यतंत्र और प्रजातंत्र को समझ–और समझकर उन उसूलों को बिना बिलंब किये-कार्यरूप में परिणित करने में धरा है। आज तो चर्चा और अध्ययन; अध्ययन और चर्चा के पीछे ही वे पागल बन बैठे हैं। मै तो सोचता हूं उनमें कार्यशक्ति का ही लोप हो गया है। मैं कहता हूं–पढ़ो–खूब अध्ययन करो किन्तु अगर उसका उपयोग रामपुर में न मिल सकता हो–तो समझ लेना तुम्हारे दिमाग़ में भूसा भरा है भूसा। पढ़ो तो–हिंद, हिंदकी विशिष्ट संस्कृति, उसके सात लाख गांव और उसके असंख्य अनपढ़ और कंगाल मानवसमूह का ख़याल रखकर पढ़ो। अपनी दरिद्रता टूटे और परतंत्रता की जंजीरे टूटे ऐसा पढ़ो। अपनी कार्यशक्ति में वेग मिले–अपनी जबान में अजीब जोर आवे–ऐसा पढ़ो।"

रात बढ़ती जाती थी–समय सरकता जाता था–चंद्रशंकर ने अपनी वाग्धारा अटकाई।

"दृढ रहना–खूब विचार करना–किन्तु काम में–आचार में ढीले मत पड़ना" चंद्रशंकर ने जाते जाते कहा।

"एक समय रामपुर में नहीं आ सकते ?"

"तू एक समय खेडा तो आ भया! फिर देखा जायगा। अच्छा अनंत! बिदा लेंगे! आना मत भूलना!" चंद्रशंकर ने फिर से अनंत के कंधों को हिलाया, और दोनों मित्र अपनी राह चलदिये।

१२

सुमन

विषादयुक्त हृदय से अनंत को पहुंचा कर सुमन वापिस लौटा। एक ही दिन में अनंत ने उसे वश कर लिया था। प्रातःकाल के चार बजे सुमन भावनगर के शांत रस्ते पर अनंत का विचार करता हुआ घर लौट रहा था। वह कहां जा रहा है–वह सोचने लगा–युद्ध के समय जो मनोमन्थन अनुभव किया था–याद आया। उस समय युद्ध ही धर्म है–यह सोचा था–आज ?

सुमन शरमिंदा होने लगा। एक बात उसने अनंत से छुपाई थी। जेल में से छूटने के बाद उसकी शादी हुई थी–और इस समय तो चंद्रा मैके गई थी बच्चा जनने। यह बात क्यों छुपाई ? सुमन सोच रहा था। हां अगर अनंत से कहा होता तो वह सुलग उठा होता। अनंत के एक दिन के सहवास ने ही सुमन को पलट दिया था। उसी क्षण–इच्छा थी रामपुर चला जाय। पर चंद्रा ? और अभी एक मास पूर्व जनमा अनिल ? सुमन ने मन को रोका। एकाध माह में कोई न कोई रास्ता निकल आयगा–यह सोच एक माह की मोहलत मांगी। सोचा, चंद्रा को समझाकर–उसे साथ ले कर वह रामपुर चल देगा।

"अनंत का दिल साफ था। क्यों न उससे सब कह दिया? क्यों न उससे सलाह ली?" सुमन राह पर खड़ा रहा। एक क्षण के बाद वह फिर चलने लगा। कान्ता को मिलने की इच्छा हुई। विचार आया "कान्ता और अनंत शादी करें तो?" अनंत की गंभीर मुखमुद्रा याद आई। विचार शम गया।

राह में पीलगार्डन आई। भीतर चला गया। इक्के दुक्के लोग टहल रहे थे। सुमन ने प्रातःकाल की खुशनुमा हवा ली, और फिर एक शून्य बेंच पर बैठ गया। अनंत ने उसके मनोराज्य में अजीब हलचल मचा दी थी—अब इसे किसी भी प्रकार मिटाना चाहिये ही।

चोईस वर्ष का सुमन! '३० की लड़ाई में वह अठारह वर्ष का किशोर था। लड़ाइ के पांच वर्ष वह बहादुरी से जीता था। उसके सैनिक-जीवन में एक दिन भी ऐसा न था-जिसमें शरमिंदा होना पड़े। अहिंसक युद्ध के सिपाही की मुआफ़िक-जेल में से छूटने के बाद भी वह राष्ट्र के नवरचना के काम में लग गया। सुमन ने भावनगर में लेन्सर्स की छावनी देखी थी-और उसके मन में विचार उठे थे ये जिंदा मनुष्य हैं या मानव-संहार के लिये रची हुई जिंदा मशीनगनें। जब भयानक शस्त्रयुद्ध जागे तब ही इनका काम; नहीं तो बैठे बैठे खाते रहो, और दो दफ़े परेड करो। क्या मानवशक्ति का यह दुर्व्यय नहीं? सुमन के छोटे से दिमाग़ में ये प्रश्न उठते थे और वैसे ही शम जाते थे। छावनी जब पड़ी थी, तबके ये प्रश्न सुमन के मन में उठा करते। सुमन जहां भी जाता-कुछ न कुछ स्थूल सेवा अवश्य करता। अगर कुछ सेवा का काम न मिलता, वह एक दो घंटे हरिजनवास में बैठ आता।

और मन ही मन सोचता-वह प्रायश्चित्त कर रहा है-और वह शांति अनुभव करता।

जेल में भी, अपने काम और अभ्यास के अलावा-वह कुछ न कुछ सेवा-किसीकी भी-किया करता। किसी बीमार की खिदमत करना हो, किसी कमजोर की 'वर्धी' खतम करना हो, किसी अपढ़ को पढ़ाना हो या किसी दुःखिया को तसल्ली देना हो-सुमन हमेशा ही प्रथम रहता।

लड़ाई के दरमियान त सुमन ने भी अनंत और विनु की भाँति स्वप्न सेवे थे। सारा जीवन अब तो राष्ट्र को समर्पण हो चुका है-उसने निश्चय कर लिया था। किन्तु उसे याद न थी-कौटुम्बिक कौन कौन-सी कैसी कैसी कठिनताएं उसके सामने आनेवाली हैं। जब लड़ाई खतम हुई-और कुटुंब की समस्याएं-एक के बाद दूसरी उसके सामने आने लगीं-वह गभरा उठा-कुछ निश्चय न कर सका। कुछ न सूझा तो उन्हीं बंधनों में पड़ गया।

सुमन के पिता उसे छ वर्ष का बच्चा छोड़कर परलोक सिधारे थे। सुमन उसकी माता का एक मात्र आशादीप था। सुमन के पिता और उसके चचा साथ साथ ही रहते थे। संयुक्त कुटुंब था। थे पैसे टके से सुखी। कोई बात की कमी न थी। किन्तु सुमन के पिता के मृत्यु के बाद उसकी माता को वहां रहना अखरने लगा। चचा का स्वभाव अच्छा था-फिर भी माता सोचने लगीं-कब मेरा सुमन बड़ा हो-घर बसाय-और स्वतंत्र रहने लगूं। और इसी दृष्टि से जब सुमन बारह वर्ष का था, उसकी सगाई कर दी गई। जब सुमन कोलेज में गया-उसे लड़ाई की हवा ने स्पर्श किया। अपना निश्चय माता को सुनाया। माता कब माननेवाली

थीं? चचा ने और माता ने खूब समझाया–पर एक दिन तो वह रामपुर भग गया। सुमन ने बाद को सुना था–माता ने चार दिन तक अन्नपानी न छुआ था–और सिर पछाड़ा था–पर सुमन ने सोचा था–माता और भारतमाता दोनों सिर पछाड रहे हैं–दोनों दुःखी हैं–उसका प्रथम धर्म है भारत मैया की ओर। अगर उसे बचा सका तो अनेक माताएं और पुत्र सलामत रहेंगे।

जिस प्रकार एक भयंकर जख्म भी धीरे धीरे ठीक हो जाता है, माता का वियोग–दुःख भी कमती होने लगा। जेल में से छूटने के बाद हर समय सुमन माता के पास आता और ढाडस देता, और कहता 'मां! लड़ाई ख़तम हो जाने दे फिर तू कहेगी वैसा ही करुंगा।' माता आतुर हृदय से लडाई के ख़तम होने की बाट जोहा करती–और लंबे चार वर्ष बीत गये। लड़ाई बंद हुई–पराजय की शर्म ले कर सुमन लौटा। माता के मन तो वह विजय की घड़ी थी। और इस पहिले कि सुमन अपनी व्यथा प्रकट करे–माता ने उसे अपने आंसूओं से भिगो डाला।

दो माह बाद सुमन की शादी हुई। माता निश्चिंत थी। वह समझ गई अब सुमन कभी नहीं भाग सकता। उसको बांध देनेवाली आगई। और सुमन भी जीवन में और जीवन के छोटे मोटे प्रश्नों में रस लेने लगा।

दिन बीतते गये, और उसे प्रतीत होने लगा, उसे कमाना चाहिये–इस प्रकार औरों की रोटी पर निभना ठीक नहीं। जब नौकरी धंधा न मिलने लगा तो वह निराश–सा होने लगा और जब रिश्तेवाले उसे कटाक्ष से कहते 'भैया–मुफ्त रोटी खाने के वे दिन गये। लड़ाई में तो गैरों के टूकपर निभे–अब तो पैरों

पर खड़ा रहना चाहिये ही। अब अपना पराकिरम दिखाओ।' तब वह जल उठता। उसने निश्चय किया–उसे किसी भी प्रकार अपने पैरोंपर खडा रहना चाहिये।

चचा ने तो कहा था–वह रेवेन्यु दफ्तर में क्लरकी कर ले पर सुमन को न रुचता था। पर विवश था। जब हाथपैर पछाडने पर भी कहीं नौकरी नहीं मिलती–तो यह क्या बुरी–उसने सोचा और चचा से हां–कह देने का निश्चय कर लिया।

चंद्रा पढ़ीलिखी तो बहुत न थी। पर थी संस्कारी और भोली। वह कहा करती 'अब कहीं न कहीं रोजगार कर लो–नहीं तो अपना मान नहीं–आदर नहीं–निठल्ले कहां तक गैरों के पल्ले पडे रहेंगे?"

अन्त में सुमन ने चचाजी से कहा कि वह क्लरकी करने को तैयार है और चचाजी ने कहा कि बस वे आठ ही दिन में सब ठीक ठाक कर देंगे-और अनंत आया। जीवन के इस अंधकारमय प्रदेश में मानो अनंत की बातों ने चिराग़ का काम किया। सुमन के नेत्र मानो खुल गये। अपनी दुर्बलता पर वह हंसने लगा। वह प्रचलित प्रणाली में इस प्रकार कैसे बहने लगा था–उसकी स्वतंत्र विचारशक्ति कहां लुप्त हो गई थी–सुमन सोचने लगा–और वह आश्चर्य में डूब गया।

नो बजे तक उस बगीचे में सुमन बैठा रहा। आश्चर्यान्वित सुमन दुःख अनुभव करता हुआ–अनंत को याद करने लगा–वह गाडी में बैठा–चला जा रहा है–और ले जा रहा है अपने साथ–आत्मविश्वास, दृढता और शक्ति!

१३

स्वाद ही नहीं

सुमन उठा और घर गया। घर पहुंचा और देखा मां चिन्ता कर रही है–शायद अनंत के साथ तो नहीं चला गया–बिना पूछे–कहे? सुमन कुछ न बोला–माता के उल्लासभरे मुख की ओर देखता रहा।

"सुमन! अभी स्नान तो नहीं किया होगा–क्यों? चाय लाऊं?" माता ने प्रेम से पूछा।

"मैं आज से चाय नही पीऊंगा" सुमन ने धीरे से कहा।

"क्यों?" माता के मुख पर चिन्ता की झलक थी।

"वैसे ही। दूध गरम हो गया हो तो ले आओ" सुमन ने कहा और झूले पर बैठ गया।

माता भीतर गई और दूध का प्याला लाई।

"अंदर शक्कर डाली है?" सुमन ने पूछा।

"हां" माता ने कहा।

"मैं आज से शक्कर भी खानेवाला नहीं। अगर और दूध हो तो ला सकती है मां" सुमन धीरे धीरे मानो डरता डरता कह रहा था।

"पर क्यों?"

"वैसे ही। अगर दूध हो तो ले आओ न। मुझे फिर बाहर जाना है।"

साश्चर्य माता फिर दूध ले आई। सुमन ने चुपचाप दूध पी लिया। माता के नेत्रों में उसने चिन्ता देखी पर चुप रहा। बाहर जाने को उठा, तब माता ने पूछा।

"कब लौटेगा।"

"बारह बजे के क़रीब" सुमन ने खड़े होते हुए कहा, "हं...कहना भूल गया—मां! चाचाजी से कह देना—नौकरी बौकरी का रहने दें।"

"पर यह सब है क्या?" माता ने पास आकर पूछा।

"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं? क्यों तबियत ठीक नहीं? उदास कैसे है?" माता ने और पास आकर पूछा।

"नहीं—नहीं—कुछ नहीं है" सुमन का गला रुंध रहा था—आगे न बोल सका—नीचे उतर वह चल दिया। माता खड़ी खड़ी देखती रहीं।

सुमन कान्ता के घर पहुंचा। किवाड़ के पास पहुंचते पहुंचते तो उसके कान पर शब्द पड़े :

" मेरे घर के अन्दर यह सब नहीं चल सकता। साफ कहे देता हूं" कान्ता के पिता गरज रहे थे, "मुझे दुनिया में रहना है-लंगोटी लगा-भग नहीं जाना। तुझे याद है-सारा गांव तेरी क्या बातें करता है? बडे स्वराज्य लेने निकले हो। इस प्रकार स्वराज्य लिया जाता है? माता पिता की बददुआ लेकर? मर्यादा-लाज सब को ताक पर धरकर स्वराज्य लिया जाता है क्यों?"

अधिक खड़ा रहना-सुमन ने ठीक न समझा। वह लौट पड़ा। कान्ता के विचार करता हुआ, जब वह घर पहुंचा-तो चचा बाहर से आगये थे।

सुमन के चाचा की उम्र कोई पैंतालीस वर्ष की। रुइ का व्यापार करते थे-सट्टा नहीं। सुमन को उन्होंने व्यापार में नहीं डाला था-क्यों कि वे जानते थे-सुमन में सच जूठ कहने की शक्ति नहीं-और वह व्यापार बढ़ाने के बदले-डूबो देगा। इसीसे उसके लिये नौकरी के फिराक में वे थे। बाहर से आते ही जब सुमन की माता ने उसका निश्चय सुनाया तो वे बोल उठे " मै तो जान गया था जान। जबसे वह अनंत का बच्चा आया तबसे ही मैं ताड़ गया था-ताड़। तुमने उसकी बातें नहीं सुनीं? यह सुमन तो पूरा चोंच है-कौडी की अकल नहीं है कोडी की।"

सुमन आया और चाचाजी बोले "क्यों अब भी कुछ भटकना बाकी है?"

सुमन चुप था।

"डेढ वर्ष चक्कर लगाये-अब भी थके नहीं आप? नौकरी नहीं करना तो फीर क्या करना चाहते हैं किबले?"

"कुछ भी" सुमन के जवाब में लापरवाही थी।

"कुछ भी। देखलिया देख-जो तुम करने वाले हो। भाड़ झोंकोगे भाड़। अक्ल तो है नहीं एक कौडी की और अकड़ते हो-ऐसे की बस पूछो मत बात। यह तो ठीक है चचा का मकान है-और पिताजी रख गये हैं कुछ रक़म-नहीं तो जनाब भीख मांगते भीख।"

सुमन क्रोध से कांप रहा था-देखा माता की आंखें पानी से भरी हैं।

"सच तो है। काम तो कुछ करना ही चाहिये न। तू निरा बालक तो नहीं।"

"पर काम की कौन मना करता है?"

"तो मना किसकी करते हैं?"

"मैं तुमसे बातें करना नहीं चाहता" क्रोध में सुमन बोल उठा।

"हां-हां हमसे क्यों बातें करेंगे बेटाजी। ठीक है-ए याद आ जाती है तेरे बाप की-नहीं तो कब का लात मार कर घर से बाहर निकाल दिया होता।"

सुमन के ओठ कांप रहे थे। वह खड़ा होकर बाहर जाने लगा। माता ने रोका।

"जाने दो। देखें तो हज़रत कहां जाते हैं? और सोच लेन।-बेटाजी-अब अकेले नहीं हैं-राधारानी भी सिर पर पड़ी है" चाचाजी वाग्बाण फेंकते ही जा रहे थे।

"मैं यहां नहीं रहूंगा" माता से हाथ छुडाते हुए सुमन ने कहा ।

"नहीं-ऐसा भी हो सकता है? चल रोटी खाने ।"

चाचाजी अधिक न बोले-रोटी खाने चल दिये ।

"मां ।" सुमन बोला," अब हम इस घर में नही रह सकते ।"

"तब कहां जायंगे बेटा? तू कुछ कामधंधा ठीक करले तो अभी चल दें । तेरे बाप के पैसे हैं-पर चाचा तेरे जल्द थोडे ही देने वाले? चार आसामियों का पेट तो भरना ही पडेगा न?"

सुमन विचारग्रस्त था । शादी करके सिर पर आपदा ही बढ़ाई है-वह सोचने लगा । वह कुछ न बोला-चुपचाप बैठा रहा । माता भीतर चली गई

"कमाना तो चाहिये ही" सुमन सोचने लगा "इस समय अलग हो कर कहां जा सकता हूं? एक माह का अनाज लेने को-या एक छोटी-सी झोंपडीभर के किराये को भी तो पैसे पास नहीं । मित्रों के पास से उधार लूं? चंद्रा के गहने गिरवी रख दूं?" विचार परंपराएं उठने लगीं, "नहीं-नहीं-मैं इतना दुर्बल क्यों? मैं चोईस वर्ष का हट्टाकट्टा युवक हूं-क्या मैं कमा नहीं सकता? भरपेट खाने को प्राप्त नहीं कर सकता?- किन्तु चार मनुष्य! मां, मैं, चंद्रा और अनिल! अनिल की क्या आवश्यकता थी?-पर चंद्रा की भी इतनी क्या जल्दी थी? मरने दो! पर-मुझे कुछ करना तो अवश्य चाहिये । तब? मजूरी करूं?" अन्तर में मानो प्रकाश पड रहा था "मैं करूगां? कर सकूंगा?"

"चल भैया! रोटी खाले" माता ने आकर कहा।

खाने की इच्छा न थी—पर माता को देख कर भी पेट में डाल लेने का निश्चय किया। आज पर्व का दिन था। मिष्टान बने थे। स्वादिष्ट चीजें, चार चार शाक, आचार, रायते, भजियें—इन सबको देख- मुंह में पानी आने के बदले—उसे क्रोध चढ़ आया। उसे विचार आया—

"एक मजदूर ये खा सकता है?" और उसे सैनिक का जीवन याद आया—वह बोल उठाः "एक सैनिक यह खा सकता है?"

सुमन को विचारों में देख-माता उसकी ओर देखने लगीं। सुमन एक शब्द भी न बोला, और रोटी खाने लगा। इस डेढ वर्ष में आज स्वादिष्ट भोजन सुमन को कटु लगा। मानो रस ही नहीं। स्वाद ही नहीं।

१४

भागने की तैयारी

रोटी खाकर सुमन उपर चला गया। मजूरी करके भी कमाने के निश्चय ने उसे तसल्ली दी। पर फिर विचार आया, 'मजदूरी मिलेगी ?' स्टेशन पर उसकी एक टिरंक देखकर लडा-लडी करते हुए मजदूरों का दृश्य उसकी आंखों के सामने नाचने लगा। बेकार मजदूरों को इधर से उधर टल्ले मारते उसने देखा था। वह घबरा उठा। 'उसमें मजदूरी करने का साहस है ? साहस होते हुए भी मजदूरी मिल सकेगी ?'

उसका सिर दुखने लगा 'अरे ऐसा भी हो सकता है ? मजदूरी भी न मिलेगी ?' और फिर उसके सामने अनेक मजदूरों के चित्र खडे हो गये 'भैया—दादा—बापू—हाथ जोड़ता हूं' कहते हुए—दुबले पतले—मृत्युशैयापर पडे हुए। क्या वह यह सब कुछ कर सकेगा ? मजदूरी भी भीख मांगने जितनी हीन लगने लगी।

'तब क्या करूं ? माष्टरगिरी करलूं ?—वाह, यह भी ठीक है' मन में वह हंसने लगा 'कुछ न बने

तो माष्टरी ही सही—पर कितने ग्रेजुएटस उस धंधे के पीछे पड़े हुए हैं ? तो क्या खादी–भंडार ? स्वदेशी–भंड़ार...तब ? तब ?'

'एक लाख मनुष्य इस शहर में रहते हैं, क्या मुझे ही काम न मिलेगा ?—न—न—मैं इस प्रकार जिंदा नहीं रह सकता—मैं परदेशी वस्तुओं का व्यापार नहीं कर सकता—कदापि नहीं ! नौकरी ? नहीं—राज की गुलामी मैं नहीं स्वीकार सकता—डाक्टर, वकील ?...न...न'

सुमन सचमुच गभरा गया था—नेत्र मूंद आराम–कुरसी पर पड़ा हुआ—वह एक के बाद दूसरा विचार लेता था और थक कर फिर उसे बहता छोड देता था—वह थक गया— निराश हो गया।

"सुमनभाई।" नीचे से आवाज़ आई। हां, कान्ता थी। अपना दुःख भूलने के लिये कान्ता का आना उसे ठीक लगा।

कान्ता उपर आई। मुखपर विषाद की स्पष्ट छाया थी—यही कान्ता है वह जो हमेशा हंसा करती थी—जो अपनी मनोवेदना को हास्य में छिपाने की कला में सिद्धहस्त थी ? मुंह लाल है—गरदन ढली हुई। नेत्र खुले पर कठोर–से।

"इस समय कैसे कान्ता ?" सुमन ने पूछा।

"काम से।" कुरसी पर बैठते कान्ता ने कहा "तुम्हें अनंत का पता याद है ?"

"क्यों ? कुछ काम है ?"

"शायद अब पिता के घर में अधिक न रह सकूं।" कान्ता बोली।

"कैसे ?" सुमन ने पूछा—मानो कुछ जानता नहीं ।

"आज घर में दावानल सुलग उठा है। अनंत की बातचीतों का अर्थ पिताजी ने न जाने क्या लगाया है। होता है सुना दूं—मरज़ी आयगी—करूंगी, उन्हें अब बीच में बोलने का कोई अधिकार नहीं ।"

" अनंत को क्या लिखना है ?"

"कि मैंने शादी न करने का निश्चय किया है और रामपुर आने को तैयार हूं।"

सुमन कान्ता की ओर देखता ही रहा। कान्ता से भी वह गया बीता है—वह सोचने लगा ।

"पर कान्ता" नजदीक आकर सुमन ने कहा, "इससे पिताजी और नाराज़ न हो जांयगें ?"

" होने दो। और कोइ चारा नहीं। तुम कुछ रास्ता बता सकते हो ?"

" मैं ?" सुमन ने कहा, "मुझे तो खुद रास्ता नहीं सूझ रहा।"

"तुम्हारा रास्ता तो साफ है। रेवेन्यु दफतर में नौकरी करनी और चंद्राभाभी के साथ मोज से रहना । और इस आनंद में—मोज में—अभिवृद्धि करने को आया है अनिल । अब क्या बाकी है ?" कान्ता ने कटाक्ष किया ।

"पर मैं नौकरी नहीं करने वाला" सुमन ने गंभीर स्वर से कहा।

"तब ?"

"यह सोचना अभी बाकी है" सुमन अटका, फिर कहने लगा, "शायद मैं भी अनंत को लिखूं, और रामपुर आऊं।"

"सच ?" आश्चर्य में आ, कान्ता ने पूछा "पर चन्द्रा भाभी ?"

" साथ ही आयगी। "

"माताजी ? "

"इच्छा हो तो वे भी साथ चलेंगी–नहीं तो यहां। "

"पर मैं सोचती हूं मां और चन्द्राभाभी तुम्हें जाने न देंगे।"

"अगर मुझे जाना ही हो–कौन रोक सकता है ? "

"तो फिर देर क्या ? निश्चय क्यों नहीं कर डालते ? "

"निश्चय कैसे कर सकता हूं ? अभी चन्द्रा मैके है। अनिल को पैदा हुए अभी एक महीना भी तो नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में वह कैसे आसकती है ? और उसके बिना मैं जा नहीं सकता; और फिर विचार भी आता है यहां बैठे बैठे क्या हो सकता है ? "

कान्ता को इसमें कुछ रस न पड़ा। वह बोली–

"अच्छा ! पर मुझे क्या सलाह देते हो ?"

"कुछ भी नहीं" निराश–सा हो सुमन बोला। उसकी व्यथा और कौन समझ सकता है ?

"एक काम करोगे ? " आसपास देख कान्ता ने पूछा।

"क्या ? " कान्ता के मुख के भाव को देख सुमन चमका और नज़दीक आया।

"मुझे आठ दस रुपये दो। और अहमदाबाद के किसी ख़ास मित्र का पता" कान्ता ने धीरे से कहा।

"अहमदाबाद भाग जाना चाहती हो?" सुमन ने ज़ोर से पूछा।

कान्ता ने समझाया चुप रहो।

"वहां जाकर मैं अनंतभाई को ढूंढ निकालूंगी।"

"पर...पर अनंत क्या करेगा?"

"वे कुछ भी करेंगे। तुम इतना कर सकते हो?" कान्ता दृढता से बोल रही थी। उसकी आवाज सख़्त थी।

"अच्छा" मन्द स्वर से सुमन ने कहा।

"अच्छा तो लाओ" कान्ता ने हाथ बढ़ाया।

सुमन चुपचाप कान्ता को ताकने लगा। कुछ देर के लिये स्तब्धता छागई।

"पर तेनें चारों ओर का विचार कर लिया?" सुमन के शब्द टूटते थे।

"यह काम तुम्हें सौंपा है" कान्ता सख्त बनती जा रही थी।

"ठहर कान्ता। कल जाना। आज ठहर जा" कान्ता को बीच ही में अटकाते हुए सुमन ने कहा "बस, एक दिन। यक़ीन कर, मैं तेरे ही मार्ग पर हूं।"

"किन्तु अब पिता के घर एक दिन भी रहना मुमकिन नहीं।"

"कुछ सहन करके भी एक दिन निकाल दे।"

कान्ता विचार में पड़ी। कुछ देर दोनों चुपचाप बैठे रहे। किसीके ऊपर आने की आहट सुनाई दी। सुमन की माता थीं। दोनों डर गये—उन्होंने सुनलिया होगा ?

"सुमन !" माता ने कहा, "नीचे ही चल न ! आज तो तू अभी नाह्या भी नहीं। उठ कान्ता ! तू भी नीचे चल बहिन। मुझे तो कुछ आज अच्छा ही नहीं लगता।"

सुमन और कान्ता का भय दूर हुआ।

"चलो नीचे" सुमन की ओर देख कान्ता बोली।

दोनों नीचे उतर आये।

१८

मां बाप

कान्ता और सुमन के नीचे उतरने के कुछ देर बाद कान्ता चली गई। सुमन अकेला ही रह गया। कान्ता के बनिस्बत उसमें आत्मबल की कमज़ोरी है—ऐसा सुमन को प्रतीत होने लगा। कान्ता भग जायगी—पर उसका क्या होगा? इस डेढ वर्ष में कान्ता ने एक भी बंधन न बांधा था। और सुमन? एक के बाद दूसरे बंधनों में बंध गया था।

शाम तक सुमन घर में बैठा रहा। शाम को स्नान करते ही उसे स्फूर्ति लगने लगी। मन हलका हुआ। बाहर जाने का विचार ही कर रहा था कि चचा आये। सुमन की ओर एक तुच्छ दृष्टि डाल वे भीतर चले गये। सुमन को चचा का मुंह देखना भी ठीक न लगा।

सुमन ने सुना चचा भीतर उसकी माता से कह रहे थे "इसे समझाना भी है कि इस तरह से टल्ले मारने देना है? अगर पूरा जाप्ता न रक्खोगे—लड़का भाग जायगा। सख्ती की जरूरत है। रोते रह जाओगे, और बहू बेटा अनाथ हो जायंगे अनाथ।"

सुमन को इच्छा हुई कि चचा को दो चार सुना दूं–पर खून का घूंट पी गया। बाहर चल दिया। कोलेज की ओर निरुद्देश्य चल दिया।

संध्या का समय था। मीठा मंद मंद पवन बह रहा था। सूर्य के अन्तिम किरण क्षितिज पर फैल रहे थे। पक्षियों का कलरव वातावरण को सजीव बना रहा था। सौंदर्यलीला का पान तो न कर सका सुमन–पर मनश्शांति को अवश्य अनुभव की।

कल तो कान्ता चली जायगी–सुमन दुःख से फिर विचारों में पड़ा–न उसके किसी मित्र के पास जाने की इच्छा होती है–अगर कान्ता चली गई तो अपनी मनोव्यथा किससे कहेगा ? पर कान्ता जायगी कहां ? उसके भागने के समाचार से सारे शहर में हाहाकार मच जायगा–और उसके पिता की स्थिति ? सुमन के मन में विचारों की धाराएं बहने लगीं।

कोलेज छोड़ सुमन आगे निकल आया। पक्षियों का कलरव शान्त हो चुका था, और संध्या उतर चुकी थी। आकाश स्वच्छ था और तारागण चमक रहे थे। सुमन राह में खड़ा रहा और चारों ओर निगाह फैलाने लगा। वह इस विश्व में बिलकुल अकेला है–उसे लगने लगा। नीरव शांति उसे भयंकर लगने लगी। सुमन वापिस लौटा। जल्दी ही बस्ती में मानों लौटना चाहता हो–वह जल्दी से पैर उठाने लगा।

सुमन घर आया। बाहर की ही कुरसी पर लेट गया–उसी अपार वेदना में झूमता हुआ। माताजी आई।

"भैया ! आज इतना उदास क्यों है ?"

"यहां अब अच्छा नहीं लगता।"

"क्यों ?"

मै दफ़्तर में क्लरकी तो कर ही नहीं सकता-और चाचा मुझे कराये बिना न मानेंगे--और वैसे भी निठल्ला-बैठे बैठे क्या करूं ?"

"पर भैया ! नौकरी तो करना ही पडेगा न ?"

"नहीं-मैं नहीं कर सकता। अफसरों की खुशामद करना और किसानों को चूसना-मुझसे नहीं हो सकता। मैं जानता हूं-मां ! तू दुःखी होगी-पर-मैं लाचार हूं-अपना मार्ग मैं निकाल लूंगा।"

"पर मेरा और बहू का क्या ?"

"अपन सब यहांसे चल देंगे।"

"कहां जायंगे ?"

"जहां स्वमानपूर्वक दाल-रोटी मिले।"

माता कुछ समझ न सकीं। पर संग्राम के समय इससे भी न्यारी और दिल हिला देने वालीं दलीलें भी सुमन ने पेश की थीं-माता को याद आया।

"पर हम तो यहां से कहीं नहीं जाना चाहते।"

"तो यहां क्या करेंगे ? चाचा के शब्द मुझसे नहीं सहे जाते।"

"तो अपन अलग हो जांय। तेरे बाप के पैसे है-उसमें से अभी तो चल जायगा। आगे की बात आगे। भगवान हैं।"

सुमन अभी बोलना ही चाहता था "मुझे अपने हिस्से के पैसे न चाहिये"–पर माता के हृदय को धक्का लगेगा इस दृष्टि से वह कुछ न बोला।

"कैसे चुप हो गया ? कह दूं आज चाचाजी से तेरे ?"

"नहीं–अभी ठहरना, चाचाजी से मत कहना। मुझे विचार कर लेने दे।"

"सुमन" कुछ देर बाद मा ने पूछा, "आजकल कान्ता क्यों बार बार आती है ?"

"योंही" सुमन ने जवाब दिया।

"योंही नहीं आ सकती। तेरे उस मित्र के साथ भी वह अनेक गप्पें मारती थी; आज तो तू भी खूब बैठा बातें कर रहा था।"

सुमन माता की ओर दृष्टि गाड़े बैठा था।

"देख ! मैं कहे देती हूं तू उसकी बातों में न पड़ना। वह जाने और उसका काम। शादी करना हो तो करे नहीं तो नहीं।"

सुमन चुप था।

"अच्छा, बता ! तेरे साथ क्या बातें करती थी ?"

"बातें ? और क्या ! वह शादी करने वाली नहीं।"

"तो क्या करेगी ? आजकल की लड़कियां ! शादी न करेगी तो क्या सारा जनमारा क्वांरी ही रहेगी ?"

एक दिन पहले सुमन ने भी यही कहा था अनंत से। सुमन शरमिंदा बना।

"उसकी इच्छा की बात है। करे न करे। लड़के क्वांरे रह सकते है तो लडकियां क्यों नहीं ?"

माता आश्चर्य में थीं; बोलीं "नहीं लडकियां नहीं रह सकतीं।"

"पर मा" सुमन बोला, "अपन किसी गांव में रहने चलें तो ?"

संग्राम के समय भी सुमन ने गांव की बात कही थी—माता को याद आया।

"नहीं भैया ! हमें कहीं नहीं जाना। अगर तुझसे काम–धंधा न हो, तो घर बैठा रहना। मुझे तेरा स्वराज न चाहिये।"

"पर मैं स्वराज की बात कहां करता हूं मां ! मै लड़ाई की बात नहीं करता।"

"गांव में तू हाथ पैर बांधे थोड़ा ही बैठने वाला है ? अभी ही—वह वजुभाई न गिरफ्तार हुआ ? तुम अपना घर पकड़-कर बैठो—ऐसे थोड़े ही हो ? सारे गांव की पीछे पड़ते हो—फिर सरकार गिरफ्तार न करे तो हो क्या ?"

माता को किस तरह समझाया जाय—सुमन सोच न सका। वहांसे जाने का प्रयत्न सुमन ने करा। वह कुछ न बोला।

"भोजन करता है न" माता ने पूछा।

"हो" सुमन बोला। चुपचाप थाली परोसी गई और चुप-चाप ही सुमन ने खाया। उपर जाते समय सुमन ने कहा।

"मां ! मुझे नींद आती है, सो जाता हूं।"

ऊपर के कमरे में सुमन का बिस्तर बिछा हुआ था। रूई से भरा मोटा गद्दा और धोली दूध जैसी चादर देख सुमन का दिल धक्क सा होगया। वह सो सकता है ऐसे मुलायम बिछोने पर? कल ही रात क अनंत के साथ वह दरीपर ही सोया था। गद्दे को समेट उसने कोने में रख दिया, और दरीपर ही लेट लगादी।

अभी दस मिनिट भी नहीं हुए होंगें, और नीचे से आवाज़ आई–कान्ता की। उसे लगा माताजी उसे वापिस भेज रहीं थीं– वहीं से वह चिल्लाया "कान्ता। मैं जगता हूं। ऊपर आ तो!"

कान्ता ऊपर आई। सुमन दरीपर बैठ गया। पास का कम्बल ले कान्ता भी उसपर बैठ गई।

"क्यों?"

"मैं सुबह की गाड़ी से भाग रही हूं।"

"पर एक दिन में देर हो जायगी?"

"एक दिन ठहर गई तो फिर कभी न जा सकूंगी, पिताजी ने मेरे पर जाप्ता रखना शुरू कर दिया है। स्कूल जाना आज से बंध किया गया है। शायद घर पर चौकी पहरा भी लग जाय। बोलो! सहायता कर सकते हो? नहीं तो मुझे घर में से चोरी करनी पड़ेगी।"

सुमन स्तब्ध होकर कान्ता को ताकने लगा।

"चलो, मुझे देर हो रही है। शायद कोई मेरी तलाश में भी यहां आय।"

सुमन खड़ा हो रहा था कि नीचे से कान्ता के पिता की बुलंद आवाज़ सुनाई दी। कान्ता चमकी। सुमन सहम गया। दोनों ने नीचे की बातें सुनीं और ऊपर जाने का इन्तज़ार करते स्वस्थ बैठे रहे।

कान्ता के पिताजी ऊपर आये। रोष भरी मुद्रा से दोनों की ओर देख, पिता ने इशारा किया—कान्ता को नीचे उतरने का। उनका रुद्र स्वरूप देख सुमन डर गया। कान्ता ने पिताजी के मुख की ओर देखा और शान्ति से नीचे उतरने लगी– मानो कुछ हुआ ही नहीं। पिताजी घूमे—सुमन की ओर देखा और नीचे उतर गये। सुमन आंखे फाड़ देखता रहा– मामला क्या है?

१६

रेवाबाई धर्मशाला में

चंद्रशंकर से बिदा ले अनंत सीधा धर्मशाला की ओर चलदिया। गांवों में वह खूब घूमा था फिर भी आज उसे थकावट मालूम हुई। और थकावट के मारे कुछ सोचना भी दुष्कर प्रतीत हुआ। धर्मशाला में पहुंचते ही–खाट बिछा लेटते ही वह निद्राधीन हो गया।

अनंत को पहुंचा कीर्ति अपने कमरे में गया और दिनभर का काम–जो बाकी था खतम करने बैठ गया। आश्रम का हिसाब इत्यादि एकाध घंटे में खतम कर वह कातने बैठा। नो बजे की घंटी के बाद शांति व्याप्त होने लगी। दसेक मिनट में तो सन्नाटा छा गया। कीर्ति कातने में मशगूल है या विचार में-कहना कठिन था। एक के बाद दूसरा तार खींचता हुआ अनंत बैठा था–तार लपेटता था, फिर खींचता था।

साडे नो बजे के करीब उसने कातना बंद किया। चरखा एक कोने में रख रहा था कि मोटर की आवाज़ सुनाई दी। चरखा रख वह दरवाज़े के पास आया। आश्रम के दरवाजे के पास ही लालटेन जल रही थी और बत्ती के मंद प्रकाश में दो व्यक्ति भीतर

आती दिखाई दीं। ये व्यक्तियां कार्यालय की ओर जा रही थीं—कीर्ति बाहर आया। कीर्ति को देख वे उस ओर मुड़े।

"क्यों भई! किसका काम है?" कीर्ति ने पूछा।

"कोई महमान आज यहां आया है?" एक ने पूछा जो युवक था।

"तुम्हें किससे काम है?"

"अनंत नाम का मेरा दोस्त..."

"तुम्हारा नाम?"

"विनोद।"

"मेरा नाम कीर्ति" हर्ष में कीर्ति ने कहा।

"ओह!" विनु ने कहा, "तुम यहां कहां से? पर अनंत कहां है?"

"तुम भीतर तो आओ।"

"अनंत का बहुत जरूरी काम है। ये उसका पिता हैं" "विनाद ने वहीं से जवाब दिया।

कीर्ति ने अनंत के पिता की ओर झांका। पचासेक वर्ष के अमुभाई के मुख पर चिंता प्रकट थी। कीर्ति ने उत्तर दिया।

"अनंत रेवाबाई धर्मशाला में होगा। शहर में मित्रों से मिलना है इस से यहां न ठहरा। इसी समय वहां जायंगें?"

विनु ने अमुभाई की ओर देखा। उनकी सम्मति देख कीर्ति तैयार हुआ। कमरे को बंद कर बाहर निकले।

रेवाबाई धर्मशाला के पास मोटर आन पहुंची। दरवाज़े पर

तलाश कर तीनों अनंत के कमरे की ओर गये। दरवाजे के सामने पहले मंजलेपर अनंत का कमरा था। नंबर ढूंढ कमरे तक आये। कमरा खुला हुआ था। बीच में एक लालटेन जल रही थी। विनोद अंदर गया। विनु के पीछे पीछे अमुभाई भी। सूतली की खटिया पर बिना बिछाये लेटे हुए अपने पुत्र को देख अमुभाई को दुःख हुआ। खूंटी पर कम्बल लटक रहा था। पास ही थैली भी। चप्पल खाट के पास। कमरे में मनोमान गर्द थी।

थका हुआ अनंत खर्राटे ले रहा था। विनोद ने उठाने की कोशिश की, पर न उठा। "अनंत! अनंत!" कंधे को हिलाता हुआ विनोद पुकारने लगा। आंखों को मलता हुआ अनंत जब खाट पर बैठ गया, और अपने सामने तीन मूर्तियों को खड़ा देखा—तो वह समझ न सका मामला क्या है। जब पूर्ण रीति से होश में आया तो पिताजी को पहचाना—खाट से नीचे कूदा और बोला।

"पिताजी आप? विनु तू? इस समय? कीर्ति?"

"तेरी माता बहुत बीमार हैं अनंत!" धीरे से विनु ने कहा।

और सब कुछ अनंत समझ गया।

"अब यहीं सोना है या आश्रम में?" कीर्तिने पूछा।

सुबह की गाड़ी में तो जाना ही है—इसलिये यहीं ठीक रहेगा। तुम बिस्तर का इन्तजाम करो" विनु ने कहा।

कीर्ति नीचे गया। तीनों खाट पर बैठे।

"अचानक बीमार हो गई?" अनंत ने पिता से पूछा।

"अचानक तो नहीं। इन पांच वर्षों से साधारण बीमार तो

थीं ही। इन दो महीनों से अधिक खराब हैं। तुझे पत्र भी लिखा था। पर जवाब ही नहीं।"

अनंत चुप था।

"दो दिन पहिले उनकी तबियत यकायक बिगड गई। सब ने कहा मुझे रामपुर जा, तुझे लाना चाहिये। रामपुर पहुंचा तो पता चला तुम भावनगर हो। अच्छा हुआ उसी दिन तुम्हारा पत्र आया। नहीं तो हमें भावनगर जाना पड़ता।"

अनंत ने विनु की ओर देखा।

"अब राजकोट चले जाओ। माताजी की तबियत ठीक हो जावे तब तक ठहर जाना" विनु ने कहा।

तीन खाटें और गद्दे उठवा कीर्ति आ पहुंचा। सब को बिछा, सोने की तैयारी कर रहे थे कि पिताराम ने पूछा "तो गद्दा भी नहीं बिछाया जा सकता अनंत ?"

अनंत ने जवाब न दिया। अमुभाई कोट और पघडी उतार खाट में लेट गये।

अनंत कुछ देर बाद पिता के खाट के पास गया। अमुभाई जाग रहे थे। अनंत खाट पर बैठ गया। एक घंटे तक पिता पुत्र घर की बातें करते रहे। अमुभाई अपने दुःख के पोथे सुना रहे थे और अनंत चुपचाप सुन रहा था। खाट में लेटे कीर्ति और विनु भी सुन रहे थे। अंत में अनंत उठा, और बिस्तर पर आया—देखा विनु जग रहा है—इच्छा हुई बातें करें पर पिताजी को बुरा लगेगा इस दृष्टि से चुप रहे।

लंबी रात तक उस कमरे के चारों व्यक्ति करवटें बदलते रहे—निद्रा लाने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए।

१७

घर की राह

छः एक बजे अमुभाई की आंखे खुलीं। उन्होंने अनंत और विनु को जगाया। कीर्ति भी जग गया। तैयार हो सब स्टेशन पर आये। टिकिट की खिड़की की ओर आते हुए विनु ने कहा।

"पिताजी की और तुम्हारी टिकिट ले लेता हूं। कीर्ति और मैं वापिस जांयगें।"

"क्यों–तुझे रामपुर नहीं जाना ?"

"एक दिन यहीं ठहरूंगा। कल सुबह या शाम को चल दूंगा। आया हूं तो मित्रों से मिल लूं।"

"पर अपन तो कुछ बात चीत भी न कर सके।"

"भावनगर के समाचार तो पत्र से जाने–अहमदाबाद के राजकोट से लिखना।"

"प्लेटफार्म पर आये। अनंत ने नजर दौडाई पर कोई मित्र दिखाई न दिया। पिताजी की ओर देखा–गंभीर थे। वे एक बेंच पर बैठ गये। तीनों मित्र टहलने लगे।

"तुम और विनु तो इस समय ही मिले न ?" अनंत ने कहा।

"हां। कभी मुलाक़ात न होने पाई इससे पहिले।" कीर्ति ने कहा, "जब मै गिरफ्तार होता तो वे छूटते–मैं छूटता तो वे होते।"

"अनंत ! राजकोट में तेरी परख होने वाली है।"

"क्यों ? पिताजी कुछ कहते थे ?"

"माताजी की स्थिति अच्छी नहीं है यह सच—पर सारे कुटुंब की स्थिति भी ऐसी ही है।"

"और कोई बीमार ह ?"

"नहीं–नहीं–बीमार तो खास कोई नहीं है पर......"विनु अटका। फिर बोला "वहां जाने पर पता पड़ जायगा।"

"पर कह तो सही। क्या मामला है ? पिताजी ने कुछ कहा ?"

"कहा है। अच्छे में अच्छा सैनिक भी पिघल जाय ईतनी वेदना से कहा है।"

अनंत कुछ कहना चाहता था कि गाड़ी आई। सारा प्लेटफार्म कांप उठा। डिब्बा ठीक कर, अमुभाई ने सामान जमा एक सीट पर बैठक ली। अनंत और विनोद गाडी से नीचे उतरे और कीर्ति से कहा।

"जरा बैठना। अभी आते हैं।"

कीर्ति डिब्बे में बैठा रहा।

"जेल से छूटने के बाद घर कितने दिन रहा था ?" विनु ने पूछा।

"दो दिन।"

"उस समय अपने कुटुंब की स्थिति के संबंध में कुछ जाना था?"

"स्थिति खराब होती चली जा रही है–ऐसा जाना था। और यह भी जाना था कि बडेभाई से अब बनता नहीं।"

"अब क्लेश होता है ऐसा ही नहीं–पर खुल्लमखुल्ला लड़ाई हो रही है और आठ से दस हज़ार का कर्ज भी हो गया है।"

समाचार नये थे पर अनंत के मन पर असर न हुई।

"पिताजी कहते थे–उनकी तबियत भी अब बिगड़ती जाती है। फेंफसे की बीमारी हो गई है। कमला सतरह बर्ष की हो गई है। उसकी चिन्ता सिर पर है–बडी परेशानी में है।"

अनंत सब सुन रहा था।

"अनंत!" विनु चलते चलते बोला "इन सब कठिनाइयाँ से पार उतर जायगा?"

जवाब देने के बदले अनंत सुमन की ओर देखने लगा–उसकी आंखों में विनु के प्रश्न के लिये आश्चर्य था।

"अपना धर्म ठीक करने में तुझे अनेक कठिनताएं आयंगी" विनु बोला।

अनंत कुछ न बोला। गाडी चलने का समय हो चला था–डिब्बे के पास आये।

"तू कल यहां से चल देगा न ?" अनंत ने विनोद से पूछा।

"हां। क्यों ?"

"वैसे ही।"

"कुछ खास काम हो तो आज ही चल दूं। मेरी आवश्यकता हो तो राजकोट आऊं ?"

"नहीं। मैं तो इसी लिये पूछ रहा था—कि शायद रामपुर कान्ता या सुमन का पत्र आवे।"

"मैं कल अवश्य चल दूंगा। शायद आज रात की गाड़ी से भी चल दूं। कान्ता को कुछ खास लिखना है ?"

"नहीं। खास कुछ नहीं। उसका पत्र आवे तो राजकोट भेज देना।"

"मुझे राजकोट कितने दिन लगेंगे ?" अनंत ने कुछ देर बाद विनु से पूछा।

"यह कहना मुश्किल है—पर तुझे परिस्थिति से अच्छा मुकाबला करना पड़ेगा—अच्छी टक्कर झेलनी पड़ेगी।"

"मैं उन टक्करों को न झेल सकंगा विनु ?"

"झेलने को तो कोई बात नहीं भैया ! तेरे में अनंत शक्ति है—पर शायद तुझे अपना कर्तव्य न सूझे। तू ऐसे चक्कर में पड़ जाय कि कुछ राह ही न मिले।"

अनंत के मुखपर कोई चिन्ता न दिखाई दी; विनु समझा अभी अनंत परिस्थिति की गंभीरता को—गहनता को—नहीं समझ सका है।

गाड़ी चलने का समय हुआ । कीर्ति नीचे उतरा । सीटी दी गई—अनंत चढ़ गया ।

गाड़ीचल दी । अनंत को लगने लगा—मानो गाड़ी उसे बलात्कार से विरुद्ध दिशा में ले जा रही है । उसने नमस्ते किया । विनु और कीर्ति ने हंसते हंसते सलाम झेली—और वे अदृश्य हुए ।

कुछ देर बाद अनंत पिताजी के पास आया । अनंत की ओर पिता ने देखा—मानो उन नेत्रों में अंगार भरे हों—अनंत इस दृष्टि को न सह सका—खिड़की में से दौड़ते वृक्षों की ओर देखने लगा ।

अनेक पटरियों पर कूदती फांदती जब गाड़ी साबरमती के पुलपर आई तो अनंत ने साबरमती—जेल की ओर देखा और आश्रम के दर्शन किये ।

"अनंत !" पिताजी बोले, "तेरी मां तेरे लिये मर रही है ।"

अनंत फिर भी चुप था । पिताजी चुप हो गये—और गाड़ी अपने तीव्र वेग से आगे बढ़ती ही गई ।

१८

प्रेम की समाधि

ज्यों ज्यों अहमदाबाद दूर जाता गया, अनंत सोचने लगा-वह कहीं दूर दूर स्थल पर जा रहा है जहां से लौटना शक्य नहीं। पिता के साथ बातें करने की इच्छा न थी, फिर भी घर के समाचार जानने लगा। पिताजी घर के जो भयंकर समाचार दे रहे थे-अनंत को छूते न थे-पर वे उसकी पुरानी कठिनताओं में अभिवृद्धि करते थे। मन में लगता था पिताजी कठिनताओं को फिजूल बडा भारी स्वरूप दे रहे हैं। आर्थिक कठिनता में उसे रस न पड़ा। बडेभाई का क्लेश वह सुनना न चाहता था। कमला की चिन्ता फिजूल-सी लगने लगी। जो वस्तुएं पिताजी को जीवनमरण तुल्य लगती थीं, अनंत को तुच्छ लगने लगीं। पर अनंत चुप था-पिताजी की कठिननाओं में अपनी मुसीबतों का पचड़ा सुनाना उसे ठीक न लगा।

पिताराम सोच रहे थे-इन सब बातों को सुन अनंत का दिल पसीज जायगा।

सारे दिन गाड़ी में ये ही बातें होती रहीं। इन पांच वर्षों में अनंत ने आज ही इस प्रकार की बातें सुनी थीं। मात्र-घर की ही बातें

सुना करना—अनंत को अच्छा न लगता था। उसे बातें करने का शोक था—पर वे बातें तो होनी चाहियें देशहित की या परदुःख मिटाने की। और जब पिताजी ने सारे दिन घर की बातें किया कीं—अनंत ऊब उठा।

पिताजी बातें करते—वह चुपचाप सुना करता। पर ध्यान लगा रहता कान्ता में-विनु, सुमन और चंद्रशंकर में। कल रात को ही जो जो बातें चंद्रशंकर ने की थीं—अनंत के सामने घूमने लगीं। उसे विचार हुआ—गांवों गांवों में घूमकर चंद्रशंकर की बातों की घोषणा कर डालूं।

इस प्रकार के मंथन होते हुए भी अनंत को डर लग रहा था। 'वह वापिस आ सकेगा या नहीं।' घर नजदीक आता जाता था और भय बढ़ता जाता था। सोचने से कुछ कारण न मिलता था—किन्तु उसे लगता था मानो उसके आदर्श छिन्नभिन्न हो रहे हैं। पिताजी की बातें रुचती न थीं—पर डर लगता था मानो ये ही बातें उसे बंधनों में सदैव के लिये जकड़ लेंगीं और वह पछाड़ें खा खा कर मर जायगा।

पर गाडी को इन चिन्ताओं की थोडी ही पड़ी थी? वह तो अपने ठीक समय पर राजकोट स्टेशन पर आ पहुंची। एक वर्ष बाद आज राजकोट शहर में अनंत आ रहा है। कैसा विचित्र-सा शहर आज लगता है! टांगा ठीक कर घर को चल दिये। घर नज़दीक आता जा रहा था—और भय, जिज्ञासा और दुःख अनंत पर साम्राज्य जमा रहे थे।

अमुभाई का मकान दुमंजला था। घर उन्हीं का था पर गहने रक्खा हुआ था। नीचे दो कमरे, दालान और रसोईघर। ऊपर

भी इसी तरह। ऊपर एक छत भी थी–खुली। इसी मकान में अनंत पला था।

घर में पहुंचते ही दोनों बहिनें हंसती हंसती सामने आई। दस वर्ष की कुसुम हर्ष में इतने जोर से चिल्लाने लगी कि ऊपर से बड़े भैया नवनीत आये। नीचे के रसोईघर में से घूंघट लेती हुई अनंत की भाभी भी आई। बडेभाई के मुख पर गंभीरता थी। भाभी का मुंह दिखाई न देता था। छोटी बहिन हंसती थी। अर्ध गांभीर्य और अर्ध हास्य से अनंत ने घर में प्रवेश किया।

थैली और कम्बल रख अनंत सीधा ऊपर गया। खाट पर अनंत की मां लेटी हुई थीं। अनंत ने देखा पिताजी की बात सच थी। माता की तबियत सचमुच खराब थी। क्या वही यह एक वर्ष पहले की माता हैं? हाडमांस के सिवा कुछ नहीं। कितनी भयंकर लगती हैं?

अनंत के पीछे पीछे ही अमुभाई आये। नजदीक आ वे बोले–"अनंत! हां अनंत आ गया है।"

अनंत की मां का नाम कस्तूर। उन्होने नेत्र खोले। अनंत खाट पर बैठ गया। माता ने पुत्र का हाथ हाथ में ले अपने सिर पर ले लिया। अपनी माता की ऐसी करुण दशा देख–अनंत का हृदय रोने लगा।

"आया बेटा!" मन्द आवाज थी। "अब कहीं मत जाना लाल!" और माता के दोनों हाथ पुत्र को भेटने के लिये ऊंचे हुए। माता के सिर पर रखा हुआ हाथ खिसककर हृदय पर आया। अमुभाई ने पत्नी के बढ़े हुए हाथों को पकड़कर नीचे कर दिये। दोनों हाथ छाती पास गये–और उन्होंने हृदय पर धरे अनंत के हाथ को

दबाया। अनंत ने माता के हृदय के धबकारों का अनुभव किया। मानो माता के हृदय में से एक झनझनी उठकर उसके सारे शरीर में व्याप्त हो गई। माता और पुत्र का प्रेम पिता न देख सके, वे नीचे उतर गये। जाते जाते बोले–

"अनंत! ज्यादा बातें मत करना। तबियत और बिगड जायगी।"

अनंत मानो समाधि में था। ये शब्द उसने सुने तक नहीं। माता के हृदय पर हाथ रक्खे वह बैठा ही रहा। जब माता ने करवट बदली–अनंत समाधि में से मानो जागा और आसपास देखने लगा। पास की एक कुरसी पर बैठने जाता था कि माता ने कहा "बैठ अनंत! अब वापिस मत जाना हं!" वे ही करुण शब्द! अनंत का दिल पसीज उठा। मानो कोई नये संसार में आ पड़ा हो! क्या वही माता के मृत्यु का कारणभूत है? अनंत कांप उठा। उसने जोर से माता के दुबले हाथ को पकड़ लिया।

"मां!" वह बोला–दोनों की आंखें मिलीं और चार आंखें होते ही–नेत्र में से आंसू बहने लगे।

इस दृश्य को देखनेवाला उस समय उस कमरे में कोई न था।

१९

उस रात को

रात के ग्यारह बजे थे। अनंत अब तक न उतरा था यह देख अमुभाई ने नवनीत को ऊपर भेजा। नवनीत ने ऊपर आकर देखा अनंत मां के शरीर के सहारे ऊंघ रहा है। दोनों को इस प्रकार निद्राधीन देख नवनीत घबरा गया। फौरन नीचे आया।

"क्यों क्या है?" अमुभाई ने पूछा।

"अनंत—मां की छाती पर ऊंघ गया है। दोनों की आंखें बंद है।"

अमुभाई एकदम खड़े हो गये। कुसुम और कमला घबरा गईं। अमुभाई ऊपर गये। अनंत इस समय जगने की तैयारी में था और माता के नेत्रों की ओर देख रहा था। अमुभाई यह दृश्य देख पागल-से हो गये।

आश्चर्यपूर्वक वे अनंत की ओर देखने लगे। अनंत के नेत्रों ने अमुभाई से सबकुछ कह दिया। वे दौड़े और पत्नी का हाथ हाथ में लिया। हाथ ठंडे थे। नाड़ी थककर मानो विश्राम ले रही थी। पिता के मुंह से चीत्कार निकल गया।

नवनीत, उसकी पत्नी और दोनों बहिनें ऊपर दौड आये। सब की आंखें माता पर गड़ी हुई थीं। माता के होठ हिले। अमुभाई ने देखा अभी श्वास मन्द मन्द चल रहा था। नाडी फिर चलने लगी थी।

अनंत यह सब गंभीर मुखमुद्रा से देख रहा था। अमुभाई ने आदेश दिया सब लोग नीचे उतर जायँ।

"नवनीत!" वे बोले, "अनंत के लिये नीचे बिस्तर बिछाना—तू ऊपर सोना।"

"मैं जग सकता हूं" अनंत ने कहा।

"आज तू थका हुआ है। आराम कर, कल जगना।"

"मै थका नहीं हूं—और दादा सारी रात जागें—इससे बहतर है हम दोनों एक के बाद दूसरा—इस तरह—जागें।"

"मै हूं न?" पिताजी के शब्द।

अनंत अधिक न बोला। नीचे चला गया। उसकी भाभी गद्दा बिछा रहीं थीं—पर वह न बोला। कमरे के एक कोने में एक टेबिल और दो कुरसी पड़े थे। पास ही एक लकडे की बेंच पड़ी थी। एक ओर बड़ा-सा 'कबाट' खड़ा था। वह बेंचपर बैठ गया।

"अब तो यहीं रहोगे न?" बडेभाई साहब ने कुर्सीपर आसन जमाते हुए कहा। दोनो बहिनें अनंत को तांक रहीं थीं।

अनंत ने उत्तर न दिया। गंभीर मुद्रा से बडेभाई साहब को देखता रहा।

"मै यहां अब रहनेवाला नहीं, समझा अनंत !" बडेभाई साहब बोले, "माताजी को ठीक होते ही—मैं चला जाउंगा।"

"आप जा सकते हैं" अनंत ने धीरे से कहा ।

"पर घर का खर्च कौन चलायगा—इसका भी विचार किया ? मैंने पांच वर्ष तक निभाया—अब मुझ में दम नहीं । बंबई का खर्च तो तू जानता ही है ।"

अनंत चुप था । क्या उत्तर दे ? वह सोच न सका । बिस्तर बिछते ही वह लेट गया । नवनीत क्रोधभरी दृष्टि फेंकता हुआ ऊपर चलदिया । अनंत की भाभी उसके बिस्तर के पास आईं । उनका नाम निर्मला । उन्हें देख अनंत बिस्तर पर बैठ गया ।

"अच्छे तो हो ?" भाभी ने हंसते हसंते, बैठते हुए कहा ।

"हां भाभी, तुम मझे में ?"

"मझे में ! हां मझे ही में । क्या कहूं भैया ! एक घड़ी की फुरसद नहीं । कमला बहिन या कुसुम बहिन तो मदद करने-से रहे ! घर का सारा बोझ तो मेरे ही सिरपर है । तुम तो जानते ही हो ।"

दोनों बहिनें सुन रहीं थीं, अनंत और भाभी की ओर देख रहीं थीं ।

"अब तो लड़ाई में न जाओगे न ?"

"जैसी ईश्वर की इच्छा ।" अनंत ने कहा ।

"तुम्हारे भाईसाहब अगर यहां रुक गये तो बंबई की नौकरी टूट जायगी—फिर तुम जानते हो न, ऐसी नौकरी हाथ न लगेगी ।"

अनंत चुप था।

"और तुम जानते हो, तुम्हारे पिताजी से और उनसे एक घड़ी भी नहीं बनती। रोज ही घर में लड़ाई।"

अनंत अंगड़ाई ले रहा था।

"नींद आती है? हो-हां थक गये होगे। सो जाओ। सो जाओ।"

भाभी जाने को तैयार हुई।

"थका तो क्या? पर हां, कल रातभर नींद न आई।"

"अच्छा। अच्छा। सो जाओ आराम से। कमला बहिन! तुम भी सो जाओ हं।"

भाभी और बहिनों के चले जाने के बाद अनंत बिस्तर पर लेट गया।

"कमु!" अनंत ने लेटते लेटते पुकारा।

कमला और कुसुम दोनों आये। दोनों के मुख पर उल्लास था। इशारे पर दोनों बहिनें बिस्तर पर बैठ गईं-पर दोनों की आंखें सीडीयोंपर लगी हुईं थीं।

"क्यों उधर क्या देखती हो?"

"दादा आवेंगें।" कुसुम धीरे से बोली।

अनंत को आश्चर्य हुआ इस उत्तर से। बोला-

"आने दो। हर्ज क्या है?"

"नाराज़ होंगे।"

"क्यों? इसमें नाराज़ होने की क्या बात है?"

जवाब न था। उसने फिर पूछना शुरू किया।

"मजे में हो?"

दोनों बहिनें हंस दीं।

"तू क्या पढ़ती है कुसुम?"

"चौथी किताब।"

"तू?" कमला से पूछा। कमला ने नीचा मुंह कर लिया।

"वह तो नहीं पढ़ती" कुसुम ने जवाब दिया।

"क्यों? एक वर्ष पहिले मैं आया तब तो तू पढ़ती थी न?"

"ना" कमला ने मुश्किल से कहा।

"क्यों छोड़ दिया?"

"माताजी ने मना किया।"

"कब स्कूल छोड़ी।"

"पहली अंग्रेजी में आई तब।"

"यानी—मैं लड़ाई में गया उसके दूसरे वर्ष ही, क्यों?"

"हां।"

"पर तेने कुछ न कहा? पिताजी से कहा होता। स्कूल क्यों छोड़ दी?"

जवाब देने के बदले कमला अनंत के मुंह को ताकने लगी—इतनी-सी बात भी भैया नहीं समझते ?

"कुसुम ! तू तो पढेगी न ?"

"ओ ! पिताजी हररोज़ कहा करते है कि ऊठ जाऊं। चौथी की परीक्षा के बाद देख लेना, वे मुझे स्कूल छुड़ा देंगें।"

"अब नहीं उठावेंगें हं" अनंत बोला।

"भैया !" कुसुम के आवाज़ में अजब मिठास थी, "अब तो तुम यहीं रहोगे न ?"

अनंत उत्तर न दे सका।

"कुसुम !" अनंत गंभीर स्वर से बोला, "दो चार दिन के बाद कहूंगा हं।"—अन्तिम शब्दों का गांभीर्य हास्यद्वारा मिटाने का अनंत ने व्यर्थ प्रयत्न किया।

"अनंत !" उपर से आवाज़ आई। आवाज़ पिताजी-सी थी।

"जी" अनंत ने कहा।

"जरा ऊपर तो आ।" गंभीर आवाज़ थी।

अनिष्ट की कल्पना करता हुआ अनंत ऊपर गया। नवनीत खाट के पास खड़ा था। अनंत ने व्याकुल नेत्र से खाट की ओर देखा। माता का देह शांत पड़ा था। गरदन एक ओर ढल गई थी। अनंत समझ गया। एक कदम आगे न बढ़ सका। ज़मीन पर ढल पड़ा। अमुभाई के मुख से एक चीख निकल गई। दोनों बहिनें ऊपर दौड आईं।

२०

सुधारक पिता

कान्ता के पिता भावनगर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। सुमन के चचा की भाँति वे भी रुई का व्यापार करते थे। आसपास, व्यापार में अच्छी ख्याति थी आपकी। खुद खादी पहिनते थे, और और लोग भी खादी ही पहरें—ऐसी उनकी इच्छा थी। 'गांधी जयंति' या 'राष्ट्रीय सप्ताह' में कंधे पर खादी के ताके डाल शहर में भटकना उन्हें बुरा न मालूम होता था। वे सुधारक विचार के थे। सुबह या शाम समाचार-पत्र पढ़ते, पुनर्लग्न या आंतरजातीय विवाह के समाचार पढ़ते आनंद में आजाते, और कोई पास बैठा हो—तो 'आधुनिक समाज' पर एक लंबा-सा लेक्चर भी झाड डालते। शहर के युवक लोग—फंड बंड इकट्ठा करना हो तो आपके पास दौडे चले आते। भावनगर की एक भी ऐसी जाहिर-प्रवृत्ती न थी जिसमें प्राणजीवनदासजी का हाथ न हो—नाम न हो।

पर वे लडकियों की पढ़ाई के विरुद्ध थे—खास कर लडकियों के कोलेज जाने के और लड़कों के साथ हिरने फिरने के। उन्होंन खुद ने ऐसी तालीम हांसिल नहीं की थी-अपना

अहोभाग्य समझते थे। किन्तु दो वर्ष पूर्व जब आपके पुत्र श्री इन्दुलालजी विलायत की सफर के लिये तैयार हुए-तो उन्हें मानपूर्वक भेजने के लिये, आपने बडे समारोह से प्रीतिभोज की तैयारी की और उस में भावनगर के शेठ साहूकार और आफिसरान् को ही नहीं वरन् राष्ट्रसेवकों को भी निमन्त्रित किया था।

खादी की धोती, कुरता, कोट और पघड़ी पहरे हुए आप उन्हें देख सकते हैं। राज्य में आप का मान, ज्ञाति में आप की प्रतिष्ठा, और प्रखर व्यवहारबुद्धि इतनी कि कोई दुश्मन नहीं।

लडाई जब शुरू हुई, आप कहने लगे—हरेक का धर्म है कि खादी पहिने—चरखा चलावे—अस्पृश्यता निवारे और संग्राम के प्रति सहानुभूति रक्खे। युवकों को यह उपदेश कुछ ढीला—सा लगता पर प्राणजीवनदासजी का यह मत था—कौन उसे फेर सकता था। और यों तो वे सदैव ही सैनिकों को मदद करने में तत्पर रहा करते थे।

एक दिन पंदरह साल की कान्ता ने जब लड़ाई में जाने की इच्छा प्रकट की तो आपके आश्चर्य का पार न रहा। उन्हीं का पुत्र इन्दु कोलेज में पढ़ता था, खादी पहिनता था, जाहिर—सभाओं में कभी कभी व्याख्यान भी देता था, पर कभी उसने संग्राम में जुट जाने की इच्छा प्रकट न की थी। और आज यह पंदरह वरस की छोकरी—संग्राम में कूदने की इजाजत मांग रही है!

प्राणजीवनदास ने इस बात को हँस दिया। किन्तु कान्ता ने फिर हठ किया। भावनगर से गई हुई अनेक बहिनों के नाम गिनाये और वे अधिक विरोध न कर सके। और कान्ता ने बहिनों की एक टुकडी के साथ युद्ध में प्रयाण किया

प्राणजीवनदास के मुखपर अब कान्ता ही की बात थी–पर मन में होता था–"छोरी–खोटे मारग–गई है ।"

संधि होते ही कान्ता घर आई ।

जब कान्ता युद्ध में गई थी छठी अंग्रेजी में पढ़ती थी। आने के बाद फिर स्कूल में भरती हो गई। प्रवीण थी–होशियार थी–कुछ तैयारी बाद उसे सांतवीं में भरती कर लिया गया। अभी स्कूल में भरती हुए कुछ ही दिन बीते थे कि भावनगर में कपड़ों की दूकानों पर पिकेटींग शुरू हो गया–और कान्ता अधीर हो उठी। शुरू में तो दोनों काम होते रहे पर फिर तो उसने पिकेटींगपर ही अपना सारा ध्यान दे दिया। पिताजी नाराज़ थे–पर कान्ता इन बातों में स्वतंत्र-सी थी–पिता से पूछना तक उसने उचित न समझा।

'३२ की लड़ाई शुरू हुई। कान्ता कैसे बैठी रहती? इस वक्त तो पिताजी कुछ नाराज़ भी हुए–और कहा कि 'इस समय का रंग और ही है' पर कान्ता माननेवाली थोड़ी थी? और एक दिन पिताजी से कह वह चल दी।

कान्ता की माता की घर में कुछ पूछ न थी। प्राणजीवनदास का आतंक जमा हुआ था–जो कुछ भी होता उन्हीं की इच्छानुसार। माता कभी किसी भी बात में न बोलती। कान्ता माता को मन ही मन धन्यवाद देती।

'३४ के अप्रैल में संग्राम स्थगित कर देने के गांधीजी के निर्णय के बीच कान्ता एक वक्त आठ दिन के लिये घर आई थी। बाकी का तमाम समय उसने जेल में, कार्य

में और छावनी में बिताया था। छावनी में उसे अनेक युवकों से परिचय हुआ था—पर मैत्री तो हुई थी मात्र अनंत और विनु से ही।

संग्राम से आई और विषाद की गहरी छाया भी साथ लेती आई। कुछ दिन उसे चैन न पड़ा। "इस समय तो हार गये। तमाम आशाओंपर पानी फिर गया" वह सोचा करती।

फिर तो दिन और माह बीतते गये। वारंवार सैनिक—मित्रों के समाचार मिलते। अनंत और विनु रामपुर में कार्य कर रहे है—यह भी जाना और इच्छा भी हुई कि खुद भी जाय—किन्तु पिताजी ने इस समय सम्मति न दी। अंत में थक कर फिर स्कूल मे भरती हो गई। अभ्यास शुरू हुआ और पिताजी समझे—बेटी शानी हो गई है।

पर कुछ दिन बाद ही पिता को चिन्ता होने लगी। 'कान्ता अब छोटी नहीं—उसके लिये लड़के की तलाश करना चाहिये—कहां तक क्वांरी बैठी रहेगी?' एक दिन कान्ता को जब पता चला कि पिताजी किस फिराक में हैं उसने कहां: "पिताजी! मै शादी बादी नहीं करना चाहती—आप फिजूल की दौडधाम न करें।" पर पिताजी ने इसे लड़कपन समझा, और एक अच्छे-से धनिक—पुत्र को ढूंढ, बिना कान्ता की इच्छा—सगाई कर ही दी। उस दिन कान्ता ने भोजन नहीं किया—पानी नहीं छुआ। पर पिताजी अनुभवशील थे, समझे-सब ठीक हो जायगा दो चार दिन में।

बंबई में व्यापार करते जंवाईजी को कान्ताद्वारा लिखा हुआ पत्र जब उन्होने प्राणजीवनदासजी के पास भेजा—तो वे भौचक्के-से हो गये। यह हिमाकत? इस छोकड़ी की? वे कैसे

इस को सहन कर सक्ते हैं ? अब पुत्री को समझाने के बदले वे डाँटने लगे। पर परिणाम उलटा हुआ। कान्ता अविनयी और उद्धत होने लगी।

प्राणजीवनदास को चिंता ने आ घेरा। उन्होंने सोचा–देर करना अब मूर्खता है, नहीं तो बात हाथ से निकल जायगी। उन्होने लग्न का मुहूर्त ठीक करवाया, और बंबई समाचार भी दे दिये। एक माह के बाद की तिथी के लग्न ठीक हुए–और तैयारियां होने लगीं। कान्ता चुपचाप सब देख रही थी। प्राणजीवनदास भी कुछ न बोलते थे। कान्ता ने सोचा "शादी तो मुझे करना है–मुझसे न कहेंगे तो किससे कहेंगे ?"

जब पिताजी ने देखा, कान्ता सब जानते हुए भी चुप है तो सुमन को बुलाकर समझाने को कहा। पर सुमन ने बात चीत बाद कहा "उसे पूछे बिना आप क़दम भी आगे न बढियेगा–नहीं तो अनर्थ हो जायगा–अनर्थ।"

एक दिन शाम को पिताजी ने पुत्री को बुलाकर कहा "क्यों बेटा ! कैसे गमगीन हो ?"

कान्ता ने जवाब न दिया।

"एकाध माह बाद तो तू चलदेगी बेटा !" पिताजी ने प्रेम से कहा "तू इस प्रकार रहती है–बता तो हमें कैसे अच्छा लग सकता है ?"

"पर तुमने मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं।"

"उसमें पूछने की क्या बात है ? तेरा हित क्या हमारे हृदय में नहीं ?"

"पर क्या मैं अपना हित नहीं समझ सकती ?"

"तू अभी बच्ची है" पिताजी के मुखपर स्मित फरक रहा था।

"अगर मैं बच्ची ही हूं—तो मेरी शादी क्यों कर रहे हो ?"

प्राणजीवनदासजी को जवाब न सूझता था।

"हं—हं बच्ची...हमारे सामने तो तू हमेश बच्ची ही रहेगी न..."

"मैं अब बच्ची नहीं। वैसे तो आप कहते हैं—मैं बड़ी हो गई हूं—और आज मै बच्ची हो गई ?"

पिताराम ने न सोचा था—बच्ची इस प्रकार बातें कहेगी। कुछ सख्ताई से बोले—

"लड़ाई में जाकर तू तो बहुत शानी हो गई दिखाई देती है कान्ता ?"

कान्ता चुप थी। बात वहीं अटक गई। किसी के आने से कान्ता ऊठ खड़ी हुई—और उसी दिन अनंत भावनगर आया।

जब पिताजी ने सुना कि अनंत और कान्ता के बीच घंटों बातें हुई—तब तो उनके गात बैठ गये। वे अनंत को भली भाँति पहचानते थे। दुनिया में किसी से न दबनेवाला अनंत कान्ता के विरोध को अपना लेगा—यहीं नहीं बल्कि उसे सहायता भी देगा। और इसी से उसदिन रात को पिताजी ने कान्ता से कह डाला। "बस हो चुका। आज से बाहर जाना भी बंद और स्कूल भी बंद।"

दूसरे दिन कान्ता ने बाहर जाने की तैयारी की और झगड़ा शुरू हुआ। प्राणजीवनदास खूब गरजे; और कान्ता को मिलने आया हुआ सुमन द्वार से ही वापिस लौटा। दोपहर को पिताजी पत्नी को पुत्री सोंप बाज़ार गये, इधर कान्ता माता की बिना इजाजत लिये सुमन के पास आ पहुंची।

शाम को जब पिताजी वापिस लौटे, कान्ता घरपर ही थी। गंभीर मुद्रा से भोजनपर बैठे और दो चार ग्रास ले उठ बैठे। सुपारी खाई न खाई और बाहर चल दिये। कान्ता सब देख रही थी।

कुछ देर बाद वह भी चल दी। माता ने रोका पर न रुकी, सुमन के घर आ पंहुची।

दस पंदरह मिनिट के बाद प्राणजीवनदास घर लौटे। देखा, पुत्री नहीं। होशकोश उड़ गये। "भग गई?" विचार आया। पत्नी पर अपना गुस्सा प्रदर्शित कर सुमन के घर दौडे। सुमन की माता ने उन्हें आते देखा और पूछा–

"कान्ता है?"

"हां। क्यों?" माता ने स्वागत करते पूछा।

"कहां है वह" क्रोध में पिताजी बोले।

"उपर है, सुमन के पास।"

उनके गुस्से का पारा चढ़ गया। सुमन को बुरा भला कह, कान्ता को साथ ले, जैसे आये थे वैसे ही चल दिये।

२१

पिता-पुत्री

रास्ते में न कान्ता कुछ बोली-न पिताजी। बंगले के द्वार आते ही आगे चलते हुए पिताजी रुके। कान्ता ताड़ गई उन के भाव। पिता की ओर एक रोष भरी दृष्टि फेंक वह बंगले में दाखिल हुई। पीछे ही प्राणजीवनदास दाखिल हुए। उन्होंने द्वार बंध कर दिये।

कान्ता भीतर जा दीवाल के सहारे खड़ी रही। प्राणजीवनदास उसके पास आ उसके सामने खड़े रहे। एक क्षण के लिये मौन व्याप्त हो गया।

कान्ता वहां से चलदी। अपने कमरे में जा, ट्रंक में अपने कपडे जमाने लगी। पिताजी ने पूछा, "क्या कर रही है ?"

"मैं यहां रहना नहीं चाहती" कान्ता ने कहा।

प्राणजीवनदास यह सुन दिग्मूढ-से बन गये। क्या करना क्या न करना-वे सोच न सके। कान्ता ने ध्यान न दिया-वह तो ट्रंक जमाने का काम करती ही रही।

"कान्ता" वातावरण को क्षुब्ध करते हुए पिताराम के शब्द कान्ता के कानों पर पड़े। पर कान्ता अचल निश्चय और दृढ दृष्टि से पिता की ओर देख रही थी। प्राणजीवनदास को रोम रोम मे क्रोध व्याप्त हो गया। कान्ता ने पिताजी की लाल लाल आंखें देखीं। वह उठी और बाहर कमरे में चलदी।

बरामदे में आ कान्ता खड़ी रही। पिताजी की ओर दृष्टि फेंक फिर रसोईघर की ओर चलदी और बोली "मैं आज ही जानेवाली हूं।"

पिताजी ने कान्ता को नजदीक आने का इशारा किया—वह आई। इशारे पर कोच पर बैठ गई।

"कान्ता!" दुःख और वेदना से सने शब्द निकले, "क्या तू मेरी आबरू लुटाने पर तुली हुई है?"

कान्ता चुप थी।

"स्वतंत्रता जो आज दिन तक दी—उसका यह परिणाम कान्ता?"

फिर कान्ता चुप थी।

"तू क्या चाहती है? मुझे जिंदा रखना चाहती है या मार डालना? क्यों बोलती नहीं? तू मुझे दुःखी करना चाहती है? तेरे हृदय में पिता के लिये—अपने पिता के लिये—कोई स्थान नहीं? मैं कभी आज दिन तक तेरे बीच आया हूं?" और कहते कहते पिता का गला रुंध गया।

कान्ता की कठोर मुद्रा नम्र पडने लगी।

"तू अगर न मानेगी—तो जानती है क्या परिणाम आयगा?"

"पर मैं क्या करूं ? मुझे शादी करने की इच्छा ही नहीं।"

"पर ऐसा भी कभी हो सकता है ?"

"पर...पर पिताजी...सोचो तो सही—मैं क्या कर सकती हूं—मै विवश हूं—मैं शादी कर ही नहीं सकती।"

"पर मै पूछता हूं—नवीनचंद्र में क्या कमी है ?"

"यह मै नहीं कहती।"

"तब ?"

"मैं शादी ही नहीं करना चाहती।"

"तो क्या करना चाहती है ?"

"सेवा" सकुचाती वह बोली।

"सेवा ? सेवा की नानी !" पिताजी बोले।

"हूं ! कहां सेवा करने जाना है ?" कुछ देर बाद फिर बोले।

"अगर तुम बीच में न आओ तो रामपुर। नहीं तो कहीं भी !"

"कान्ता !" वे बोले "तू मुझे मार ही डालना चाहती है ?"

"पर पिताजी आप अपना ही विचार करते हैं—मेरा कुछ भी नहीं।" कान्ता ने कहा—अत्यंत नम्रता से।

"तेरा क्या मैंने नहीं विचारा ?"

"मुझे यहां अच्छा नहीं लगता। अगर मुझे सुख से रहने देना चाहते हैं तो शादी को रहने दीजिये—मुझे जाने दीजिये।"

"ऐसे कैसे हो सकता है ? तू अभी नादान है । किसी के चक्कर में है ।"

"चक्कर में ? पिताजी आपकी भूल है । अनंत या सुमन पर शक जाता होगा । उन्हें दोष क्यों देते हैं ? सुमन में वैसे धरा भी क्या है–और अनंत को आप नहीं पहचानते ।"

"मैं उसे पहचानना भी नहीं चाहता ।" पिताजी ने बीच ही में कहा, " वह तो नंगा है–नहायगा क्या निचोवेगा क्या ? क्या तू भी उसी की तरह बन सकती है ?"

"पर मैं वैसा कहां बनना चाहती हूं ?"

"न तो ओर क्या ? मै जानता हूं–सब जानता हूं–यह सब उसीकी कार्रवाई है । मै पहिले से ही सावधान न रहा-मेरी ही गलती है-मेरी । क्यों किसी को फिजूल का दोष दिया जाय" वे नम्र होते हुए बोले, "मेरा ही कसूर है-मेरा । अपने ही हाथों अपने पैरों पर कुल्हाडा मारा है ।"

"पर मैंने ऐसा क्या किया है पिताजी ?"

"हां-अब ओर बाकी हो वो भी पूरा कर डालो बेटा । क्या देर है ? घर घर पर-गली गली में-आज तेरी बातें उड रही हैं-और तू कहती है क्या बात है-क्या बात है ? अरे मुझे ऐसा पता न था-ऐसा कि दूध पिलाया हुआ सांप मुझे ही काटने दौड़ेगा ।"

"पर मैं क्या कर सकती हूं पिताजी इसमें ।"

"हां हां । तू क्या कर सकती है ? मैं भी तो कहता हूं–तूं क्या कर सकती है ? सारे गांव में अपने शादी का ढिंढोरा भी पिटवा सकती है, और फिर कह सकती है–मैं क्या कर सकती हूं !"

"पर कोई पूछे—और मैं शादी से इन्कार करूं—यह भी कोई पाप है ?"

"बस चुप होना, नादान छोकरी" पिताजी का पारा फिर गरम हो चला था। "शरम नहीं आती इस तरह बातें करते—अपने ही पिता के पास ?"

"तो मैं अपने मन की बात भी तुमसे न कहूं ? अगर मेरी सलाह आपने ली होती तो यह समय न आता।"

"बस चुप।"

पर कान्ता रुकने वाली न थी-वह बोली "पिताजी ! फिर आप मुझे दोष न देना। मैं फिर से साफ कहे देती हूं-मैं शादी करने वाली नहीं।"

"ऐसा ?"

"जी-आप कैद कर रखना चाहें-कैद करें-मार डालना चाहें—मार डालें...मैं..."

"कान्ता ! अब अधिक बढ़ने में फायदा नही हं।"

पर कान्ता ने जवाब न दिया।

कुछ देर बाद फिर पिताजी बोले, मानो कुछ हुआ ही न था। "कान्ता ! मेरा मान तो बेटा ! मै तेरे भले ही के लिये कहता हूं। तू एक दफ़े और कुटुंबों को भी तो देख आ। देख आ कौन-सा पिता अपनी पुत्री को इतनी स्वतंत्रता देता है ?"

"मुझे इससे मतलब ? आपने आज दिन तक स्वतंत्रता दी, और आज मेरा गला घोंटना चाहते हैं क्यों ?"

"मैं तेरा गला घोंटना चाहता हूं ?"

"और नहीं तो क्या ? मुझे शादी नहीं करना, और आप जबरदस्ती ही मेरी शादी कर रहे हैं। यह गला घोंटना नहीं तो और क्या ?

"कान्ता ! कान्ता ! तू ये शब्द बोलेगी-मुझे आशा न थी। खैर ! मेरे भाग्य की बात है।"

"पर मै......"

"बस बस। मै अब सुनना नहीं चाहता। बस हो चुका। आप पधारिये-मै कुछ नहीं सुनना चाहता।"

कान्ता ने एक क्षण पिता की ओर देखा; और पिता ने पुत्री की ओर-दूसरे क्षण कान्ता उस कमरे के बाहर थी और पिताजी कोच पर विचारों में मग्न !!

२२

स्वप्न और जागृति

अपने कमरे में आ कान्ता ने फिर ट्रंक जमाना शुरू किया, और सब सामान ठीक किया। फिर अपना बिस्तर बिछा, उस पर बैठ गई। रात के साडे ग्यारह बज गये थे—पर आंखों में निद्रा न थी। आघ घंटे तक बिस्तर पर बैठी रही—पिताजी को कमरे के पास से पसार होते हुए देखा-पर उठी नहीं, बत्ती मंद कर लेट गई।

एक घंटा और बीत गया। घड़ी में एक का डंका बजा। कान्ता उठ-बैठी। धीरे धीरे बरामदे में आई। बरामदा खाली पड़ा था। कम्पाउंड की बत्ती का क्षीण प्रकाश आसपास पड़ रहा था। बरामदे में झांकते दो चार तारकों को देखा। पिताजी के कमरे पर दृष्टि डाली तो खुला हुआ था। आहिस्ता आहिस्ता कान्ता कमरे के नज़दीक आई। किवाड़ के पास आते ही पैर थंभ गये। वहां से वापिस लौटी। अपने कमरे में आ, बत्ती तेज़ की। कुछ क्षण खड़ी रही-फिर बत्ती मंद कर लेट गई।

दो बजे तब तक नींद न आई। हजारों प्रकार के विचार आये और गये। माता पिता को सोते हुए छोड़ भाग जाने का विचार दृढ होने लगा। अब यहां रहना अशक्य था- उस प्रकार

रहने से तो भाग जाना बहतर। कहां जाय ? रामपुर ? रामपुर तो पिताजी जरूर आवेंगे और जबरदस्त हो हल्ला मचा देंगे। और कहीं जाउं ? जहां जाऊंगी-पिताजी ढूंढ निकालेंगे-पर डरना क्यों ? डरते हुए देशसेवा नहीं हो सकती। और भाग जाना कायरता नहीं ? पर पिताजी इजाजत थोड़े ही देंगे ? तो भागने के सिवा और चारा ही क्या है ?

तीन के डंके बजे। शान्ति भी नहीं-निद्रा भी नहीं। कान्ता लोथ पोथ हो गई। अंग शिथिल कर बिस्तर पर लेट गई। प्रातकाल पूर्व का ठंडा मारुत् मानो कान्ता को थपकियां देने लगा-कान्ता सो गई...

भव्य गिरनार पर्वत खड़ा है। उसकी तलहटी में वह खड़ी है; पर्वत पर खड़ा हुआ अनंत उसे पुकार रहा है, वह ऊपर चढ़ती है- पर ज्यों ज्यों कदम आगे बढ़ती है त्यों त्यों शिखर डोलता हुआ मालूम होता है। वह डर गई-वापिस दौड़ने लगी। पर्वत पर खड़ा हुआ अनंत अट्टहास्य करने लगा।

कान्ता जागी। आंखों को मसलती हुई खड़ी हो गई ? स्वप्न देख रही थी ? स्वस्थ हो फिर लेट गई।

उसे लगा-मानो बंबई जैसी बडी नगरी में वह अकेली निःसहाय घूम रही है। उसे कोई पहचानता नहीं। पेट में सख्त भूख लगी है। नेत्रों के सामने अंधेरा छा जाता है। पैर लड़खड़ाते है। सामने से अनंत आ रहा है। पर उसके मुख पर न तेज है न शक्ति। दुबला पतला-मानो हड्डियों का पुतला कंकाल कान्ता एक ओर खिसक गई। और अनंत उसके पास से-

मानो छूता निकल गया । कान्ता देखती रही, पुकारने का प्रयत्न किया, पर...पर यह क्या ? स्वप्न ! स्वप्न ! !

फिर आंखें मुंदने लगीं-शादी की तैयारियां हो रही हैं-नौबत नक्कारे बज रहे हैं-वह मंडप में बैठी है-हृदय छटपटा रहा है—सामने पिताजी घुरक रहे हैं-और देखते देखते तो उसके मुंह से एक चीख निकल गई ।

सुबह के छ बजे तक कान्ता अनेक स्वप्न देखती रही । आसपास के कोलाहल से जागी तो देखा पिताजी खडे हैं । कैसी भयंकर परिस्थिति है-वह सोचने लगी ।

"उठ कान्ता ! छ बज गये" पिताजी ने कहा । कान्ता उठी । पिताजी चल दिये ।

कान्ता बोली—

"पिताजी !"

"हूं बेटा" वापिस लौटते पिता ने कहा ।

"मैं यहां नहीं रहने वाली ।" और बिना उत्तर दिये पिताजी चल दिये-सोचते हुए-लड़की पागल तो नहीं होती जा रही !

कान्ता बाहर आई । पिताजी जहां दातन कर रहे थे-वहां आई । बाल बिखरे हुए थे । आंखें लाल लाल थीं ।

"तुमने क्या तय किया पिताजी ?" कान्ता ने पूछा । पिता आश्चर्य से उसके मुंह की ओर देखते रहे ।

"तुझे ठीक नहीं कान्ता ? जा-हाथ मुंह धो तो ।"

"मै बिलकुल ठीक हूं पिताजी। मैं सारी रात ठीक रही हूं।" कान्ता ने अपने बालों को संवारते हुए कहा। "मैं तुमसे सुनना चाहती हूं-तुम्हारा निर्णय। मैं यहां नहीं रहना चाहती।"

प्राणजीवनदास खड़े हुए-पुत्री का हाथ अपने हाथ में लेने के लिये...कान्ता दूर हठ गई।

"मैं पागल नहीं हो गई हूं पिताजी। आप मुझे इज़ाजत देते हैं कि मै भग जाऊं?"

"भगकर कहां जाने वाली है?"

"कहीं भी-सेवा करने।"

"जा जा, घर में जा - सेवा करने वाली की नानी!" कान्ता का हाथ पकड़ते पिता ने कहा।

"मेरा हाथ छोड़ दीजिये। मै जाती हूं।"

पिना ने हाथ छोड़ दिया।

"मुझे दोष न देना। आठ दिन में मै यहां से चली जाऊंगी।"

"कान्ता!" वे बोले, "तू कितने दिन तक यह तमाशा करने वाली है?-मैं ज्यों ज्यों नरम होता जा रहा हूं-तू सिर पर चढ़ती जा रही है। मुझे पहचानती नहीं? इस कमरे में तुझे बंद कर दूंगा बंद। तब पता चलेगा।"

"हं...फिर क्या करोगे?"

"फिर? फिर हाथ पैर बांध तेरी शादी कर दूंगा, छोकड़ी!"

"फिर ?" कान्ता ने गरदन पीछे की ओर झुकाते हुए कहा।

प्राणजीवनदास आगे आये। उसका हाथ पकड़ उसे खींच लाये उस कमरे में, जहां कान्ता सोई थी। बोले—

"बोल, क्या चाहती है ? मेरी आबरू पर पानी फिराना चाहती है ?"

"हां."

"जिन्दा ही ज़मीन में गाड़ दूंगा। याद है ? इसी कमरे में भूख और प्यास से मार डालूंगा।"

कान्ता हंसदी।

प्राणजीवनदास हताश-से वापिस लौटे। कान्ता बोली—

"पिताजी ! किवाड बंद कर दीजिये। मुझे इसी कमरे में बंध कर दीजिये।"

"ऐसा ?" और पिताजी वापिस लौटे। किवाड लगा—सांकल लगा दी।

२३

यह पलटा ?

कान्ता ने किवाड बंध होते हुए देखे। सांकल लगने की आवाज़ भी सुनी-और पिताजी के पैरों की आहट भी। कान्ता बंध किवाडों को देखती रही। दिमाग़ में विचारों की धूम मच गई। एक खूंटी पर बिस्तर लपेटने की डोरी लटक रही थी। उसे हाथ में लिया। मुखपर की सौम्यता नष्ट होने लगी। कान्ता भयंकर लगने लगी। दांत कचकचाते हुए वह पागल की तरह खड़ी रही। विद्युत-सा प्रवाह सारे शरीर में दौड़ गया। पागल की भाँति हाथ की रस्सी जोर से खींची–मानो डर गई हो–एक चीख दी और धम्म-से जमीन पर ढल गई।

कान्ता की चीख़ और गिरने की आवाज़ बाहर सुनाई दी। सांकल खोल प्राणजीवनदास भीतर दौड़े। पीछे ही कान्ता की माता भी आई। कुछ ही क्षण में कान्ता चेतना में आई और पिता की ओर असहाय-सी दुःख में डूबी हुई देखने लगी। पिता पुत्री के पास ही बैठ गये और कान्ता की पीठ पर हाथ फेरने लगे। कान्ता की आंखों से मूसलधार पानी बरसने लगा-माता किवाड़ के पास ही खड़ी खड़ी रोने लगीं।

"चल बेटा ! मेरे कमरे में चल तो" पिता ने अत्यंत मृदु स्वर से कहा, और कान्ता को उठाने लगे।

"मुझे नहीं आना" कान्ता ने आंसू पोंछते हुए कहा, "तुम सब जाओ-मुझे रहने दो-अकेली रहने दो।'

"तुझे आज ठीक नहीं बेटा ! चल तो सही। वहां सो जाना।" पिता ने आग्रह जारी रक्खा।

"मैं अच्छी हूं। मुझे रहने दीजिये।

प्राणजीवनदास स्तब्ध-से बैठे रहे। सोचने लगे-अब क्या करना चाहिये ? इसी समय उनकी दृष्टि रस्सी पर पड़ी और उनके होश हवास जाते रहे।

"आप सब जाइये। मुझे सोने दीजिये" कान्ता ने ट्रंक के पास से दरी खींचते हुए कहा।

प्राणजीवनदास उठे और कमरे के बाहर हो लिये। कान्ता दरी बिछा लेट गई। चिंताभरी दृष्टि से पीछे की ओर देखते फिर प्राणजीवनदास कान्ता के पास आये और बोले–

"कान्ता !"

"मुझे सोने दो।" वह बोली।

"पर देखतो !" पिताने कहा।

"क्या है ?" कान्ता ने नेत्र खोले और देखा।

"अगर तुझे शादी न करना हो तो मत करना। हुआ... उसमें इतनी चिन्ता क्यों ?"

"सच कहते हो?" कान्ता ने आश्चर्य से पूछा ।

"हां हां ।"

कान्ता न मान सकी-पिताजी सच कह रहे हैं । उसने पिता के मुंह को देखा-वहां सरलता व्याप्त थी ।

"पिताजी !" हर्ष में वह बोल उठी ।

"बेटा !" बोलते बोलते तो पिता का गला रुंध गया ।

कुछ क्षण के लिये मौन व्याप्त हो गया । इसी समय फाटक खुलने की आवाज़ आई...सुमन आ रहा था ।

प्राणजीवनदास उठे और बरामदे की तर्फ़ गये । कान्ता ने साड़ी ठीक की और सुमन की तर्फ़ चलदी । पिता-पुत्री की आंखें देख सुमन को आश्चर्य हुआ !

"सुमन ! आज सुबह सुबह ही !" पिताने पूछा ।

"आपसे कुछ काम है ।" सुमन बोला ।

"मुझ से ?"

"जी !"

"क्या ?"

"बैठक में बात करें तो ?"

"अच्छा । जरा बैठक में बैठो तो-मैं अभी आता हूं ।"

"कान्ता ! सुमन के लिये चाय ।"

"मैं चाय न लूंगा ।"

"क्यों ? कब से ?"

"कल से ही।"

"अच्छा, कान्ता ! तो दूध।"

पिताजी हाथ मुंह धोने चले गये। कान्ता सुमन की ओर देखती रही, पर समझ न सकी मामला क्या है। दूध लाने वह भी चल दी।

"अच्छा...हं...तो क्या काम है सुमन ?" भीतर आते ही प्राणजीवनदास ने पूछा।

"आप नाराज़ तो न होंगे ?"

"पर बात भी तो जानूं, क्या है ?" शांतिपूर्वक कोच पर बैठते हुए वे बोले।

"मुझे डर है-आप सोचते होंगे-मैं ही कान्ता को समझा रहा हूं-उसे प्रेरित कर रहा हूं।"

"नहीं, अब मुझे किसी पर संदेह नहीं। बैठ तो, अब तक खड़ा कैसे है ?"

सुमन बैठ गया। इन शब्दों की उसे आशा न थी।

"सुमन ! मुझे संदेह ही नहीं बल्कि यकीन है कि तुम्हारा और अनंत का इस मामले में हाथ है। पर मुझे इस से क्या ? मैंने निश्चय किया है-इस मामले में कुछ न बोलने का" वे बोले।

"यानी ? कान्ता की शादी अब न होगी !" सुमन ने आश्चर्य से पूछा।

"ना।"

प्राणजीवनदास के शब्द स्पष्ट थे, पर सुमन को यकीन न होता था। उसने फिर से पूछा। "कान्ता यह जानती है?"

"हां।"

सुमन दिग्मूढ-सा देखता रहा। यह अद्भुत पलटा कैसे?

"पर सुमन!" वे बोले "तू यहां क्यों आया था?"

"तुमसे प्रार्थना करने।"

"क्या?"

"कि कान्ता की शादी न करो।"

"कान्ता ने कुछ कहा था?"

सुमन को जवाब न सूझता था; वह चुप रहा।

"चुप कैसे हो?"

सुमन बोलता ही था कि कान्ता दूध लेकर आई। प्राण-जीवनदास ने देखा कान्ता बिलकुल स्वस्थ थी। कहां पगली-सी कान्ता, कहां यह! सिर के बाल और कपड़े व्यवस्थित थे। नेत्र हंस रहे थे। पास की तिपाई पर कान्ता ने दूध का प्याला रक्खा।

"बैठ कान्ता" पिताजी बोले।

पास की कुर्सी पर कान्ता बैठ गई।

"बोल! और क्या इच्छा है तेरी?"

"कुछ नहीं पिताजी" कृतज्ञता के बोझ से दबती मानो कान्ता बोली।

"सुमन मुझसे प्रार्थना करने आया था," वे बोले । "कि मैं तेरी शादी न करूं । समजी कान्ता !"

कान्ता मुस्कराई । सुमन देखता रहा ।

"अच्छा ! तुम लोग बातें करो। मैं स्नान बान से निपट लेता हूं।"

वे चलदिये ।

"यह सब क्या, कान्ता ?" सुमन ने पिताजी के बाहर जाते ही प्रश्न किया ।

"निराधार को ईश्वर सहाय करता है 'गज को लीनो ग्राह घेर' वाली बात हुई ।"

"पर रात को तो..." बीच ही में सुमन बोल उठा ।

"हां । अभी एक घंटे पहिले भी वही स्थिति थी ! पर न जाने कैसे यह बात पलट गई ।"

"अच्छा । अच्छा । पर सारी बात तो कह ।"

"बात छोटी-सी है ।"

"पर फिर भी ? मुझे तो अत्यंत आश्चर्य हो रहा है। सारी बात तो कह" सुमन ने आतुरतापूर्वक पूछा।

कान्ता ने तमाम बात कह सुनाई। सुमन देखता ही रहा।

"कान्ता ! मैं क्या कहूं ? तू भी बड़ी जबरदस्त है भई !"

"जबरदस्त ? नहीं भैया, ऐसा कुछ नहीं ।"

"कान्ता ! पर अब तू क्या करेगी ?"

"पांच सात दिन के बाद पिताजी से रामपुर जाने की इजाजत मांगूंगी।"

"वे इजाजत देंगे ?"

"शायद । अगर शादी का मामला फिर उपस्थित न हो तो।"

"पर वह बात तो अब खतम हुई न ?"

"कैसे खतम हुई ? अभी देखना है वे लोग क्या करते हैं। डर है पिताजी भावना के आवेश में यह कह रहे हों।"

"यानी-अभी भी डर तो है ही।"

"हां ! मुझे डर है-पिताजी उन लोगों को साफसाफ कह सकेंगे या नहीं।"

"तो तू क्या करेगी ?"

"मुझे क्या करने का है ?"

"कान्ता ! मै भी रामपुर जाने का सोच रहा हूं" सुमन ने हंसते हंसते कहा ।

"अच्छा, कब ?"

"अभी तो मनसूबा किया है; कल तलाजा[1] जा रहा हूं।"

"चन्द्रा भाभी के पास ?"

"हां। तू भी चल न। तेरे अनुरोध से वह मान भी जायगी।"

"अगर भाभीजी आवें-तो मेरा मार्ग भी सरल हो जाय" कान्ता हर्षपूर्वक बोली ।

दोनों बातें कर रहे थे-कि स्नानादि से निपट प्राणजीवनदास दाखिल हुए, और दोनों ने आसपास की बातें शुरू कर दीं।

---

१ तलाजा—भावनगर के नजदीक एक गांव

२४

बादल चारों ओर

जब तक प्राणजीवनदास बैठक में रहे, सुमन और कान्ता इधर उधर की बातें करते रहे। उनके जाते ही, फिर वे बातें करने लगे।

"भाभीजी आवें-तो मेरा मार्ग भी सरल हो सकता है" कान्ता बोली।

"और तू आवे, तो मेरा और चन्द्रा का मार्ग सरल हो सकता है। अपन सब साथ ही जावें तो? मैं कल तलाजा हो आता हूं।"

"अच्छा" कान्ता ने कहा।

सुमन उठा। कान्ता दरवाज़े तक पहुंचाने आई। इस अजीब फेरफार को देख कर कान्ता को हर्ष हुआ। कल रात की बातें उसके सामने नाच गईं।

इसी समय प्राणजीवनदास बंगले में दाखिल हुए। भालपर तिलक चमक रहा था-शायद उपासरे से अभी ही लौटे हों। शांत और गंभीर दिखाई देते थे। कपड़े उतार रसोईघर में पहुंचे।

कान्ता ही ने थाली परोसी । रोटी खा जब पान सुपारी खा रहे थे-कान्ता पास खड़ी हो गई ।

"क्यों बेटा ! अब तो शांति है ?" पिता ने प्रेमसने शब्दों से पूछा ।

कान्ता न बोली । उसके मुख ने-उसकी आंखों ने ही उत्तर दिया । पिताजी बाहर जाने को तैयार हो रहे थे । पास जा वह बोली—

"पिताजी ! अब तो बाहर जा सकती हूं ?"

पिता के मुख पर हास्य था ।

"सुमन कल तलाजे जा रहा है उसके साथ जा सकती हूं ?"

"सुमन ? तलाजे जा रहा है ? क्यों ? चंद्रा को अभी एक महीना भी तो पूरा नहीं हुआ न ?"

कान्ता सोचने लगी-उसने यह बात छेड़ी ही न होती तो ठीक होता । कुछ देर सोचती रही फिर बोली "चंद्राभाभी के पास जा रहा है ।"

"क्यों ? घर में कुछ टंटा फिसाद हुआ है ?"

"मुझे याद नहीं ।"

"हुं...चचा से झगड़ा हुआ होगा । मैंने सुना है वह नौकरी करना नहीं चाहता ।"

कान्ता चुप थी । प्राणजीवनदास बाहर चले गये । उसका प्रश्न वैसा ही रहा ।

अभी कुछ दूर गये थे कि राह में डाकिया मिला। एक पत्र हाथ में दे-डाकिया चल दिया। प्राणजीवनदास ने अक्षरों को पहचाना। मुख पर चिंता चमकने लगी। पत्र खोला, छोटा-सा पत्र था। पत्र पढ़ा, और वापिस लौटे। दरवाज़े के नजदीक आते ही कान्ता का मधुर स्वर सुनाई दिया। कान्ता भीतर काम करती हुई गा रही थी–

ज़हर पीकर सजीवन होने,
वीरांगना सज्ज हो...ना।

आज ज्वालामुखी की ऋतु आई,
वीरांगना सज्ज हो...ना ॥*

प्राणजीवनदास सिहर उठे। कान्ता मस्त हो गाती ही जा रही थी–

आज खप्पर भरने की है बारी,
वीरांगना सज्ज हो...ना।

वे अधिक न सुन सके। दरवाज़ा खोल भीतर आये। कान्ता सामने आती दिखाई दी। पिता को इतना जल्दी लौटते देख उसे आश्चर्य हुआ। हाथ में पत्र देख और भी आश्चर्य हुआ। पिता के हाथ में से पत्र ले, वह पढ़ने लगी। पत्र पढ़ते पढ़ते उसके मुख पर चिंता के बादल छा गये।

"अब क्या करें? वे तो पोरबंदर आ गये।" कान्ता बोली-मानो सिर पर आफत मँडरा रही हो।

---

* आचार्य जयंत

"कान्ता" भावपूर्वक पिता बोले "मेरी स्थिति अत्यंत विचित्र है ! मुझे नहीं सूझता-क्या करूं।"

सन्नाटा ।

"चल त बैठक में।" दोनों चुपचाप बैठक में आये। कान्ता ने देखा पिता की गरदन एक ओर ढल गई थी-और वे अपार चिन्ता में लीन थे । वे मुड़े और बोले "कान्ता रात को ही बात करेंगें ।"

कान्ता के पास से पत्र ले प्राणजीवनदास चलदिये । कान्ता खड़ी खड़ी पिता को उस गली में अदृश्य होते देखती रही। उसके हृदय में आज अपने विरोधी पिता के लिये भी सहानुभूति पैदा हुई।

पिता के चले जाने के बाद कान्ता बैठक में आई, और पलंग पर लेट गई। एक के बाद दूसरा विचारों का तांता बंध गया-वह सोच न सकी उसे क्या करना चाहिये। इसी समय जब माता ने आकर कहा कि भोजन करने चले, तब कान्ता ने कह दिया 'भूख नहीं है।' कान्ता फिर विचारों में डूब गई। प्रातःकाल की शांति लुप्त हो गई। उसे लगा मानो किनारे लगी हुई नाव-झंझावात से फिर मध्य समुद्र में गोते खा रही है।

खाट में लेटी लेटी कान्ता लोथपोथ हो गई-कोई आरा अवारा न सूझा-और इसी बीच दोपहर को उसकी आंखों में निद्रा घुलने लगी-और निद्रा की शांत गोदी में वह लेट गई।

२५

मेरा देश

अनंत, नवनीत और अमुभाई सुबह तक मृतदेह के पास बैठे रहे। सुबह रिश्तेदारों में समाचार भेजा गया; और कुछ देर में तो सोएक आसामियों की भीड़ लग गई। रोना कूटना शुरू हो गया। अंतिम संस्कार के लिये कुछ लोग मृतदेह को लेकर स्मशान की ओर चल दिये। स्मशान के पास पहुंचते पहुंचते सत्याग्रह के दिनों की छावनी और चिताओं का स्मरण हो आया। अनंत को मालूम हुआ, उन दिनों की चिताओं में-और आज की चिता में कितना अन्तर था। उन दिनों में स्मशान उसे भयंकर न लगा था-आज स्मशान डरावना, भयंकर लगने लगा।

माता का मृतदेह चिता पर सुलाया गया। एक ने अग्नि चेताई, और देखते देखते तो चिता धधकने लगी और वह देह ज्वालाओं से लिपट गया। एक भी आंसू गिराये बिना अनंत यह सब देखता रहा। उसकी मुखमुद्रा करुण और गंभीर लगती थी। वहां इस प्रकार खडा हुआ अनंत सब की दृष्टि खींच रहा था।

सब खतम हो चुका था। चिता राख का ढेर बन गई थी। स्नान कर घर की ओर सब चल दिये। एक अजीब

शून्यता–सन्नाटा अनंत के हृदय पर छा गया। घर पंहुचा । दोनों बहिनें लिपट पड़ीं । नवनीत गंभीर दिखाई दिया । पर भाभी स्वस्थ दिखाई दीं । पिता के मुंह की ओर तो देखा भी न जाता था ।

अनंत को घर में आये अभी बारह घंटे ही हुए थे-और यह क्या अजीब परिवर्तन ? उसने सोचा भी न था-और न जाने क्या हो गया ? अब वह क्या करेगा ? उसका हृदय रोने लगा—माता की पवित्र मूर्ति आंखों के सामने नाचने लगी। संग्राम के समय, बिदा देती हुई सिसकती हुई माता याद आई। क्या उसने ठीक किया था—माता को निःसीम दुःख देकर जेल-यात्रा भुगतने का ?

"दिन बीत जाते है। वातावरण में घुली हुई मृत्यु की भीषणता धीरे धीरे कमती होने लगी। और ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों त्यों परिस्थिति की जटिलता–रोटी का प्रश्न–अनंत के सामने जोरों से आने लगा।

माता की उत्तरक्रिया के बाद, रिश्तेदारों का आना जाना बंध हुआ; और घर का प्रश्न अधिक वेग से, अधिक प्रबलता से सामने आने लगा। अनंत ने देखा पिता और बड़े भैया के बीच जमीन आसमान का अंतर पैदा हो गया है। लोकलज्जा न हो–तो दोनों एक दिन भी साथ नहीं रह सकते। कुटुंब पर दस हजार का कर्ज़ा हो चुका है। जिस मील की एजन्सी पिताजी ने ले रक्खी थी-वह मील टूट गई है–और छ महीने से वे बेकार बने बैठे हैं। दादा बंबई में नौकरी करते हैं-पर बचाते नहीं एक पाई। वे ही प्रश्न जो पंदरह दिन पहिले गाड़ी में तुच्छ दिखाई दिये थे, आज महान लगने लगे।

कमला की शादी और कुसुम की पढ़ाई–यह प्रश्न भी छोटा न था। आहिस्ता आहिस्ता दिमाग में से विनु, कान्ता, कृपेश और सुमन खिसकने लगे और उसका स्थान पिता, दादा, भाभी और बहिनें लेने लगे।

बीसेक दिन हुए, और बडे भैया ने बंबई जाने की तैयारी शुरू कर दी। एक दिन वे बोले–

"अनंत! भैया छोड़ दो इन सब बातों को अब, और लग जाओ कुटुंब की सेवा में। मैंने तो बहुत कुछ किया। अब मेरी बिसात नहीं। तेरा भी हक्क है-सेवा करने का-तेरा भी धर्म है कुटुंब पालने का। मैं अकेले हाथ क्या क्या कर सकता हूं भला?" अनंत चुपचाप सुनता रहा। जाने के दिन भी छोटी-सी बात पर बाप बेटे उखड़ गये।

नवनीत गया। घर में रहे अमुभाई, कमला, कुसुम और अनंत। दोपहर को एक दिन भोजन करके बैठे थे कि अमुभाई ने घर की–कर्ज़ की–बात छेड़ दी–बताया बडेभाईसाब तो लाट साहब हैं–वे कर्ज़ में एक पाई न देंगें-उनकी उतरती अवस्था है-न धंधा है-न रोज़गार और गांव में आबरू तो रखनी ही पडेगी-अनंत ही एक सहारा है। उसकी फर्ज़ है बाप की आबरू रक्खे।

अनंत कोलेज में से ही सीधा संग्राम में पंहुच गया था। आज उस बात को छ वर्ष बीत गये हैं। और इन छ वर्षों में कमाने का-कुटुंब-पोषण करने का–विचार उसे कभी न आया था। इस प्रश्न ने उसे उलझा दिया। दोनों बेटियों को बाहर भेज, पिता ने कहा "तू देखता है अनंत! कमला अब बच्ची नहीं। उसकी शादी अब कर ही

देना चाहिये। और कुसुम भी अब छोटी नहीं। अपार चिंता हैं-कुछ समझ में ही नहीं आता।"

अनंत अभी सोच ही रहा था कि वे फिर बोले "तुझे अब कुछ भी करना चाहिये। कोई भी धंधे रुजगार में जुट जाना चाहिये। अब तक तो ठीक था। देश का कार्य किया, लड़े, गिरफ्तार हुए। पर अब तो तुझे भी सोचना चाहिये।"

अन्तिम वाक्यों ने अनंत को चमकाया। चार बजे तक बातें चलती रहीं। और इस दरमियान 'हां' और 'ना' के सिवा अनंत कुछ न बोला था। जब पिताजी उठकर बाहर चले गये, अनंत बैठा रहा-विचारों में मग्न-मान कोई नई ही सृष्टि में आ पड़ा हो। घर, धंधा, बहिनें, पढ़ाई, कर्ज़ इन विचारों से परे न जा सका।

थक गया। उठ कर किवाड के पास आया। इसी समय डाकिये ने पत्र फेंका। पहचाना। विनु के हस्ताक्षर थे। हृदय धड़कने लगा।

राजकोट आने के बाद अनंत ने किसी को पत्र न दिया था-और आज अचानक विनु के पत्र को आते देख, अनेक कल्पनाएं जाग उठीं। वह पत्र पढ़ने लगा। पढ़ते पढ़ते दुःख, करुणा और शर्म से उसका मुख म्लान हो गया।

विनु के पत्र पर लिखा था 'रात के तीन बजे।' फिर से उसने पत्र पढ़ा। पत्र के समाचार ने उसका दिल दहला दिया। पत्र बंध कर भीतर आ बेंच पर बैठ गया—वे ही प्रश्न चक्कर काटने लगे—कुटुंब—देश—फर्ज़।

"ना-ना ! मै यहीं रह ही नहीं सकता। कदापि नहीं। मैं तो सन्यासी हूं-कुटुंब के सुखदुःख की कल्पना करना मेरा धर्म नहीं। मेरा घर तो है रामपुर"—और ज्यों ज्यों विचार करता था—संकल्प दृढ होता जाता था—देश ! मेरा देश ! ! स्वराज्य ! ! ! प्रतिज्ञा ! ! ! !

विनु का पत्र निकाल फिर तीसरी बार पढ़ा। उसे दृढ होना होगा-अन्तिम निर्णय कर डालना होगा। पिताजी से कह देना होगा...अल्विदा...बस अब एक दिन भी ठहरना अशक्य है।"

अनंत विचारों में तल्लीन था—भृकुटी चढ़ी हुई थी-नेत्र संकुचित थे। दोनों बहिनें भैया की ऐसी सूरत देख वहीं थंभ गईं। वे भैया की मुखमुद्रा न सह सकीं—दोनों वापिस लौट गईं। पर अनंत को कुछ पता न था।

२६

विनु का पत्र

विनु का पत्र यों था :

माताजी की तबियत अभी वैसी ही होगी, मैं सोचता हूं। नहीं तो तू इतने दिन वहां ठहर नहीं सकता। यहां गांव के लोग तुझे खूब याद करते हैं। पत्र का जवाब शीघ्र देना।

उसी दिन शाम को मैं अहमदाबाद से चल दिया था। जैसे अनुभव तुझे भावनगर में हुए वैसे ही मुझे भी। पर मुझे न तो दुःख ही हुआ है-न आश्चर्य ही। जब युद्ध चल रहा था तब भी मैंने तो देखा था कि जेल में जानेवाले, मारपीट सहन करनेवाले सब के सब सैनिक नहीं हैं। देश के दर्द की पहचान बहुत थोड़ों को थी। और उस दर्द की वेदना तो बिरले ही पहचानते थे।

जो कुछ भी तेने भावनगर में देखा, उसने तुझे तेरी व्यथा में मदद दी होगी। क्योंकि जिस झूठे वातावरण ने अपने युवकों को घर बैठा दिया है-वही वातावरण तेरे आस-पास होगा—उससे पल पल पर तुझसे मुलाकात होती होगी। जो जो बातें पिताजी ने मुझ से कही थीं उससे प्रतीत होता है-अपना

कर्तव्य निश्चय करने में तुझे ठीक सामना करना पड़ा होगा—उन कठिनाइयों को हल करने में भी ठीक मुकाबला करना पड़ा होगा। किन्तु चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। तेरे पास हैं दृढ विचार-शक्ति और छ वर्ष का पक्का अनुभव। फिर भी अनंत! मुझे डर लगता है-और इसीसे मै तुझे चेताये देता हूं। मेरा अनंत दृढ है-मुझे उस में पूर्ण श्रद्धा है-फिर भी-न जाने क्यों-किस भावना से प्रेरित होकर मैं तुझे लिखता हूं।

रामपुर में अपन वर्ष सवा वर्ष के करीब रहे। शायद ही किसी गाम में किसी को इतनी सफलता मिली हो। फिर भी तुझे निराशा के बादलों ने आ घेरा। तुझे रामपुर में स्वराज्य की झांकी न मिली। मैंने अपनी दलीलें पेश कीं। मुझे हुआ-कुछ कुछ तू समझा है और रहने को तैयार है-पर मैं यह न चाहता था—मैं चाहता था तू घूम आ, भली भाँति परिचय ले ले-अपनी आशंकाओं को मिटा ले। मुझे डर तो था ही-पर इस डर को लेकर तुझे रोक रखना मुझे उचित न लगा। यदि तुझमें कुछ है ही तो अवश्य आवेगा-हजारों बंधनों को तोड़कर आवेगा। तुझे रोकनेवाला मैं कौन? मुझे क्या अधिकार? तुझमें नैसर्गिक ज्योति है तो वह कभी बुझ ही नहीं सकती। अगर नहीं है—किसी के सहारे, अवलंबन पर ही है-तो वह मिट जाय, बुझ जाय यही अच्छा। उस दिन भावनगर से तेरा पत्र आया और मेरी छाती फूल उठी। शब्द शब्द में तेरे, देश-प्रेम टपकता था। अहमदाबाद के अनुभव तेरे मुख से तो न सुने-पर जो कुछ कीर्तिद्वारा जाना उसने मुझे और भी प्रोत्साहित किया।

और मुझे याद है स्टेशन पर मैंने तुझे कुटुंब की परिस्थिति के समाचार दिये। तेने अनसुना-सा भाव रक्खा—किन्तु जब गाड़ी

चलती-मैंने देखा था–तेरे चहरे पर चिन्ता सवार हो गई थी । मुझे उस समय हुआ 'अनंत भावना शील है । घर के सुखदुःख में देश के सुखदुःख तो न भूल जायगा ?' और आज पंदरह दिन से तेरे कोई समाचार नहीं । बता तो चिन्ता का कारण है या नहीं ?

मैंने तुझे हमेशा ही भावनाशील पाया है । फांसी पर चढ़ना हो या तूफान करते महासागर में कूद पड़ना हो, तो मैं मानता हूं–तू प्रथम होगा उस कार्य में । किन्तु मैं यह भी मानता हूं तेरी इसी प्रचंड भावना–शक्ति को एक झोंके से और दिशा में भी मोड़ दिया जा सकता है । तेरा हृदय गीला है भैया ! तेरे पास रोने से तू भी रो उठेगा-मैं मानता हूं । इसीसे मुझे डर लगता है तेरे मातपिता तुझे अपनी ओर न मोड़ ले ।

अनंत ! गुस्से न होना । मैं तुझे अन्याय नहीं कर रहा हूं-उस वृत्ति से नहीं लिख रहा हूं । मुझे याद आते है शब्द बापूजी के "जो आना चाहते है-आ सकते हैं-वे ही आवें । बाद चाहे माता मरे या पिता; वापिस लौटना न होगा ।" तेरे सामने ऐसे ही प्रश्न नाच रहे है; इसीसे ये वाक्य तुझे भेट की तौर–सोगात की तौर भेजता हूं ।

कुटुंब और देश के संबंध में हमने खूब चर्चा की है । पर मुझे लगा है वे सब दलीलें एक आंसू के बूंद से सूख जाने वाली हैं । पर तू आंसू के बूंदों के सामने टिका रहना भैया !

तेरे पिताजी ने मुझसे सब कुछ कहा था-इसीसे तो मैंने तुझसे कहा था कि उनके हृदय में इतनी वेदना भरी है कि भले से भला सैनिक भी उनके सामने टिक न सके–पिघल ही जाय । उनकी उस वेदना और दुःख के प्रति सहानुभूति बताते

हुए तुझे समझाना चाहिये देश का दुःख उसकी वेदना उनकी वेदना और दुःख से कहीं अधिक बड़ी हैं। चढ़ी हैं। उनका दुःख देश के दुःख के सामने कुछ बिसात में नहीं। और मेरी दृष्टि से कुटुंब-धर्म और देश-धर्म दो वस्तुएं नहीं हैं। राष्ट्र के उत्थान पर ही कुटुंब और जाति का उत्थान हो सकता है, अन्यथा नहीं। कुटुंब और व्यक्ति मात्र को सुखी करने के लिये-आज़ाद करने के लिये-देश को सुखी और आज़ाद करने की प्रथम आवश्यकता है।

तू शक्तिशाली है। तेरी नसों में गर्म खून बह रहा है। तेरे सीने में राष्ट्रभर की वेदना भरी हुई है। मैं तुझे क्या लिखूं? फिर भी लिखता हूं मैं कि अपनी इस शक्ति को दोचार मनुष्यों के सुख के लिये खर्च मत कर डालना। और तू तो जानता ही है रामपुर के हाडमांस में हमने खून भरा है, रामपुर के अज्ञानों को नेत्र दिये है-प्राणहीन में चेतना चेताई है-यह सब हो सका है ईश्वर की कृपा से-पर अपन उसमें निमित्त मात्र हुए हैं यह भी कुछ कम नहीं।

इसलिये वहां बैठा बैठा भी भूल न जाना कि तू एक ही प्रदेश का पत्ती है। मैं जानता हूं तू कर्तव्य मात्र की प्रेरणा से ही गया है- पूज्य माता की सेवा करने गया है-पर उस सेवा में अपना जीवन-ध्येय मत भूल जाना। जो राष्ट्र को दे चुका है वापिस न ले लेना। याद आता है?

'मान महीपत मान, दियो दान किमि लीजिये'

अनंत! खूब लिख डाला है। लिखते लिखते भोर हो गया है। पत्र बाडी में बैठा लिख रहा हूं। चिड़िया चहचहा रही है–

पक्षीगण ने कलरव शुरू कर दिया है-और प्रकाश-मंद प्रकाश फैलता जा रहा है। अपना कृपेश और उस के साथी लोग-अपनी बाड़ी में क्यारे खोदने में मस्त हैं। अनंत! अब जलदी आजा। देर मत कर। यों मत सोचना मैं तेरे विरह में पागल हो उठा हूं–पर यह तो अवश्य कह सकता हूं– रामपुर की धरती जो तेरी और मेरी दोनों की मां है-तेरे वियोग में पागल हो उठी है। मैया भारती जो हम पैंतीस करोड़ की जगदम्बा है-तेरे वियोग में पागल हो उठी है इसी से तुझे पुकारता हूं–अनंत! जल्दी आ। देर मत कर।

तुझे याद नहीं अनंत! 'मेरा देश!' बोलते बोलते तेरे रोम रोम खड़े हो जाते थे। दूर दूर दृष्टि फेंकते फेंकते तेरे नेत्र सजल हो उठते थे!

अनंत! अब काम खतम हो गया हो तो एक क्षण भी न रुकना; और भावनगर और अहमदाबाद के अनुभवों से संतुष्ट हुआ हो तो शीघ्र ही चला आना।

तेरा,

विनु—

ॐ

२७

घर का प्रश्न

विनु का पत्र अनंत को तीर की तरह लग गया। विचार उठते गये और उसे शर्म-सी मालूम होने लगी। सुमन के कहे हुए तमाम शब्द याद आये। कान्ता याद आई और लज्जा से सिर ढल गया। अनंत उठा; सिर पर टोपी डाल चल दिया। थोड़ी दूर गया था कि पत्र याद आया। उसे तो बेंच पर ही भूल आया था। लौटा। द्वार पर आते ही देखा—प्रभुभाई बेंच पर बैठे हैं—हाथ में वही पत्र है। एक क्षण वह घबरा गया।

"क्यों अनंत! कहां हो आया?" पिता ने स्वाभाविक तौर से पूछा।

"जरा बाहर ही। पत्र यहां भूल गया था, उसे लेने आया हूं।" पत्र लेने हाथ बढ़ाते हुए उसने कहा। पिता ने पत्र दे दिया। अनंत को लगा पिताजी ने पत्र नहीं पढ़ा है।

"अभी ही जायगा?" पिताजी ने कहा, "बैठ! ब्यालू करके ही जाना।"

अनंत ने पत्र जेब में डाला और कुर्सी पर बैठ गया। विचार हुआ-कह डालूं 'मेरे भरोसे न रहना पिताजी!'

"आज लक्ष्मीचंद शेठ के पास गया था। उनका कहना है अगर तू कराची जा तो अच्छी से अच्छी नौकरी मिल सकती है। उनके भाई की ही पेढ़ी है। शुरू में तो चालीस पचास देंगे।"

पिताजी इतनी जल्दी से उसके लिये व्यवस्था कर रहे हैं—अनंत ने न सोचा था-पर उसे पता न था पिताजी इन आठ दिनों से उसके लिये कोशिश कर रहे थे। अनंत ने जब कुछ न जवाब दिया तो पिताजी ने फिर कहा—

"लक्ष्मीचंदजी का ही सात हजार का देना है। वे तो घर जैसे है-उनकी कोई चिन्ता नहीं। पर तीन हजार इधर उधर के है-वह सब चुक जाना चाहिये।"

अनंत अब भी सुन ही रहा था।

"तेरा क्या विचार है? तू भी तो कुछ कह।"

"मैं क्या कहूं? मुझे कुछ नहीं सूझता।" अनंत ने कहा।

"सूझाना तो पड़ेगा ही। तू जानता ही है बड़े भाईसाब के हाल हवाल। उन से कुछ उम्मीद नहीं। तू और मैं मिहनत मजूरी करें तो शायद पांच वर्ष में पार लगे।"

'पर मैं यहां कैसे रह सकता हूं?" अनंत बोला—डरते डरते—अथाग प्रयत्न के बाद।

"क्यों? अब भी वापिस जाने का विचार है?"

"पर मैं यहां कैसे रह सकता हूं? मैं तो लड़ाई में गया हुआ हूं न?"

"पर लड़ाई तो अब खतम हुई।"

"किसने कहा ?" अनंत बोला ।

अमुभाई अधिक न बोले । एक दीर्घ निश्वास उनके मुख से निकला, "ठीक है ! बडे भैया की यह दशा है । वह परलोक चलदी—अब तू भी जाना चाहता है । खैर...!"

अनंत का हृदय करुणा से पसीज उठा ।

"मुझे तो जुतना ही है-कैसे भी पार लगाना ही है ?"

अनंत चुप था, सिर नीचा था ।

"दो दो पुत्र । और यह दशा ! आज तुम चाहो तो चुटकियों में कर्ज को चुका सकते हो । पर बड़े भाईसाब अपनी बीबी के पीछे पागल हैं-छोटे अपने स्वराज्य के ।"

इसी समय दोनों बहिनें आईं, उनकी ओर इशारा कर, आगे बोले, "अगर ये शाहजादियां न होतीं तो मैं भी लंगोटी लगा-फ़कीर बन जाता ।"

"पर इतना सारा कर्ज कैसे चुकाया जा सकता है" मानों विचारों में से जागता हो—अनंत बोला ।

"पर अदा तो करना ही पड़ेगा न ? जिन्हों ने विपदा के समय पैसे दिये-उन्हें दगा थोड़ा ही दिया जा सकता है ?"

"पर कर्ज इतना कैसे बढ़ गया ?"

"कर्ज एक दफ़े हुआ, फिर बढ़ता ही जाता है । बडे भैया की शादी के वक़्त दो हजार अपने पास थे । अपने घर के मुताबिक-कपड़ा—व्यवहार तो करना ही पड़ता है न ? उस समय तीन हजार लक्ष्मीचंदजी ने उधार दिये । उनसे अपनी आज की

जान पहचान थोड़ी ही है? उन्हीं की बदौलत है–तुम्हारे दादा की शादी हो गई। मुझे तो आशा थी–एक ही बरस में कर्जा चुका देंगें–पर धंधे में अब कहां बरकत है ? माल में टोटा गया–और न जाने अभी कुछ कम था–तेरी मां ने पलंग पकड़ा। बीमारी एक हजार खा गई। दो वर्षों में चार चार लोग परलोक सिधाये। कुछ न कुछ उत्तरक्रिया में खर्च करना ही पड़ता है न। और व्याज का मुंह कोई बांध सकता है भला ?"

"अगर मैं कर्ज भरने का इरादा करूं तो शायद मेरा जीवन उसी में व्यतीत हो जाय न ?" अनंत सब सुनकर बोला।

अमुभाई ने आश्चर्य से देखा सोचा "जिंदगी–बीत जाय ? हां–उसमें क्या ? जीवन में और क्या करना है ?" पर वे बोले नहीं।

"मै नौकरी तो कर ही नहीं सकता" कुछ देर बाद अनंत बोला।

"तो क्या करेगा ? धंधे के लिये तो पैसे चाहिये। आज अपन तो भिख-मंगे हैं।"

"मैं धंधे की बात नहीं करता। मैं कुछ कर ही नहीं सकता।"

अमुभाई कुछ न बोले–अनंत ने देखा पिता को चोट लगी है।

"पर और मैं क्या कर सकता हूं ? मुझे...मुझे..." अनंत आगे न बोल सका।

"कर्ज तो ठीक है। पर इस घर के खर्च के संबंध में ? बंबई से वह ता एक पाई भेजने वाला नहीं। वह लड़कर गया है। मैं एक पाई के लिये भी उसके पास हाथ नहीं फैला सकता।"

अनंत ने सोचा—क्या पिताजी काम नहीं कर सकते? पर वह चुप रहा। पिताजी ही बोले "मैं भी धंधे रोजगार की तलाश में पड़ा हूं-पर यह सब रास्ते में तो नहीं पड़ा है।"

"और कुछ नहीं हो सकता?"

"क्या हो सकता है-तू ही बता न। अब मै बूढ़ा हुआ। आठ दिन बाद बावनवां बैठेगा। अब गात नहीं चलते। इन दुःखों की परंपराओं ने मुझे निकम्मा कर दिया है। और अनंत! तुम जैसे मेरे लड़के होते हुए भी मुझे यह दुःख सहना पड़े? सारा गांव मुझे चाब डालता है।"

अनंत अमुभाई की ओर देखता ही रहा। उसने देखा इन पांच वर्षों में पिता का देह ढल गया है; आंखें गड़ गई हैं—शरीर जर्जर हो गया है।

"एक ही वर्ष में तू अपनी प्रतिभा का परिचय दे सकता है अनंत! और लक्ष्मीचंदजी का स्वभाव कितना अच्छा है यह तो तू जानता ही है। उन्हें अपनी ओर संपूर्ण सहानुभूति है। और तू जानता है आजकल बेकारी कितनी बढ़ी हुई है। राजकोट में आगे बढ़ने की कोई आशा नहीं। परदेश बिना पैसा थोड़ा ही हाथ लग सकता है? बंबई तुझे भेज नहीं सकता। वहां के हवापानी कभी किसी को रुच नहीं सकते।"

"बडे भैया को क्या मिलता है?"

"डेढसो रुपये। पर कहता है एक पाई भी नहीं बचती। अभी अपनी भानजी की शादी में मैंने उसे लिखा था कि सो रुपये भेजे। पर एक पाई न भेजी और मुझे उधार लेकर सब कुछ करना पड़ा।"

"पर उधार न लिये होते तो?"

"तो बेटा ब्योहार कैसे चलता? अपने दरज्जे के अनुसार हमें रिस्म-रिवाज़ तो अदा करना ही चाहिये न।"

"पर कर्ज़ करके?"

"हां–कर्ज़ करके। जात में रहना है कि नहीं? बालबच्चों की शादी करनी है कि नहीं? गांव में अभी अपनी शह इतनी जमी हुई है कि–सब लोग देखकर रामराम करते है। समझा?"

"पर इस प्रकार का दिखावा करने से फायदा? इस प्रकार तो कर्ज़ बढ़ता ही जायगा।"

"बंधी मुठ्ठी लाख की बेटा! अगर यह व्यवहार बंध कर दें– कल तूती बजने लग जाय। और जात में कोई पूछे भी नहीं।"

अनंत इस व्यवहार-ज्ञान को न समझ सका। लंबी देर तक बातें होती रहीं पर अनंत ने न कहा कि वह नौकरी करेगा, या नहीं कहा साफ साफ कि वह चल देगा।

ब्यालू का समय हुआ और पिता पुत्र उठे। जीमते जीमते अनंत ने पूछा–

"कमला को आगे क्यों न पढ़ने दिया?"

"आगे पढ़ाकर क्या करेंगे? लिखपढ़ सके इतना क्या कम है? उसे नोकरी करने थोड़े ही जाना है?"

"पर पढ़ने से ज्ञान तो बढ़ता है। नये नये पुस्तक पढ़ सकती है। नया नया जान सकती है।"

"पुस्तकें पढ़कर क्या करना है ? ए...लड़कियों को ज्यादा पढ़ाना अच्छा नहीं, किसे याद कैसा घर मिले ।"

अनंत अधिक न बोला । भोजन करने में लग गया । अनंत को यह बात न रुची—अमुभाई समझ गये । वे बोले—

"तू यहां रहकर या कराची जाकर अपने साथ इसे रखकर जितना पढ़ाना चाहे पढ़ा सकता है । हम तो खुद ही सात किताब से आगे नहीं पढ़े ।"

"नानाभाई" कुसुम बोली "तुम कराची जाओगे ?"

अनंत हंसती कुसुम की ओर देखता रहा । कुसुम को भैया का गंभीर स्वरूप अच्छा न लगा । वह तो रोनी-सी हो गई । अनंत समझा—कृत्रिम हास्य लाने का प्रयत्न करते हुए वह बोला—

"तू मेरे साथ आयगी न ?"

"जेल नहीं । कराची जाओ तो आऊं ।"

"रामपुर जाऊं तो ?"

"नहीं, तो भी नहीं । वहां बड़ी-सी स्कूल है ?"

"बड़ी नहीं पर छोटी-सी हो तो ? मैं ही तुझे पढ़ाऊं तो ?"

"तब तो जरूर आऊंगी" कुसुम ने आनन्द से कहा ।

अनंत कुसुम का चहरा देख आनंद में आ गया । पर पिता की ओर देखा तो लगा उन्हें यह बात पसंद न आई । अनंत चुपचाप रोटी खाता रहा । कुसुम भी गंभीर वातावरण देख चुप हो गई ।

२८

कुटुंब-धर्म

भोजन के बाद अनंत अकेला ही घूमने चल दिया। विनु के पत्र से मचा हुआ हृदय का तूफान पिताजी की बातों से कुछ ठंडा हुआ था। अनंत को प्रतीत हुआ उसका मन इस समय स्वस्थ है, स्थिर है–वह अच्छी प्रकार शांत चित्त से विचार कर सकता है– और एक के बाद दूसरा प्रश्न लेने का निश्चय किया। प्रथम कुटुंब की ओर उसकी फर्ज़ है कि नहीं? उसे कुटुंब के लिये कुछ करना चाहिये या नहीं? कुटुंब के प्रश्न के सामने टक्कर झेलनेवाला दूसरा प्रश्न देश का। उसे हुआ-कुटुंब के प्रति मनुष्य का धर्म है ही। अगर कुटुंब के प्रति फर्ज़ नहीं; तो देश के प्रति कैसे हो सकती है? जिस प्रकार दुनिया के और गरीब-दीन-दुःखियों की सेवा छोड़ हम अपने देश की ही सेवा करने में लग जाते हैं–सोचते हुए कि इसी देश से हमारा पोषण हुआ है–इसी के टुकड़ों से पले हैं–इसी के संस्कारों से हमारा मानस बना है–ठीक इसी प्रकार चूंकि हमारे माता पिताने हमारा पोषण किया है–हमें संस्कार दिये हैं–हमारा फर्ज़ है कि उनकी सेवा करें–।

इस वस्तु का स्वीकार अनंत ने किया, पर इसी के साथ दूसरा प्रश्न भी उपस्थित हुआ। कर्तव्य किस प्रकार बजाया जाय? इस प्रश्न ने अनंत को डांवाडोल कर दिया। अनंत थक गया—सोचना छोड़ दिया। पर कुटुंब का निर्वाह तो करना ही पड़ेगा। पर क्या पिताजी नौकरी नहीं कर सकते? बड़े भैया की फर्ज़ नहीं? पर पिताजी की अवस्था...पिताजी की फर्ज अब पूरी हुई। हां...दादा कर्तव्य-पथ से विमुख है—पर क्या उसे भी ऐसा करना चाहिये? तब क्या करना चाहिये? कमाना तो चाहिये ही—उसके बिना निर्वाह कैसे हो सकता है? ऐसी नौकरी कौन है जिस में न झूठ बोलना पड़े—न दगाबाजी करनी पड़े। कराची ही जाऊं? न—न...इतनी दूर? नहीं—तब तो सब भूल जाऊं न? क्या भूल जाऊं पर?

रामपुर खड़ा हुआ! तो रामपुर का क्या होगा? आज ही तो विनोद का पत्र आया है। कुटुंब-धर्म की इमारत मानो डगमगाने लगी। कुटुंब-धर्म? राष्ट्र-धर्म? दस हजार का कर्ज! किस प्रकार सब अदा होगा? अनंत डर-सा गया। पर भरना तो पड़ेगा ही। देनेवाले ने कुटुंब की स्थिति देखकर—कुटुंब के मनुष्यों को लक्ष्य में रखकर ही कर्ज़ दिया होगा न? बड़े भैया अपना धर्म नहीं समझते। ठीक है; पर मुझे भी क्या ऐसा ही करना चाहिये? और कर्ज़ का इन्कार कैसे हो सकता है? वह तो पवित्र वस्तु है।

पर मैं कमा सकता हूं? मुझे आता ही क्या है? उसमें क्या? पुनमचंद शेठजी को क्या आता था! आज एक लाख गांठ में हैं। पर पर—वे रुपये तो लूट के हैं—अधर्म के हैं; और लूटे बिना पैसे मिल ही कैसे सकते हैं? छिः छिः इससे तो मरना बहतर है! पर फिर करना क्या? इन झूठे रिवाज़ों के

चुंमल में फंस कर्ज़ करो और फिर उसे अदा करो । क्यों ये फ़िजूल खर्चियां ? और विचार करते करते उसका सिर चकराने लगा । माथा थाम वह चलने लगा ।

एक प्रश्न का विचार इतने सालों से कर रहा हूं पर न ओर दिखाई देता है न ठोर; ज्यों ज्यों विचार करता हूं त्यों त्यों अधिक गहरा उतरता जाता हूं । क्या किनारे का पता ही न लगेगा ?

पर फिर भी प्रश्न तो खड़ा ही है "क्या करना चाहिये" वह बोल उठा–उसने चारों ओर देखा । कोई सुननेवाला न था । खूब दूर निकल गया–उसने देखा–वापिस चल दिया । फिर विचारों ने आक्रमण किया ।

कुटुंब और देश–दोनों की एक साथ ही सेवा नहीं कर सकता ? राजकोट में रहकर ही ईमान से धंधा शुरू कर दूं– बहिनों को पढ़ाऊं–और शक्य हो इतनी लोकसेवा भी करूं ? पर लोकसेवा के लिये समय भी मिलेगा ? और सेवा क्या करनी ? हां, समाज की सेवा हो सकती है–हरिजनकार्य हो सकता है । हरिजनकार्य पिताजी यहां करने दे सकते हैं ? नहीं–वे चुस्त विष्णुपंथी–इस कार्य में कभी सम्मति न देंगे–उसे हुआ पिताजी से साफ साफ बात कर लेना ही चाहिये । बिना इसके कोई निर्णय शक्य नहीं । खादी पहनना, अस्पृश्यता-निवारण, ज्ञाति के बंधनों को तोड़ना–कहां ये सिद्धांत और कहां पिताजी के विचार ! उनके साथ निबाह होना अशक्य था । रोज़ ही झगड़ा मोल लेना होगा ।

"पर करना क्या ?" प्रश्न वैसे ही खड़ा था ।

इन्हीं विचारों में मस्त जब अनंत घर आया तो देखा शेठ लक्ष्मीचंदजी अमुभाई से बातें कर रहे हैं। उसने शेठजी को 'नमस्ते' कहा। वे हंसे।

अनंत टेबल के पास आ खड़ा रहा।

"अब तो यहीं रहना है न ?" शेठजी ने पूछा।

"विचार कर रहा हूं" अमुभाई की ओर देख अनंत ने कहा।

"अब पिताजी को भी आराम लेने दे भैया ! बहुत दिन तक घसीटा इन्होने।"

अनंत चुप रहा।

"भला ऐसे मावाप का गुन कौन भूल सकता है ? ए—न मावाप के बिना इस संसार में कोई नहीं। कहा है न कि जिंदा ही अपनी चमड़ी की जुतियां अपने मात-पिता के लिये बनवावें फिर भी उत्तीर्ण नहीं हो सकते। तू तो समझदार है लाला ! तुझ से अधिक क्या कहें। लड़ाई थी तब तक तो ठीक था—अब तो घर की ओर भी देखना चाहिये न ?"

उनके उपदेश की असर अनंत पर न हुई यह देख आप आगे बढ़े—

"ए-हमारे दिनों में तो बच्चे मांबाप का कहा कभी न टाल सकते थे। मजाल क्या ? आज तो भैया—स्वतंत्रता स्वतंत्रता का हल्ला मचा हुआ है पर देखना, सब के सब उन्हीं पुराने

उसूलों पर न आवें तो मेरा नाम लक्ष्मीचंद शेठ नहीं। कहो न वे तुम्हारे सैनिक-लोग कहां हैं। ए—आशरा है जो घर का।"

अनंत मन में मुस्कराया। फिर विचार आया—नौकरी मिलेगी तो इन्हीं की मेहरबानी से। अमुभाई अनंत की ओर देखते रहे। उन्होने समझा बात यहीं अटकना चाहिये।

"पर! अब अपनी कमु का विचार किया?" अमुभाई ने पूछा।

"विचार क्या करना है? उसका भाई जो आ गया है—सारी दुनिया घूमा है—उसके योग्य वर न ढूंढ ले आयगा?"

"उससे तो कहा ही है, पर आप भी ध्यान में रखना।"

"देखो—अब सब उसी पर डाल दो। ए...चिंता सर पर पड़ेगी और सब होश हवाश ठीक हो जायंगे। और पांच पंदरह दिन बाद इसके लिये भी तो लाडी लाना होगा न।" लक्ष्मीचंदजी ने अनंत की ओर देखा।

अनंत को इन बातों मे रस न आया। सो जाने की इच्छा हुई। राजकोट आने के बाद अनंत नीचेवाले कमरे में ही सोता था, पर आज तो पिताजी और शेठजी बैठे थे; वह ऊपर जाने लगा।

"क्यों, जाता है?" शेठजी बोले।

"जी" अनंत ने कहा और ऊपर चला गया। ऊपर जाते ही उसका सिर भारी-सा हो गया। बिस्तर पर लेटा और कुछ देर में ऊंघ गया।

कुछ इधर उधर की बातें कर शेठजी उठे । उसके जाने के बाद अमुभाई ऊपर आये । देखा, जिस स्थल पर पत्नी ने देहत्याग किया था उसी पर अनंत लेटा है । वे डर गये । पास जा उन्होंने अनंत को गोर से देखा । मन में शांति का अनुभव किया ।

शर्ट उतार अनंत लेटा था । उसका सुंदर सुडोल शरीर देख पिता को तृप्ति हुई । अंतर से आशीर्वाद देते हुए–अनेक आशा–ओं के मनसूबे बांधते वे लौटे ।

२९

धंधे की तलाश

अनंत प्रातःकाल चार बजे जगा। जिस कमरे में वह सोया था उसीमें माता की मृत्यु हुई थी। उसे याद आई वह रात—माता का मृत्यु दिवस! वह रातभर माता के पास बैठा रहा था। माता के देह और ढलती काय याद आते ही उसका दिल पसीज उठा। माता के अन्तिम शब्द याद आये "अब कहीं मत जाना भैया!" कल शाम और रात के तमाम विचार आये और गये और उसे लगने लगा—उसे घर ही रहना चाहिये और अपना धर्म अदा करना चाहिये।

पर...विनु का पत्र? उसे अपनी स्थिति समझाऊंगा। पिता और बहनों को क्या भूखे मरने दूंगा? अगर मैं चलदूं तो उनका कौन? और कमला क्या करेगी? कुसुम की पढ़ाई? धंधारोजगार तो ढूंढ लिया जायगा। और धीरे धीरे कर्ज भी अदा हो जायगा। बस विनु के पत्र की ओर ध्यान अब दिया ही नहीं जा सकता। जो प्रथम धर्म है वही अदा किया जायगा—

प्रातःकाल होते ही उसने पिता से कहा।

"मैं यहीं रहनेवाला हूं। जो कुछ सेवा आपकी कर सकूंगा–करूंगा। कुटुंब के पोषण के लिये नीति की राह पर जो कुछ भी कमा सकूंगा–कमाऊंगा। छोटी बहिनों की खबर लूंगा–उनकी सेवा करूंगा।"

अमुभाई के आनंद का पार न था। दोनों बहिनें आनंद से नाचने लगीं। सारा घर मानो हंस उठा।

अनंत कमर कस तैयार हो गया। अब करने की वस्तु एक भी–खूब पैसे पैदा करना। अनंत के हृदय में बस वे ही विचार रम रहे थे, और अमुभाई सोच रहे थे–कब अनंत से कहूं और समझाऊं की वह कराची जाय।

दो पहर की रोटी खाने के बाद अमुभाई बोले–

"तू कराची जा तो।"

"पर तुम्हारे पास ही ठीक रहेगा न? यहां पर मैं कुसुम और कमला दोनों का खयाल रख सकता हूं।" अनंत को कराची जाना पसंद न था।"

"कमला–कुसुम का तो सब ठीक हो जायगा–प्रथम प्रश्न है कमाने का।"

"यहां कोई धंधा बंधा नहीं मिल सकता?"

"यहां धंधा बंधा कैसा? और राज में तो रुजगार करने से तू राजी नहीं।"

अनंत को सुमन याद आया। पर उसकी परिस्थिति और मेरी परिस्थिति में कितना अन्तर है–यह मन को समझा रहा था।

"पर और कुछ नहीं हो सकता ?"

"तू पढ-लिख सकता है। माष्टर बन जा। पर उसमें से भी क्या मिल सकता है ? घर का खर्च तो निकलना चाहिये न ?"

"कुछ व्यापार ?"

"व्यापार में क्या धरा है ?"

"तो अब क्या किया जाय ?" अनंत ने थककर कहा।

"यहां कुछ नहीं हो सकता। तुझे कराची जाना ही चाहिये। वहां तेरी तरक्की ठीक हो सकती है।"

"कराची ?" अनंत विचारों में गोते खा रहा था, "पर कमला और कुसुम का भी कुछ सोचा ? मेरा खयाल है अलग रहना ठीक नहीं।"

"तू कमाने लगेगा-तो हमे वहां आते क्या देर लगती है।"

"पर मैं पूछता हूं, राजकोट में मैं नहीं पैदा कर सकता ?"

"अगर ऐसा होता-तो इतने अपने बिरादरी के लोग-परदेश क्यों झक मारने गये हैं ?"

"पर पिताजी ! अभी इस शहर में साठ हजार मनुष्य हैं।"

"ठीक है। साठ हजार हों या एक लाख-यहां ठीक मामला नहीं बैठ सकता। तुम क्या जानो, अभी बच्चे हो। दो चार व्यापारी और दो चार वकील संगीन हैं-बाकी सब खोखले; भरपेट भी नहीं मिलता।"

"पर मुझे श्रद्धा है यहीं पर सब ठीक हो जायगा।"

"तो कीजिये मिहनत–कौन मना करता है ! पर याद रखना मैं कहता हूं वही सच होगा । और तू तो जानता भी है–अपने पास एक पाई भी नहीं है ।"

अनंत सोचने बैठा–किस धंधे में सफलता मिल सकती है। अमुभाई बाहर चले गये । शाम के छ बजे तक अनंत सोचता रहा–पर कुछ ठीक न हुआ । शाम को अमुभाई ने पूछा–

"एक काम है । लक्ष्मीचंदजी की हाम है कि मोटर और इलेक्ट्रिक के सामान की दूकान यहां अच्छी चल सकती है। वे रक़म रोकने को तैयार हैं–पर तुझे स्थिर होना चाहिये ।"

"मन तो स्थिर ही है" उसने कहा, "पर ये सब वस्तुएं परदेशी हैं न ?"

"अपने देश में तो मोटरें होतीं नहीं" अमुभाई ने कहा–हंसते हंसते, "और दूसरी हाम है कि आठ दस हज़ार लगा–एक औषधियों की दूकान खोली जाय। और अठन्नी हिस्से की बात है। मिहनत अपनी–पैसे उनके ।"

"ऐसा भी हो सकता है भला ? मजूरी हम करें, और आधा नफ़ा वे उठावें ।"

अनंत के इन शब्दों पर अमुभाई को हंसी आ गई। "अनंत रे अनंत ! तुझे व्यापार का अनुभव नहीं। प्रथम तो इतने पैसे ही रोकने को कौन राजी हो सकता है भला ? नफ़े की बात तो दूर है। कौन कह सकता है नफा ही होगा–टोटा नहीं ?"

अनंत समझ न सका ।

"नहीं नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। विदेशी वस्तुओं का व्योपार मै कर ही नहीं सकता।"

"पर अपने देश में जो ये वस्तुएं नहीं होतीं...अनाज घी का व्योपार अवश्य कर सकता है।"

"और कुछ?"

"कपड़े की दूकान! और उसमे भी आजकल जापान के कपड़े की धूम है।"

"कपड़े का व्यापार नहीं–खादी के सिवा और कपड़ा पहिनना या बेंचना पाप है।"

"तब अनाज का धंधा कर" अमुभाई के शब्दों में कटाक्ष था।

"उस में हर्ज़ क्या? क्या उसे नहीं कर सकते?"

"हर्ज़ क्या? कुछ भी नहीं–पर तुम जैसे पढ़े-लिखे उसे करोगे? उस में बड़ा व्यापार तो है नहीं। और मज़दूरी भी कम नहीं। कपड़ों की पूरी दुर्दशा।"

"पर मैं मज़दूरी से शरमाता थोडा ही हूं।"

"फिर भी तू नहीं कर सकता। और उसमे कुछ पैदाश भी नहीं मुझे तो याद है न–अगर माल पड़ा रहा और भाव घट गये–तो फिर टोटा ही टोटा समझो।"

"तो फिर कराची जाने के सिवा कोई चारा नहीं क्यों?–और वहां भी मुझे करनी तो नौकरी होगी न?"

"हां।"

"यहां नौकरी नहीं मिल सकती ?"

"मिल सकती है—पर वेतन कितना ?"

"कितना ?"

"तीस चालीस रुपये। पर फिर आगे बढ़ने की उम्मीद नहीं। दस बरस में शायद पचास रुपये मिल सके।"

अनंत फिर सोच में पड़ा। कुछ सूझता न दिखाई दिया। आध घंटे तक दोनों चुपचाप बैठे रहे।

"मैं पूछता हूं कराची जाने में हर्ज ही क्या है ?"

"वहां जाने के बाद लौटना मुश्किल है।"

"पर हमें लौटना कहां है ?" अनंत की मनोदशा न समझते हुए- कहा पिताजी ने।

कुसुम ने आकर कहा "रसोई तैयार है" दोनों भोजन करने चले।

भोजन में स्वाद न आया। थोडा बहुत खाकर अनंत खड़ा हो गया। "घूम आता हूं" उसने कहा और टोपी सिर पर रख चल दिया। वे ही विचार। कराची जाने को तो मन ही न होता था। जो कुछ करना हो—राजकोट में ही किया जाय-उसने निश्चय किया। बीमा कंपनी का ख़याल आया—पर लूट का धंधा है, लाचारी है—सोच, विचार छोड़ दिया। पत्र निकालने का विचार आया—पर उसमें उसकी चोंच नहीं डूब सकती—अनुभव नहीं—बात नहीं। तो करना क्या ?

धंधा तो ढूंढना ही चाहिये–कराची जाकर भी ता करनी नौकरी ही न ? वह मानो टूटी–फिर ? ब्यौपार ब्यौपार ही ठीक है–पर धन कहां ? रोकने को पैसे कहां ?

निश्चय पर न आ सका। विचारों का वेग और वर्तुल बढ़ने लगा। कुछ ठीक न लगा–पास ही एक नाले पर बैठ गया।

रात के दसेक बज चुके थे–मनुष्यों का अवारा जवारा कम हो गया था। अनंत को यह शांति और एकांत प्रिय लगा। कुछ आराम पा रहा हो–शांति का अनुभव कर रहा हो–वह शून्यमन बैठ गया। सहसा राह पर जाते एक मित्र पर उसकी दृष्टि पड़ी। 'प्रल्हाद' वह बोल उठा।

"ओह ! इस समय यहां ?" प्रल्हाद बोला।

"हां ! जरा फिरते फिरते।"

"तुझे आये–एकाध माह बीत गया न ?"

"हां। घर पर काम रहता है। बाहर निकलना ही नहीं होता।"

"तेरी माता का भी देहान्त हो गया ! जीवन है ! अब तो यहीं रहेगा न ?"

"हां। धंधारुजगार ढूंढ रहा हूं।"

"काम धंधा ? ओह ! मेरे स्वदेशी भंडार में रहेगा ?"

"तेरा खुद का है ?"

"हां ! एक मित्र के साथ ही काम चलता था, वे अभी ही गये।"

"मुझे किस प्रकार रख सकता है?" अनंत ने आतुरता से पूछा।

"किस तरह? वाह! तू कहे उसी तरह।"

"मासिक वेतन क्या मिल सकता है?"

"तीस चालीस रुपये।"

अनंत ने आगे बातें करता उचित न समझा।

"चुप हो गया? भैया! स्वदेशी भंडार में इस से अधिक नहीं मिल सकता। अगर हिस्सा रखना चाहे--मुझे हर्ज नहीं है—पर फिर भी चालीस से अधिक नहीं मिल सकता"

"पर इतने से मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती।"

"पर इस से अधिक किसी भी धंधे में मिलना मुश्किल है। हां, अगर टके पास हों—और सिद्धांत बिद्धांत न हों तो अधिक अवश्य मिल सकता है।"

"परदेशी चीज़ों का व्यापार तो कर ही नहीं सकते।"

"तो लल्ला—चालीस से अधिक की आशा छोड दे। स्वदेशी भंडार ठीक न लगता हो तो किसी स्कूल या बोर्डिंग में रह जा। पर अधिक वेतन की आशा मत रखना।"

"तेरा भंडार कहां है?" अनंत को रस न था।

"हां—लाखाजीराज मेमोरियल के नज़दीक। कल आना।"

"आऊंगा।" अनंत ने कहा। प्रल्हाद चल दिया।

चालीस रुपये–अनंत गुनगुनाया–ओह इससे क्या हो सकता है ? घर का खर्च भी बड़ी मुश्किल से निकल सकता है। कर्ज़ का क्या ? कर्ज़ तो ठीक–ब्याज का क्या ? यहां तो ब्याज निकलना भी मुश्किल मालूम होता है। यह बेकारी !–अनंत सोचता चला जा रहा था। बेकारी के प्रश्न ने रामपुर उसके सामने खड़ा किया–वहां–रामपुर में चालीस रुपये तो बहुत बड़ी रकम समझी जाय ! वहीं पर रहें तो ? पर वहां चालीस की पैदायश ही कहां ? कौन दे ? मैं यहां से भेजूं। पर विनु ? हां वहां विनु भी है, पिताजी वहीं रहें: पर वे कबूल करेंगे ? फिर कर्ज़ का क्या ?–उस प्रश्न का जवाब ही न मिलता था।

दूर के टावर से ग्यारह के डंके सुनाई दिये। वह चला। मंद गति से चलता घर आया। देखा–पिताजी अभी भी कोई पत्र बत्र लिख रहे हैं। इच्छा हुई–देखे किसे लिख रहे हैं।–पर न देखा। अमुभाई ने ही एक पत्र उसके हाथ में रख दिया।

"तेरे जाने के बाद नरभेरामभाई यह पत्र दे गये हैं।"

अनंत पत्र पढ़ स्तब्ध-सा हो गया।

"तुम उन्हें उत्तर दे रहे हो ?"

"हां ! क्यों ?"

"क्या लिखते हो।"

"मैं पुछवाता हूं कि लड़की की उम्र कितनी है–क्या पढ़ी लिखी है ?"

"मेरी राय नहीं" अनंत ने स्पष्ट उत्तर दिया।

अमुभाई उसकी ओर ताक रहे थे। अनंत के मुख पर इतना निश्चय टपक रहा था कि उन्हें बोलने की हिम्मत न हुई।

हाथ में पकड़ी हुई कलम वहीं रख दी। पत्र अध-लिखा ही रहा। अनंत ने एक दृष्टि उस पत्र पर फेंकी और ऊपर चल दिया। एक निश्वास फेंक अमुभाई ने उसी कुरसी पर अपनी देह ढाल दी।

३०

सुमन का मनोराज्य !

दो एक घंटे के बाद जब कान्ता उठी तो देखा प्राणजीवनदास उसके पास खड़े हैं। उन्होनें उठाई या स्वयं उठी–कान्ता निर्णय न कर सकी। कान्ता के उठते ही पिताजी ने कहा, "तू गभराना मत। मैंने निश्चय कर लिया है। आज ही ना लिख देता हूं। जल्दी ही लिख दूं ताकि उन्हें अधिक तकलीफ उठानी न पड़े।"

कान्ता पिता का मुंह देखती रही। कृतज्ञता मे मानो वह दबी जाती थी। पिता कान्ता के मनोभाव तथा आनंद समझ गये। उन्हें याद भी न था कि इस निर्णय से–कान्ता को सुखी करने से-उन्हें खुद को कितना आनंद होगा। कान्ता को यह समाचार दे, वे अपनी दूकान की ओर चलदिये।

कान्ता उठी। हाथ मुंह धो सुमन के पास गई। सुमन के घर में बड़ा शोरगुल मचा हुआ था। सुमन जोरों से कुछ बोल रहा था–कान्ता थंभ गई।

"हां। हां मैं भीख मांगूगा–पर अपमानपूर्वक जीवन न बिताऊंगा। मा ! चल ! यहां अब मिनिट भी नहीं ठहर सकते।" सुमन के शब्द थे।

कान्ता सोचने लगी। भीतर जाना उचीत था या नहीं। वह निर्णय पर आ सके इस पहिले सुमन के चचा बाहर निकले। कान्ता ने उन्हें देखा; उन्होंने कान्ता को। चचा कुछ न बोले, चल दिये। कान्ता भीतर गई। सुमन एक टिरंकपर चिन्तातुर बैठा हुआ था। सिर के बाल बिखरे हुए थे। आंखें लाल और तपी हुई। पास ही उसकी माता बैठीं थीं।

कान्ता आई। सुमन मुस्कराया।

"कब आई ?" उसने पूछा।

"आ ही रही हूं।"

"यहां पर भी वही मामला है। तेरे घर जैसा।"

"तुम आये तब तो मामला शान्त हो गया था। बाद फिर उठा था-पर फिर उसे ठीक कर दिया गया है।"

"यानी ?"

कान्ता ने सब समाचार सुनाया। बरात पोरबंदर तक आ चुकी थी-इत्यादि सब बातें कहीं। पिता की चिंता और अन्तिम निर्णय भी कह सुनाया।

सुनकर सुमन हर्षित हुआ। कान्ता ने कहा "पर मुझे अभी भी डर तो है ही। पिताजी किसी के कहने में आ जांय-तो मामला फिर बिगड़ सकता है।"

सुमन की माता यह सब सुन रहीं थीं और इस विचित्र लड़की को देख रहीं थीं। सुमन उठा। ऊपर आने का संकेत कर चल दिया। कान्ता कुछ देर बाद ऊपर पहुंची।

"क्या मामला था ?" कान्ता ने पूछा ।

"वही बात, और क्या ? चचाजी कहते हैं यहीं रहना पडेगा और रेवन्यु दफ्तर में क्लरकी करनी पडेगी । मै कहता हूं मैं नौकरी न करूंगा ।—पर फिर भी—माताजी राजी न हो जाय तब तक कैसे चला जा सकता हूं ?"

"सुमन भई !" कान्ता धीरे से बोली, "अपन शायद भूल तो नहीं करते ? मै अपने ऊपर से ही कहती हूं कि जितना क्रोध, धिक्कार और तिरस्कार हमारे बुजुर्गों में भरा है, क्या उतना ही तिरस्कार, क्रोध और धिक्कार हम में नहीं ? मै पिता के साथ लड़ी हूं उसका पश्चाताप मुझे नहीं—पर पश्चाताप है मेरे अविनय का—क्रोध का—तिरस्कार का ।"

"तू सच कहती है कान्ता" सुमन नम्र बनता हुआ बोला, "हम अपने को अहिंसक सैनिक कहाते हैं पर हम में कूट कूट कर हिंसा भरी हुई है । हम में वह अहिंसा की दृढ़ता, मानवता, कहां ? बुजुर्गों के वाक्य पर—एक वाक्य पर हम उबल पडते हैं । दृढता रहना एक बात है—और अशांति पूर्वक, अविनय सहित दृढ रहना एक ।"

"मेरे पिता के अन्तिम निश्चय ने मुझे खूब समझाया है । मै सोचती हूं वे हमेश ही मेरे सुख में सुखी हैं—पर वे लाचार हैं । परापूर्व के संस्कार और समाज के भय से वे इतने दबे हुए है कि सब कुछ जानते बूझते हुए भी वे कुछ नहीं कर सकते । हम उनके प्रति क्रोध कैसे कर सकते हैं ? उनकी आज्ञा नाकबूल हो तो विनयपूर्वक हम मना कर सकते हैं ।"

सुमन और कान्ता ने अपने दिल खोले और अपने अविनय पर पश्चाताप किया; और निश्चय किया भविष्य में ऐसा न हो।

"तो कल तलाजा जा रहे हो?" कान्ता ने पूछा।

"हां। तू आना चाहती है?"

"नहीं–नहीं। अभी तो पिताजी ही के पास रहना जरूरी है। पर चन्द्रा भाभी से तुम क्या कहनेवाले हो?"

"वहां जाकर–परिस्थिति पर आधार है। उसकी तबियत अच्छी हो, उस में शक्ति हो–तो आज ही रामपुर ले जाऊं।"

"नहीं। अभी नहीं ले जा सकते। कम से कम एक महीना तो उन्हें आराम करना चाहिये।"

"तो तेरा मार्ग तो सरल हो गया न?"

"मैं अभी नहीं मानती। मुझे डर है अन्त में कोई न कोई विघ्न अवश्य आ पड़ेगा।"

"पर कान्ता! भाग गई होती–तो कहां गई होती?" सुमन ने नया प्रश्न किया।

"अनंतभाई के पास। अहमदाबाद।"

"अनंत वहां न मिलता तब?"

"तब देख लिया जाता।"

"पर तू अकेली कहां गई होती?"

"वह तो—तब ही बता देती। समझे?" कान्ता ने कहा "और अभी भी डर तो है ही।"

"कान्ता!" सुमन ने कान्ता से कहा "तुझे शादी करना ही नहीं?"

"अभी तो नहीं।"

"तब कब?"

"जब शादी की इच्छा होगी तब।"

"तुझे किसी की ओर ऐसा खिंचाव नहीं?"

"किसी की ओर नहीं" कान्ता ने स्वस्थता से उत्तर दिया।

"अनंत की ओर भी नहीं?"

"न" कान्ता अटकी, फिर बोली, "अभी तक तो नहीं।"

कान्ता के अटकने का अर्थ सुमन ने और ही लगाया। यही प्रश्न उसने अनंत से भी पूछा था, पर अनंत ने उसे चुप कर दिया था—फिर भी उसके मन में तो ये विचार आते ही थे।

"कान्ता! मेरी तो राय है, तुम और अनंत शादी कर डालो तो?" सुमन के इन स्पष्ट शब्दों को सुन कान्ता को आश्चर्य हुआ। उसने स्थिर दृष्टि से सुमन की ओर देखा। सुमन की आंखें जमीन में गड़ गई।

"यह प्रश्न इस समय सोचने योग्य नहीं" कान्ता ने गंभीर स्वर से कहा।

कुछ देर तक कोई न बोला

"अच्छा ! तो जाऊंगी" कान्ता उठी।

सुमन बोल न सका। कान्ता हंसी और चल दी।

सुमन कान्ता के जाने के बाद कुछ क्षण तक चुपचाप बैठा रहा। ज्यों ज्यों विचार करता था, उसे लगता था—कान्ता और अनंत की शादी होना ही चाहिये।

उसे यह भी सूझा कि इस समय इस प्रश्न को यहीं रहने देना चाहिये। सब रामपुर जांय, विनु से सब बातें कही जांय—फिर देख लिया जायगा। सुमन ने सोचा—दो में से एक ने भी प्रस्ताव किया तो दूसरा इन्कार न कर सकेगा। सुमन कल्पना के घोड़े पर सवार हो गया—उसे कान्ता और अनंत का मिलन भावों से भीगा और सुखद मालूम होने लगा। उसे लगा अगर ऐसा हो तो यह कठिन प्रश्न चुटकियों में हल हो जाय।

और बड़ी देर तक सुमन इन्हीं विचारों में तल्लीन रहा।

*

३१

अंत में घर छोड़ा

कान्ता घर आई । सुमन की बातों ने उसे गंभीर बना दिया था । ज्यों ज्यों विचार करती थी, सोचती थी—ऐसा हो ही नहीं सकता । अनंत तो मित्र–भाई की तरह रह सकता है । शादी की आवश्यकता ही क्या है ? देश का कल्याण करने की इच्छा थी और अनंत के साथ निकट रहने की । ये दोनों वस्तुएं शादी के बिना हो सकती हैं । फिर शादी की आवश्यकता ही कहां ?

घर में अब शान्ति थी । पिता विचारों में मग्न रहा करते । आठेक दिन इस प्रकार बीत गये । उस दिन पोरबंदर से पत्र आया । पत्र पढ़ते ही पिता के मुख पर चिंता और भय के बादल छा गये । "कान्ता" वे बोले, "मैंने समझा बुझाकर लिखा था— पर वे लोग नहीं मानते ।"

कान्ता ने पिता की ओर देखा, उन्होंने पत्र उसे दे दिया । संकोचवश उसने पत्र लिया—पढ़ा । सार था—

"ऐसा हो ही नहीं सकता । हमें आबरू है कि नहीं ? हमें समाज में रहना हैं कि नहीं । अलखमलख इस बात को

जानती है–यह चमार भंगियों का व्यवहार नहीं–शेठजी ! तुम्हें समझना चाहिये। क्या तुम्हें खुद को अपनी आबरू का खयाल नहीं। गांव क्या कहेगा ? लोग तालियां पीटेंगे। पहले से लड़की पर जाप्ता क्यों नहीं रक्खा ? ऐसा अवसर तब न आता शेठजी..."

नवीनचंद्र के पिता का पत्र था। कान्ता पत्र पढ़ प्राणजीवनदासजी की ओर देखती रही।

"तू सोच लेना" पिता ने चिंतातुर वदन से कहा। बाहर चल दिये।

कान्ता क्या सोचे ? वह गभराने लगी। क्या करना चाहिये ? शाम को प्राणजीवनदास भोजन करने न आये–कहलवा दिया 'देर से आवेंगे।' पिता की चिंता भी होने लगी। रात को दस बजे के करीब पिता आये। मुख पर गमगीनी छाई हुई थी। कान्ता को अपार दुःख हुआ–वही इस दुःख की जड़ है।

बिना कुछ बोले वे अपने कमरे में चले गये, और खाट पर लेट गये। कान्ता की मंथन–रात्रि शुरू हुई। चारों ओर शांति थी। जीवन दुःखमय लगने लगा। विचार करती रही पर एक मार्ग न सूझा। बरातियों पर गुस्सा आया पर वह भी शम गया। "वे सब रूढि-रिवाजों के गुलाम हैं" वह बोली।

कान्ता बैठी ही रही। रात के दो बजे तक बैठी ही रही। उठी–धीरे धीरे पिता के पलंग के पास आई। निद्रा में भी पिता के मुख पर अपार अशांति की रेखाएं थीं। कान्ता लौटी। एक विचार आया। प्रत्येक क्षण विचार दृढ होने लगा। अपने कमरे में आई और किवाड लगा दिये। बत्ती नजदीक लाई–देखा

किवाड के पास वह डोरी पड़ी हुई है–जिसका उपयोग करने का विचार कल आया था–उसे देखते ही अपने ऊपर उसे तिरस्कार छूटा–छिः छिः कैसा विचार था ?

दावात और कलम उठाई। पत्र लिखे; हाथ कांप उठे। फिर लिखने लगी–

पूज्यनीय पिताजी,

अत्यंत दुःख और वेदनापूर्वक यह पत्र लिखती हूं। मुझे एक भी मार्ग नहीं सूझा इसी से यह मार्ग ग्रहण करती हूं। मैं जानती हूं तुम्हें दुःख होगा–पर मैं लाचार हूं–विवश हूं।"

लिखते लिखते कान्ता के मुख पर सुर्खी छा गई। ओठ कांपने लगे। कलम हाथ में से गिर पड़ी। एक मिनिट तक वैसी ही बैठी रही। दृढ़ता से फिर कलम उठाई और लिखने लगी–

"अधिक लिखना नहीं चाहती। मैं जाती हूं। कहां जा रही हूं–मैं भी नहीं जानती–मेरे पीछे मत आना। रामपुर नहीं जा रही हूं। वहां पैर न घसीटना।"

कान्ता अटकी–मानो खूब थक गई हो, अंगड़ाई ले फिर लिखने लगी–

"मैं जानती हूं तुम्हारा मुझ पर अपार प्रेम है। यह भी जानती हूं तुम मुझे दुःखी नही करना चाहते। पर मेरे ही कारण तुम्हें इतना दुःख भुगतना पड़ रहा है। मै अपने दुःख से डर कर नहीं भागती–पर भागती हूं इस लिये कि तुम्हारा दुःख नहीं देख सकती।"

फिर विचार कर लिखना शुरू किया–

"मै शादी करना ही नहीं चाहती। देश की सेवा ही में जीवन बिताना चाहती हूं। तुम चिंता न करना; ईश्वर मेरी रक्षा करेगा। वह मुझे भूल नहीं सकता।"

कान्ता ने सोचा पत्र खतम हुआ। पढ़ गई। संतोष न हुआ, फिर लिखने लगी–

"आपके मन में अनंत के संबंध में अब शंका न आवेगी–मैं मान लेती हूं। वह मेरा भाई-सा है। अच्छे अच्छे साधुओं से भी वह अधिक साधु-चरित है। उसका सारा जीवन एक जलती हुई भट्ठी-सा है। उसके ऊपर तुम शंका न लाना पिताजी! मैं लड़की हूं–यह ठीक है–पर मैं अबला नहीं। तुम्हारे पैदा किये हुए–और संग्राम से पोषे हुए मेरे संस्कार मुझे दृढ़ता देंगें–मेरी रक्षा करेंगें। निश्चित रहना।"

"अधिक क्या लिखूं? तुम्हें भूल सकती हूं? मै अपराधिनी हूं–अनेक बार मैंने तुमसे रोष किया है–सब भूल जाना–और अपने मन से अपनी पुत्री को क्षमा दे देना।"

सोचती रही–फिर लिखने लगी–

"मुझे राष्ट्रसेवा करनी है–इससे मैं छुपी तो रह ही नहीं सकती। मुझे भागना भी न चाहिये। पर तुम मुझे जाने दो–न जाने दो–सारा दोष तुम्हारे पर मढ़ा जाय, इसीसे सब को जता कर भाग जाना चाहती हूं कि दोष मेरा ही है।"

"कुछ दिन न जताउंगी कि मैं कहां हूं–पर फिर बताऊंगी तो सही ही–और तुम बुलाओगे–तो माफी मांगने भी आऊंगी।"

पत्र खतम हुआ। अंत में लिखा–'तुम्हारी आज्ञाधीन पुत्री'– पर फिर इन शब्दों को काट डाला और लिखा–'कान्ता का वंदन।'

उस पत्र को फिर पढ़ा–शांति का अनुभव किया और दूसरा पत्र लिखने का विचार करने लगी।

दूसरा पत्र लिखने के विचार के साथ ही कान्ता के हृदय में उत्साह और आनंद का संचार होने लगा। वह लिखने लगी–

प्रिय अनंत भैया,

"अन्त में मुझे घर छोड़ना पड़ा है। तुम्हारे जाने के बाद अनेक बातें हो गईं। पिताजी के प्रति लेश मात्र रोष नहीं है। उनका दुःख न देख सकने से ही घर छोड़ रही हूं?"

"अभी तो अहमदाबाद जा रही हूं। मैं सोचती हूं–तुम जहां भी होगे वहां यह पत्र विनुभाई भिजवा देंगे।"

"तीन बजे हैं रात के। सुबह की साडे चार की गाड़ी से भाग जाना है। पिताजी पास ही के कमरे में सो रहे हैं। उनकी चिंता–वेदना का पार नहीं है।

तुम कहां मिलोगे? मैं कहां जाऊंगी–क्या करूंगी–कुछ निश्चय नहीं।

उस पर भरोसा रख निकल रही हूं।

तुम्हारी बहिन
कान्ता

दोनों पत्रों को अलग अलग लिफाफे में डाले। अनंत के लिफाफे पर रम्भपुर का पता लिखा और विनु को लिखा कि पत्र अनंत को पहुंचा दे। पिता के लिफाफे पर 'पूज्य पिताश्री' ही लिखा।

कान्ता ने दोनों लिफाफे बिस्तर के नीचे रक्खे और धीरे से किवाड़ खोले—पिता के कमरे की ओर चलदी। पिताजी निद्राधीन थे। कमरे में गई। एक खूंटी पर पिताजी का कोट लटक रहा था। नजदीक आई और बटवा निकाला। चारों ओर देखा—कोई देख तो नहीं रहा? अंगों से एक कंप निकल उठा।

दस रुपये की नोट निकाल बटवा वापिस रख दिया। डरती डरती, आहिस्ता २ अपने कमरे में आई। बिस्तर के नीचे से लिफाफे निकाले। पिता के पत्र में लिखा—"तुम्हारे बटवे में से दस रूपये निकाले हैं।" पत्र ले बाहर आई और पिता के कोट में धर आई।

साडे तीन बजे। जल्दी करने लगी। बेग में से दो जोड़ी कपडे निकाले और थैली में डाले। सब ठीकठाक कर कमरे के बाहर आई। दरवाजे के पास खड़ी रही। मन फिर पिता के कमरे की ओर ले जाना चाहता था—पर वह सदर दरवाजे की तरफ चलदी। आसपास दृष्टि फेंकते हुए—दरवाजे के नजदीक आ पहुंची। किसी के खांसने की आवाज आई—वह कांप उठी। कुछ क्षण बाद वह सड़क पर थी—और तीव्र वेग से स्टेशन की ओर चली जा रही थी।

३२

विचित्र अनुभव

हांफती हांफती कान्ता स्टेशन पर आ पहुंची। अहमदाबाद की टिकिट लेकर स्त्रियों के डिब्बे में बैठ गई। रास्ते में और स्टेशन पर कोई जान पहचानवाला न मिला इससे मन में छुटकारा पाया। गाडी चलने की सीटी बजी, और सारा शहर देख लेने की लालसा मन में जागी। प्लेटफोर्म पर से गाडी चली जा रही थी, और कान्ता खिड़की में से देख रही थी।

गाडी वेग से चलने लगी। सारी रात कान्ता सोई न थी– फिर भी निद्रा न आती थी। कहां जाऊंगी–क्या करूंगी– विचार आने लगे।

धोला जंक्शन आते ही अनंत का लिफाफा पोष्ट कर दिया और अनंत का विचार करने लगी। अनंत मिल जाय–तो इस तमाम अशांति और झगडे का अंत आ जाय–ऊसे लगने लगा।

एक विचार आया। सुना है लड़के तो बहुत से भाग जाते है-पर कोई लड़की इस प्रकार भागी है? कान्ता को ऐसा कोई किस्सा याद न आया। संग्राम के दिनों में भागे हुए लड़कों के

किस्से तो याद आये–पर किसी लड़की के भाग जाने का किस्सा न सुना था। ऐसे लड़कों पर उस समय उसे तिरस्कार छूटता था। वह कहती "छिः छिः कह के नहीं आ सकता था? माबाप क्या उसे बांध लेने वाले थे?" कान्ता यह कहना चूकती भी नहीं–अवसर पानेपर।

अहमदाबाद स्टेशन आते तो रात पड़ गई थी। रास्ते में स्टेशन पर और गाड़ी में दो तीन मित्रों को देखा–पर वह उनसे न मिली। अहमदाबाद स्टेशनपर उतरने के बाद विचार आया–कहां जाय? इन्हीं विचारों में बाहर स्टेशन के दरवाजे के पास आई। सामने रेवाबाई धर्मशाला खड़ी थी–उसी ओर चलदी।

दरवाजे में दाखिल हुई–आसपास के लोग उसे देखते रहे। कान्ता ने परवाह न की। धर्मशाला के महेता के पास जाकर एक खोली मांगी। बीस वर्ष की उम्र युवती को देख महेता विचार में पड़ गया। और मुसाफिर लोग भी इकट्ठे हो गये और कुतूहल से यह तमाशा देखने लगे। क्रोध से वह लौट पड़ी। सब लोग देखते ही रहे। कोई जोर से हंस भी दिया।

कान्ता सड़क पर आई। शहर की ओर भी चलदी–पर निश्चय न कर सकी कहां जाय? अहमदाबाद में उसके अनेक रिश्तेदार रहते थे पर वहां तो जाना ही न था। किसी स्त्री–संस्था में जाने का तय किया और महिला–आश्रम का पता पूछ उस तर्फ चलदी।

कान्ता को विचित्र अनुभव होने लगे। दो चार जगह पूछ कर महिला–आश्रम के द्वार पर आन लगी। पर इस बीच उसने देखा, सब लोग उसे कोई अद्भुत आश्चर्य-सी वस्तु की भांति देख रहे थे।

महिला-आश्रम का द्वार खटखटाया। चालीसेक बरस की एक स्त्री दरवाजे के पास आई। वह शायद कोई कार्यकर्ता हो। उसने पूछा-

"क्यों बहिन! कहां से आती हो?"

उसने उत्तर देने में देर की और उस स्त्री का चेहरा सख़्त हो गया।

"कहां से? भाग कर आरही हो?"

कान्ता ने कहा 'हां-' और प्रार्थना की कि आज की रात वह रहना चाहती है।

"यह धर्मशाला-बर्मशाला नहीं"

कान्ता क्रोध में लौटी।

ठहरने का-रात बिताने का-प्रश्न इतना विकट होगा-कान्ता ने न सोचा था। सारी रात इसी तरह घूम घाम कर बिता देने का विचार आया। सुबह तो कहीं न कहीं ठीक हो जायगा। पर सारी रात कैसे घूमा जा सकता है। पुलिस पूछताछ करे तो? कान्ता निश्चय न कर सकी।

अंत में संग्राम के दोस्तों की याद करने लगी। दो तीन मित्र याद आये। सुमतिबहिन की याद आते ही-वहीं जाने का निश्चय किया। कान्ता जानती थी-एलिसब्रिज के उस पार सुमति रहती है। वहां रात बिता सकेगी-कान्ता ने सोचा।

बस में बैठ, एलिसब्रिज पार कर, सुमति के बंगले की ओर चलने लगी। पर विचार आया-अगर अनंत मिल जाय तो वहां

भी क्यों जाना ? अनंत का पता विद्यापीठ में मिल सकता है। सुमति के बंगले को छोड़ वह विद्यापीठ के लिये चलदी। म्युनिसिपालिटी की हद बिताते ही रास्ते पर अंधेरा छा गया। घनघोर अंधकार, और रास्ते के दोनों ओर वृक्षों की कतार। कुछ दिखाई न देता था। जल्दी जल्दी चलने लगी।

विद्यापीठ का रास्ता आते ही, उस ओर मुड़ी। अंधकार में भी विद्यापीठ का मकान दिखाई देता था। उसे विश्वास था—रात तो यहां बिता सकेगी ही। सब शून्य था—खुली बरामदे में दो मनुष्य सो रहे थे। कान्ता कुछ देर खड़ी रही। सोते हुए लोगों को जगाने की इच्छा न हुई।

"क्यों बहिन ?" एक ने बिस्तर में बैठते बैठते ही प्रश्न किया।

"यहां पर कोई अनंतभाई नाम का युवक आया है ?" उसने खड़े खड़े ही पूछा।

वह मनुष्य उठा—और नज़दीक आया। कान्ता को देखने लगा—पर पहचान न सका।

"अनंतभाई ? रामपुर में रहते हैं वह ?"

"हां" कान्ता ने हर्ष से कहा।

" वे तो दस बारह दिन पहिले यहां आये थे।"

"आप बता सकते है वे इस समय कहां है ?"

"आप कौन हैं ? कहां से पधारते हैं ?" सामने से प्रश्न आया।

"मै—मै भावनगर से आई हूं—अनंत मेरा मित्र है।"

"आपका नाम ?"

"कान्ता।"

"आप संग्राम में थीं ?"

"हां।"

महाशय कुछ विचार में पड़े; फिर बोले—

"तो—इस समय अनंत को कैसे ढूंढ सकेंगीं ?"

"यहां पर सोने का अवकाश है ?" संकोचवश कान्ता ने पूछा।

महाशय और आश्चर्य में पड़े; पर बोले "है" और अपने पीछे आने का संकेत किया।

"हं। तो आप कीर्ति को पहचानती हैं ?"

"कीर्ति ?" कान्ता याद करती बोली, "वही न जो संग्राम के बाद कलकत्ता गये थे ?"

"हां—वही।"

"वे यहां हैं ?" कान्ता ने साश्चर्य पूछा।

"यहां नहीं—पर आश्रम में है। शायद वे अनंत के बारे में जानते हों।"

कान्ता खड़ी रही। दोनों की बात चीत से दूसरा युवक भी जाग उठा। उसने आश्चर्य से कान्ता की ओर देखा।

"मै कहता हूं" पहला युवक बोला, "इन्हें चिमनभाई के घर ले जांय। वहां पर भागीरथी बहिन भी हैं।"

"नहीं। नहीं। हर्ज न हो तो मैं यहीं सो जाऊंगी" कान्ता ने कहा।

"अच्छा। जैसी इच्छा।"

कुछ दूर दोनों महाशयों ने कान्ता के लिये बिस्तर बिछा दिया। कान्ता लेट गई।

प्रथम युवक एकाध घंटे तक न सो सका। कान्ता ने देखा। कान्ता थक गई थी–पिछली रात को न सोई थी–फिर भी अधरात तक सो न सकी। विचारों का तांता लग गया। कहां थी–कहां आ गई? बिचारे पिता क्या सोचते होंगे? सुमन को भी खबर न दे सकी।

कुछ देर बाद कान्ता की आंखे मुंद गईं। निद्रा की मीठी गोद में सब चिंता–व्यथा विलीन हो गई।

३३

इकरार

कान्ता की माता प्रातःकाल छ बजे उठीं। उन्होंने कान्ता के बिस्तर की ओर देखा भी नहीं। सातेक बजे जब प्राणजीवनदास उठे—और कान्ता को न देखा, तो उसके कमरे की ओर गये। बिस्तर में कान्ता को न देखा तो समझे टहलने गई होगी।

नौ बजे तक जब कान्ता न लौटती दिखाई दी, प्राणजीवनदास को चिन्ता होने लगी। पत्नी से पूछा—पर उन्हें खबर न थी। चिंता ही चिंता में कोट पहिन मंदिर की ओर चल दिये।

घर लौटे, पर कान्ता न थी। चिंता बढ़ने लगी। वे सुमन के घर पहुंचे, पर वह तो आठेक दिन हुए तलाजा गया हुआ था। चिंता का पार न था। लौटते वक्त राह में एक व्यापारी मित्र से भेंट हो गई। काम का कोई पत्र ढूंढने के लिये ज्यों ही जेब में हाथ डाला—एक लिफाफा हाथ आया। उस पर लिखा था "पूज्य पिताश्री"—कान्ता के हस्ताक्षर पहचान प्राणजीवनदास पागल-से हो गये।

जल्दी से काम पूरा कर, घर लौट पड़े। अपनी बैठक में जा पत्र खोल पढ़ने लगे।

पढ़ते पढ़ते सिर चकराने लगा। दोनों हाथों से नेत्र मूंद वे कितनी देर तक वैसे ही बैठे रहे। नेत्र पर से जब हाथ उठाये-तब नेत्र गीले थे। आंसू न रुकते थे—बालक की भाँति वे रो पड़े।

उनके मुख पर क्रोध न था। पत्थर का दिल भी पिघल जाय—इतनी करुणा उनके मुख पर व्याप्त थी।

बैठक में कोई न था। भावनगर के इस प्रभावशाली व्यक्ति का रुदन सुनने को वहां कोई न था। लंबी देर तक वे वहां इसी प्रकार बैठे रहे। क्या करना चाहिये—न सूझा। तार करने का विचार आया; पर छोड़ दिया। कान्ता को कष्ट पहुंचाने की उनमें हिम्मत न रही थी।

"मेरा ही कसूर है। कान्ता जैसी पुत्री किसे मिल सकती है? मैंने घर में बैठी साक्षात सरस्वती को न पहचाना।"

कान्ता की माता को याद पड़ी। वे तो वैसे ही रोनी थीं—बात सुन कर वे रो उठी। जब शेठ ने देखा कि नौकर चाकर भी इस बात को जान रहे हैं तो उन्हों ने पत्नी को शांत रहने को कहा।

धीरेधीरे सारे—शहर में बात फैल गई। हररोज की तरह प्राणजीवनदास बाजार के लिये चलदिये, पर मुखपर का शोक छिपता न था। आसपास के लोग पूछतांछ करने लगे—लोथ पोथ-से वे वापिस लौट आये।

शाम तक तय न कर सके—क्या करना चाहिये। शाम को विचार आया—तलाजा सुमन से मिला जाय। एक मोटर तैयार

कर तलाजा चलदिये । सुमन के श्वसुर का घर देखा था । पहुंचे तब अंधेरा हो चुका था । उनके आगमन ने चारों ओर आश्चर्य पैदा कर दिया । आग्रह करने पर भी वे मोटर से नीचे न उतरे— सुमन को मोटर में बिठा लिया ।

सुमन को लेकर मोटर भावनगर की ओर चलदी । राह में प्राणजीवनदास ने सब बात कह सुनाई । सुमन स्तब्ध रह गया । प्राणजीवनदास ने पत्र सुमन के हाथ में दिया । सुमन ने सारा पत्र पढ़ा ।

"बोलो । अब क्या करना चाहिये ?"

"अहमदाबाद गई होगी ।"

"तू कुछ जानता है सुमन ?"

सुमन भयपूर्वक तांकता रहा ।

"डर मत सुमन ! सच सच कह दे । कान्ता बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकता ।"

पर सुमन के मुख पर से भय के बादल न बिखरे ।

"मुझे अब कुछ नहीं करना सुमन ! बस एक वक्त कान्ता से मिलना चाहता हूं । सच कह दे । तुझे कुछ याद है ?"

"इस समय की बात कुछ याद नहीं ।"

"तब ?"

"पहिले भी एक समय कान्ता ने भाग जाने की बात कही थी ।"

"अब के वह कहां गई है-तुझे कुछ याद नहीं? सच कहता है?"

"सच कहता हूं मुझे याद नहीं" सुमन के आवाज़ ने शंका के लिये स्थान न छोड़ा।

"कह तो अब क्या करना चाहिये?"

"अहमदाबाद चलें...पर...तुम..."

"मैं कुछ भी न करूंगा-सुमन! मुझे कुछ भी नहीं करना" आवाज गीला था।

प्राणजीवनदास के चहरे को देख सुमन को आश्चर्य हुआ; और विस्मय हुआ इस अद्भुत परिवर्तन पर।

"इसी समय-मोटर से ही अहमदाबाद चल दें तो?"

"न। सुबह की गाड़ी से चले। शायद रास्ते में कुछ समाचार भी मिल जांय।"

भावनगर पहुंचते तक इसी बात पर छान बीन होती रही। सुमन को भी प्राणजीवनदास के लिये आदर उत्पन्न हुआ।

रात को सुमन उन्हीं के घर सोया। सुबह की फ़्रास्ट में जिससे अनंत और कान्ता गये थे-प्राणजीवनदास और सुमन बैठे। गाड़ी चलदी।

"कान्ता के लौटने पर शादी का क्या करोगे?"

"शादी का निर्णय मैं कर चुका। अब कान्ता की शादी न होगी-वह आज़ाद होगी-जो भी वह करना चाहे-कर सकती।"

"सामने का पक्ष ?"

"मैं उन्हें साफसाफ लिख दूंगा । पुत्री के जीवन से अधिक मेरी आबरू मुझे प्रिय नहीं ।"

"तुमने पहले से ही ऐसा सोचा होता तो ?

"मुझे इसकी उम्मीद न थी । शादी के समय इतना शोरगुल मचेगा–बात इतने हद तक जायगी–मुझे भरोसा न था । ख़ैर..."

सुमन चुपचाप सुन रहा था ।

"सुमन ! सच कहता हूं–जिस दिन उसके कमरे मे मैंने वह हत्यारी डोरी देखी–उसी दिन से मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं अब बीच में न आऊंगा ।"

सुमन सुन रहा था ।

"ईश्वर ने लाज रखी भैया ! नहीं तो मुझे जहर खाना पड़ता ।"

वे फिर बोलने लगे–

"सुमन ! ऐसी लड़की किसी के घर भी हो सकती है ? मेरे पुत्र भी हैं–पर सात पुत्रों को भुला देनेवाली एक पुत्री है। मनुष्य कितना डरपोक होता है । समाज के बंधनों से कितना जकड़ा हुआ होता है । कितना अंधा होता है । जान बूझकर भी मैं यह न देख सका कि मेरी कान्ता मामूली लड़की नहीं ।"

"मुझे भी होता था–मौसाजी–कि आप जैसे सुधारक–और क्या करने पर तुले हुए है ?"

"विचारों से क्या होता है सुमन ! ये ये सब तो दिखावे हैं–दिखावे । दुनिया की आंख में धूल झोंकने के तरीके हैं !

और आज कान्ता ने नेत्र न खोले होते तो बस जीवन ऐसा ही बहता–जैसा बह रहा था–ढोंग–फितूर और धोखेबाजी में।"

पचास वर्ष के प्राणजीवनदास सुमन जैसे छोकरे के सामने मानो जीवन का इकरार कर रहे थे। सुमन को आश्चर्य हुआ। आज हृदय के पटल खुल गये थे–और अनर्गल उच्छृंखल बह रहे थे हृदय के सच्चे भाव–सुमन सुनता जा रहा था; और हर्ष में डोल रहा था।

"और सुमन! जातपात में जो बड़ा होना चाहते हैं–उन्हें यह ऊपर का दिखावा रखना ही पड़ता है। मान मरतबा मिला करे–पर हृदय का भार हलका नहीं होता सुमन! तू बच्चा है अभी सुमन! तू क्या जाने?"

सुमन चुपचाप सुन रहा था।

"और अपनी इस लड़ाई के मौके पर भी क्या? संग्राम में–इज्जत और नाम कमाने, मेरे जैसे अनेक धनवान घुस गये। मात्र पैसों के तावपर। और हम सीखे हैं दोनों ओर ताली पीटना, और कुछ नहीं। तू क्या जाने? लड़ाई का जब रंग जमा तो कितने ही नेता लोग बीमार पड़ गये। कितनों को काम आ पड़ा। ज्यों ही हरिजन–प्रवृत्ति गांधीजी ने हाथ में ली–वे ही लोग बाहर निकल आये। तू देख तो कौन इन नेताओं में से हरिजन–वास में जाकर भंगियों के लड़कों को पढ़ाते हैं? सभा करनी हो तो हाज़िर–लेकचर देना हो तो हाज़िर, मगर कसौटी का काम आय तो बस रामराम।"

"पर ऐसों की भी आवश्यकता तो है ही" सुमन बोला।

"हां हां। आवश्यकता क्यों नहीं? पर सच्चे काम किये बिना—यह सब फिज़ूल है। हमारे एक मित्र कहते हैं—बिलकुल ठीक कहते हैं—प्रचारकार्य तो मेढ़कों जैसा है; रात को तालाब में दस भी इकट्ठे हो जांय तो ड्राउं ड्राउं से सारा गांव सिर पर ले लें—पर सच्ची ताक़ात का पता ऐसे थोड़े ही लग सकता है?"

सुमन को प्राणजीवनदास की दलील ठीक जंची। लीमड़ी स्टेशन तक येही बातें होती रहीं। भीड़ होने से बातें अटकीं; बातें बंद होते ही—कान्ता के विचार आने लगे। फिर चहरा गमगीन हो गया। सुमन ने सोचा इतनी होशियारी देश के सच्चे कार्यों में इस्तमाल की जाय तो?"

गाड़ी वढवाण जंक्शन पर आ पहुंची। सुमन ने प्लेटफार्म पर नज़र दौड़ाई। कोई पहिचान का न था। गाड़ी बदलने को नीचे उतर पड़े।

३४

बंबई की ओर

अनंत ऊपर आया। अन्तिम बात ने उसे सोच में डाल दिया। पिताजी उसकी शादी के फेर में भी पड़े होंगे—उसका खयाल भी अनंत को न था। एक क्षण के लिये उसे हुआ—मानो पिता उसे कोई भयंकर जाल में फंसाने की तजवीज में हैं। सब छोड़ भाग जाने का विचार आया—पर ज्यों ही मानसिक उग्रता ठंडी पड़ी—धंधे रोजगार के विचार आने लगे।

दूसरे दिन, लौटने के बाद पिता ने एक नये समाचार हर्ष-पूर्वक दिये "अनंत! गोरधनदास शेठ खुद यहां आये हैं।"

जितनी असर अनंत पर होने की उम्मीद पिता ने सोची थी वैसी असर अनंतपर इस समाचार से न हुई। गोरधनदासजी शेठ साब बंबई में जवाहरात का व्योपार करते थे। राजकोट के प्रतिष्ठित धनिक थे। अमुभाई की स्थिति जब अच्छी थी, और गोरधनभाई की सामान्य-सी, उस समय दोनों में अच्छा मेल जेल था। अमुभाई ने उनके आगमन के समाचार सुने तो उनके पास दौड़े रामराम करने—और जब बात ही बात में यह भी तय हो गया कि उनकी पेढ़ी में वे सहर्ष अनंत को रख लेंगे;

तो आनंद में डोलते अमुभाई घर आये—और अनंत को यह खुश खबरी सुनाई। पर अनंत को खास हर्ष न हुआ। इस तटस्थता को देख पिता को अत्यंत आश्चर्य हुआ।

"क्या कहते थे वे?" अनंत ने पूछा।

"उनकी बंबई की पेढ़ी में जगह मिल सकती है। मेरी तो राय है—मौका हाथ से न निकलने देना चाहिये। कराची से यह हजार दरज्जे ठीक है।"

"पर आप तो बंबई की मना करते थे न?"

"हां। वहां के पानी का डर तो है ही। पर तुझे बड़े भैया की तरह थोड़ा ही कुछ व्यसन है? तू तो नियमित रहने वाला। तुझे वहां का पानी क्या असर कर सकता है भला?"

"क्या वेतन देंगे?"

"वेतन का तो मैंने नहीं पूछा। वे कमती देंगे ही नहीं। और तेरी नजर अगर उस व्यापार में पहुंच गई तो हजारों चुटकियों में पैदा कर लेगा। वे दिलावर दिल के आदमी हैं।"

"पर कहां बंबई और कहां राजकोट? मेरी इच्छा तो यहीं रहने की है।"

"तू सोच तो ले। जल्दी क्या है। और यहां की बात तो तू जानता ही है। यहां क्या पैदा कर सकता है? कर्ज से छूटना है तो परदेश जाना ही पड़ेगा।"

इधर उधर की बातें कर अमुभाई बाहर गये। अनंत विचार में पड़ा। अनंत ने सोचा अगर वह पिता से दूर ही रहे तो

अच्छा, ताकि संघर्ष का प्रसंग ही उपस्थित न हो। और शादी के संबंध की बातचीत भी अटक पड़े। कुसुम और कमला का खयाल अवश्य था-पर बंबई में जम जाने के बाद उन्हें वहां बुलालिया जा सकता है।

अमुभाई ने घूम आकर कहा कि गोरधनदासजी आज ही बंबई जा रहे हैं और उम्मीद करते हैं कि अनंत आठेक दिन में वहां पहुंच जाय। अनंत ने मौन रह कर ही अपनी सम्मति जतादी।

"तो मैं उनसे हां कह दूं?"

"हुं" अनंत ने कहा।

भोजन पश्चाद् अमुभाई बाहर चलदिये। अनंत को अब बंबई के ही विचार आने लगे। जब याद आया कि कुछ दिन पहिले वह खुद ही बंबई जानेवाला था-अपने मित्रों को देखने जानेवाला था-उसका सिर ढल गया-शर्म के मारे। पर और चारा न था।

रिश्तेदारों में जब यह बात फैली-तो सब अपना हर्ष जताने आये। मन में तूफान उठते हुए भी अनंत ने हंसते मुंह सब का स्वागत किया और उत्तर दिया।

दो दिन के बाद जाने का तय हुआ। कुसुम ने टीका किया-नारियल और रुपया एक हाथ में दिया। अनंत ने पिता को सर नवांया; और बिदा ली।

थैली लेकर आया हुआ अनंत-बेग, बेडिंग, टिफिन-बास्केट, पानी की सुराई-लेकर राजकोट से गाड़ी में बैठा। बिदा लेते वक्त अनंत ने अपने नेत्रों में आंसू पाये। पिता ने गाड़ी चलते चलते कहा-

"शरीर की संभाल लेना। भगवान् तेरी रक्षा करें–तुझे बरकत दें।"

गाड़ी में अनंत अब अकेला था। न पास थी बहिनें न पिता। विनु का खयाल आया। उसे पत्र तो लिखना ही चाहिये। लिखना क्या? मन में शब्दरचना की, और मिटाई। लिखने के अनेक विचार आये–अपने कर्तव्य के समर्थन मे अनेक दलीलें पेश करने की सूझीं–पर अंत मे एक कार्ड ही लिखा–

प्रिय विनु,

तुझे आश्चर्य होगा। शायद दुःख भी। तेरा पत्र मिला था। मै आज बंबई जा रहा हूं। खूब कमाने, और पिताजी का कर्ज़ अदा करने।

माताजी का तो अवसान हो गया।

तेरा
अनंत

वीरमगाम और अहमदाबाद पसार करते अनंत को तीव्र व्यथा का अनुभव हुआ। जेल की दीवालों को देखते ही तीव्र वेदना हुई–पर माता की मृत्यु समय की प्रतिमा, पिता की करूणामयी मूर्ति तथा छोटी छोटी बहिनों की याद ने इस वेदना को कुचल दिया।

गुजरात में से पसार होते हुए चंद्रशंकर की याद आई। अभी मिल जाय तो? खयाल मात्र से सिर ढल गया–पर फिर विचार आया–क्या बुरा कर रहा हूं? फर्ज़ अदा कर रहा हूं।

इसी प्रकार के अनेक विचारों में डोलता अनंत बंबई सेन्ट्रल के स्टेशन पर उतर पड़ा। अनेक बार बंबई तो आया

था—इस बार में कितना अन्तर था ? प्लेटफार्म पर ही गोरधनदास शेठ के भेजे हुए आदमी से मुलाकात हो गई। कुछ दूर देखा—पंद्रह बीस मनुष्यों की भीड के बीच दिनुभाई दिखाई दिये। देखते ही अनंत खुश हो गया। पर तुर्त ही मुंह गिर गया।

रामपुर छोड़े अभी एक महीना भी नहीं हुआ। विनु के अन्तिम शब्द याद आये "देख आ अनंत ! दिनुभाई किस लोकश्रेय के लिये विलायत पधार रहे हैं।"

पर मैं खुद किस लोकश्रेय के लिये उतरा हूं—अनंत के मन में प्रश्न उठा। यंत्रवत् गोरधनदासजी के आदमी के पीछे पीछे चल दिया। आज अपना सामान उठाने की भी उसे इच्छा न हुई।

शेठजी की मोटर पास आई। ज्यों ही बैठने जा रहा था कि पीछे से दिनुभाई की आवाज आई—

"अरे ! अरे अनंत तू आज बंबई में !"

"हां" शरमाते शरमाते अनंत ने मोटर में बैठते कहा।

"कहां उतरा है ?"

अनंत ने शेठजी के आदमी की ओर देखा। उसने कहा "झवेरी बाजार में। गोरधनदास शेठजी की पेढ़ी पर।" दिनु जरा आश्चर्य से अनंत की ओर देखने लगा।

"वहां क्यों ?"

"वहां नौकरी करनेवाला हूं" अनंत ने हिम्मत इकट्ठी करते हुए कहा।

"तू !" दिनुभाई मान न सके "तू और विनु रामपुर में थे न ? कुछ दिन पहले ही भावनगर से पत्र में तेरे समाचार पाये थे न ! सुना था ग्रामसेवकों की भरती पर जा रहा है। यह क्या ?"

अनंत हंसा–पर मुंह पर लज्जा छा गई थी।

"तुम विलायत कब जा रहे हों ?"

"शायद न जाऊं।"

"क्यों ?" अनंत ने पूछा–मानो उसका साथी उसे छोड़कर चला जा रहा हो।

"सुशीला का आग्रह है कि मैं यहीं रहूं–और किसी काम में जुट जाऊं।"

"काम में यानी ?"

"किसी भी रचनात्मक कार्य में। व्यापार धंधे में नहीं।" दिनुभाई ने हंसते हंसते कहा, "अनंत ! तुझे याद नहीं–सुशीला और मेरी शादी हो गई–आठ दिन पहिले।"

अनंत आश्चर्य में डूब गया। शेठजी के आदमी ने कहा 'देर हो रही है।' अनंत कुछ कहे इस पहिले दिनु बोला–

"तू चल न मेरे वहां। मजा आयगा।"

"पर मुझे काम है।"

"शाम को मिलेगा ? घर तो देखा है न ?"

"देखा तो था। पर याद नहीं। शाम को मैं न आ सकूंगा।"

"इतना सारा क्या काम है ? अच्छा तो फोन करना– नं. २२०५६।"

अनंत ने नंबर ले लिया। कृत्रिम हास्य मुंह पर लाते हुए–मोटर में बैठा। दोनों मित्र ने हस्त-धुनन किया।

मोटर चल दी–और अनंत को तसल्ली मिली। बंबई के मनुष्यों की भीड़ चीरती हुई मोटर झवेरी बाज़ार में आई। मनुष्यों की भीड और शोरगुल देख अनंत दिग्मूढ-सा हो गया। ढाई वर्ष बाद बंबई आ रहा था।

उस बड़ी पेढी के सामने मोटर खड़ी रही। मोटर से उतर अनंत ने शेठजी को रामराम किया। शेठजी ने मुस्कराकर ही उसे झेला। साथ का आदमी उसे ऊपर ले गया-सामान रख आया और नहाने का कमरा बताया।

उस के चले जाने के बाद अनंत अकेला पड़ा। कुछ देर चुपचाप विचारमग्न-सा बैठा रहा। सब नया नया दिखाई देने लगा। एक माह पहिले के तमाम दृश्य उसके सामने नाचने लगे। वह क्या था? क्या बन गया?

स्टेशनवाला आदमी फिर उपर आया; और जब देखा कि अनंत बैठा ही है, तो उसे आश्चर्य हुआ–

"जल्दी नहा धो लीजिये। शेठजी याद फरमाते हैं।"

अनंत उठा। जाते जाते भी उन महाशय ने कहा–

"कपड़े वहीं पड़े रहने देना। रामा धो डालेगा।"

अनंत को सुमन का घर याद आया। लडाई याद आई–और इस अपने परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ।

३५

पिता का हृदय

जब कान्ता की आंखें खुलीं, लगभग आठ बज चुके थे। बरामदे में बालसूर्य का मीठा आतप आ चुका था। वे दोनों महाशय बैठे चरखा कात रहे थे। जाग्रते ही–अपने को उस स्थल पर पाकर आश्चर्य-सा हुआ। बिस्तर पर बैठकर चारों ओर देखने लगी–फिर बिस्तर समेट उन महाशयों की ओर देखने लगी।

हाथ-मुंह धो–आग्रहवशात् दूध पी–कान्ता आश्रम की ओर चलदी। गाढ निद्रा ने उसकी थकावट मिटा दी थी। विचारों में तल्लीन कान्ता आश्रम के निकट आ पहुंची। भीतर पहुंचते ही उसने कीर्ति के समाचार पूछे। एक हरिजन विद्यार्थी दौड़ा और कीर्ति को बुला लाया। कीर्ति ने कान्ता को देखा तो दिग्मूढ-सा हो गया।

"तुम ? यहां ! इस समय ? कहां से ?" उसने पूछा।

"कहती हूं। पर पूछती हूं, अनंतभाई यहां आये थे ?"

"वे तो गये। बहुत दिन हुए।"

"याद है कहां गये हैं ?" कान्ता ने पूछा।

"तुम्हें याद नहीं ? उनके पिता विनुभाई को लेकर यहां आये थे। उन्हें ले गये राजकोट–उनकी माता अत्यंत बीमार थीं इस लिये।"

कान्ता सोच में पड़ गई। फिर बोली–

"इसके बाद कुछ समाचार ?"

"नहीं। मुझे भी इस से आश्चर्य होता है। एक मित्र दो दिन पहिले राजकोट से आये थे–वे कहते थे–अनंत की माता का अवसान हुआ; और अनंत अब राजकोट ही रहनेवाला है।"

"सच ?" कान्ता के आवाज़ में दुःख और आश्चर्य था।

"सुना तो ऐसा ही है, हालांकि मैं मानने को तैयार नहीं। अनंत तो जीवनभर का सैनिक है। वह घर रह ही नहीं सकता।"

"हां–मै भी यही कहती हूं।"

"पर तुम–मैं पूछता हूं–तुम कहां उतरी हो ?"

"यहीं पर।"

"तो चलो-मेरे कमरे में" कीर्ति ने कहा। दोनों चल दिये।

"कीर्तिभई" उसने पूछा, "राजकोट जाने की गाड़ी कब मिल सकती है ?"

"एक तो अभी; और दूसरी रात को। रात को ठीक रहेगा। सुबह पहुंच जाओगी।"

कान्ता और कीर्ति उस छोटी-सी कोटडी में पहुंचे। एक दूसरे की पहचान अवश्य थी—पर परिचय मामूली। अधिक समाचार जानने के लिये कीर्ति ने पूछा—

"कहां से आ रही हो ?"

"विद्यापीठ में से।"

"वहां उतरी हो ?"

"रात को वहीं ठहरी थी।"

"यानी ?"

कान्ता चुप थी। सोच रही थी—क्या कहे—किस प्रकार कहे ?

"अनंत ने तुम्हारे संबंध में अनेक बातें कहीं—उस दिन" कीर्ति बोला।

"अच्छा ?"

कान्ता ने सब किस्सा सुना दिया।

कीर्ति सुनता रहा।

"देखो—शाम तक मैं यहां ठहरूंगी और रात को राजकोट जाऊंगी।"

"तुम रह सकती हो—जितना चाहो उतना। और कुछ मदद कर सकता हूं ?"

"अभी तो कुछ नहीं—धन्यवाद—पर आवश्यकता आनेपर अवश्य लूंगी।"

स्नानादि से निमट कान्ता ने कहा "कीर्तिभाई ! भूख लगी है। कुछ खाने को मिल सकता है?"

"हां ! अवश्य" और वह रसोईघर में पहुंचा, थाली परोस ले आया, और कान्ता ने रसोई पर ठीक हाथ मारा ।

"तुम थक गई होगी। आराम करना ठीक होगा" कीर्ति ने कहा। कान्ता ने सम्मति जताई, और बिस्तर दे वह बाहर चला गया। कान्ता लेट गई ।

कुछ देर नींद न आई। अनंत और पिता के विचार आते रहे। अनंत अब राजकोट ही रहेगा-यह बात वह न मान सकी। ऐसा हो ही नहीं सकता।-पिता का विचार आते ही उसका हृदय रोना-सा हो गया। पिता का स्नेह से भरा दुःखी मुंह सामने नाचने लगा। उसने नेत्र मूंद लिये-प्रार्थना की, उसके पिता को दुःख न हो।

इन्हीं विचारों में उसकी आंखें मुंद गई। कान्ता के सो जाने के बाद तीन चार वक्त कीर्ति भीतर आया-पर कान्ता सो रही थी। जब साढ़ेचार बजे तो कीर्ति भीतर आया, और पुकारने लगा "कान्ता बहिन ! कान्ता बहिन ! उठना है न?"

पर कान्ता सो रही थी-उसके मुख पर अलौकिक हास्य फिरक रहा था-मानो कोई मधुर स्वप्न देख रही हो। वह न जागी। कीर्ति ने अधिक आवाज देना उचित न समझा। पांचेक बजे तक वह सोती ही रही।

जब कान्ता जागी-कीर्ति बैठा हुआ कुछ लिख रहा था।

"बहुत सोये?" कीर्ति ने हंसते हंसते पूछा।

"हो। कुछ याद ही न रहा।"

"कुछ नाश्ता बाश्ता करोगी ?"

"न। अब शाम को—रात को ही।"

"घूमने जाना है ?"

"जेल की ओर चलें ? देखें तो सही। वह तो अपनी विद्यापीठ है।" कान्ता ने कहा।

"बहुत ठीक। अनंत आया उस दिन भी हम लोग जेल की तर्फ़ ही गये थे।"

दोनों साबरमती जेल की ओर चल दिये। राह में कान्ता ने कीर्ति के विषय में थोड़ा बहुत जान लिया।

अपने निवासस्थान को देख जितना आनंद होता है—जितनी ममता उत्पन्न होती है—उतनी इन जेल की दीवालों को देख कान्ता को हुई। लंबी देर वे संग्राम के दिनों की बातें करते रहे। संध्या होते होते लौट पड़े।

कान्ता और कीर्ति ने आश्रम के विद्यार्थियों के साथ ही भोजन किया। भोजन करते समय कान्ता ने विद्यार्थियों से अनेक बातें कीं। भोजन कर लौटे तब अंधेरा हो गया था। सात बजे बाद दोनों स्टेशन के लिये चल दिये। कीर्ति ने आग्रह कर अपना कम्बल और दरी इस्तमाल के लिये साथ दिये, और जब वे साबरमती के स्टेशन पर पहुंचे तो गाड़ी के आने में पंदरह मिनिट के करीब थे।

स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक मन्द बत्ती के प्रकाश के नीचे वे खड़े रहे। कुछ देर बाद कान्ता ने उस मन्द प्रकाश में दो

व्यक्तियों को अपनी ओर आते देखे। कान्ता चमकी। पास आते ही उसने पहचाना–वे तो प्राणजीवनदास–उसके पिता और सुमन थे।

पिता ने पुत्री को पहचाना। वे वहांसे दौड़े। नज़दीक आते आते ठोकर लगी और वे गिरे। कान्ता देख न सकी। उसे मूर्च्छा-सी आई–पर संभली। चित्रवत् सब खड़े थे।

"बेटा!" पिता के मुंह से शब्द निकले। कान्ता का सिर अपने सीने पर लिया। नेत्र से आंसू बहने लगे। कान्ता के आंसू ने उनके कोट को भिगोया।

साबरमती के उजड़ स्टेशनपर यह दृश्य दो मिनिट तक चलता रहा।

३६

अनंत के समाचार

कान्ता के पिता और सुमन चार बजे अहमदाबाद स्टेशन उतरे थे। सुमन ने जितने स्थल बताये वहां फिरे पर कान्ता का पता न मिला। अन्त में सुमन को लगा, कान्ता आश्रम में ही ठहरी होगी। कीर्ति और कान्ता के साबरमती स्टेशन जाने के पांचेक मिनिट बाद ही वे आश्रम में आये। आश्रम में समाचार मिलते ही वे स्टेशन दौड़े।

सुमन प्राणजीवनदास को देखकर अधिक आश्चर्य अनुभव कर रहा था। प्राणजीवनदास कान्ता के पीछे पागल-से बन गये थे। कान्ता को देख वे चकित हो गये।

"कीर्तिभाई" पिताजी बोले, "हम अब भावनगर जांयगें। कान्ता को जो मदद की है तुमने—उसके लिये धन्यवाद।"

"ओह! मदद?"

"हां हां। तुम हम जैसे स्वार्थी नहीं हो। ठीक है इसी लिये यह तुम्हें मदद नहीं जंचती। खैर! अधिक क्या कहूं! तुम लोगों ने तो अपना एक कुटुंब ही बना लिया है। भावनगर कभी अवश्य आना।"

विनयपूर्वक कीर्ति ने सिर नवां लिया ।

"सुमन !" सुमन की ओर देख, जेब में से पैसे निकालते वे बोले "भावनगर की तीन टिकिट ले लें तो ?"

"पर पिताजी ?" कान्ता बोली, " मै घर आकर क्या करूंगी ?"

"तुझे अब कोई बंधन नहीं । तू स्वतंत्र है । तुझे ठीक लगे वह करना ।"

"तो मुझे रामपुर ही जाने दो ।" कान्ता ने प्रार्थना की ।

"पर इस समय घर तो चल, फिर जहां जाना हो चली जाना" प्राणजीवनदास बोले ।

"पर मुझे राजकोट..."

"राजकोट क्यों ?"

"अनंतभाई वहां हैं ।"

"अनंत राजकोट है ?" सुमन ने आश्चर्य से पूछा ।

"हां–उनकी माता बहुत बीमार थीं ।"

"तो अपन सब राजकोट चलें" पिता ने कहा ।

कान्ता विचित्र भाव से पिता की ओर देख रही थी ।

सुमन टिकिट लेने गया । दोएक मिनिट बाद गाड़ी आ पहुंची । बिदा ले, गाड़ी में बैठे ।

'कीर्तिभई ! मिलना कभी कभी ।" कान्ता बोली ।

"भावनगर अवश्य आना" पिता ने कहा ।

कीर्ति ने सिर ही हिलाया । गाड़ी चलदी ।

"बेटा !" पिता बोले "इस प्रकार करना चाहिये ?"

कान्ता ने शर्म से सिर नीचा कर लिया ।

"मै तेरी शादी बलजोरी से तो नहीं कर देता ।" फिर अटककर बोले "पर अच्छा हुआ-तेने मेरे नेत्र खोल दिये ।"

"तुम मेरे पीछे क्यों आये ?"

"न तो-क्या करूं ? कान्ता ! मै अपनी आवरू बचाने नहीं आया-अपनी लड़की बचाने आया हूं ।"

"सो जांयगें अब ?" सुमन ने कहा ।

"मुझे तो नींद नहीं आती-शायद कान्ता थक गई हो ।"

"नींद नहीं आती ? क्या कहते हो ? कल रात को सोये थे ?" सुमन ने कहा ।

कान्ता ने पिता की ओर देख कर कहा-

"पिताजी ! आप सो जाइये ।" कान्ता उठी और कीर्ति की दी हुई दरी को पटरीपर बिछाया । गाड़ी के उस छोटे-से डिब्बे में वे तीन ही थे ।

"वीरमगाम के बाद ही लेटूंगा" प्राणजीवनदास ने दरी पर बैठते हुए कहा ।

वीरमगाम आया । गाड़ी ठहरते ही सुमन दौड़ा और सामने की गाडी में अच्छी-सी जगह ठीक कर बिस्तर बिछा दिया । गाड़ी चलते ही तीनों लेट गये ।

सुबह सात बजे राजकोट आया। गाडी किराये कर अनंत के घर पहुंचे।

अनंत को बंबई गये चार ही दिन हुए थे। घर के पास गाडी रुकी, तो अमुभाई बाहर निकल आये। खादी के कपड़े देख समझ गये–अनंत के मित्र होंगें।

"अनंत है?" गाडी में से उतरते ही सुमन ने पूछा। कान्ता अमुभाई को देखती रही।

"अनंत तो बंबई गया।"

"बंबई?" कान्ता ने साश्चर्य पूछा।

"हां। एक झवेरी के वहां काम मिल गया है। भीतर आइये न! कहां से पधार रहे हैं?"

"अभी तो अहमदाबाद से।" प्राणजीवनदास बोले।

"चलिये। उतरिये।" अमुभाई ने पास आते कहा।

अनंत के समाचार ने कान्ता को आश्चर्य के समुद्र में डुबो दिया। उसने सुमन की ओर देखा। सुमन के मुख पर भी वे ही भाव थे।

"कब गये?" कान्ता ने पूछा।

"चार दिन हुए। अभी कल ही समाचार आये–कुशल है।"

कान्ता चिन्तापूर्वक नीचे उतरी। सब भीतर गये। कुसुम और कमला नवागन्तुकों को निहार रहीं थीं।

"कमु! ये अनंत भैया के दोस्त हैं।" सुमन की ओर बताते अमुभाई बोले।

"शायद आपको कहीं देखा है?" फिर अमुभाई ने प्राणजीवनदास की ओर मुड़कर कहा।

"शायद" उत्तर मिला।

"आप अहमदाबाद क्या करते हैं?"

"हम भावनगर रहते हैं।

"ओह–आपका नाम प्राणजीवनदासजी! न?"

"हां"

"यही बहिन..."

"हां। हां।" जवाब मिला। कान्ता और सुमन समझे।

"मैंने तो सारी बात कल रात को ही सुनी। भावनगर से एक मित्र आये–उन्होंने कहा। सारे शहर में हाहाकार मच गया है।"

"ऐसे ही चलता है! लोगों का मुंह बंद थोड़े ही कर सकते हैं?"

"तो हाथ मुंह से निपट लीजिये।"

"हाथ मुंह से तो निपट लिये–गाडी में ही।"

"तो पानी गरम हो रहा है। असनान।"

"हां।"

कुछ देर शान्ति।

"अनंत की मां..." सुमन ने धीरे से पूछा।

"उनका तो देहान्त हो गया।"

"कब ?"

"अनंत आया उसी रात को। ईश्वर की ही दया कि मुलाकात हो सकी।"

वातावरण में शोक घुल गया।

"अनंतभाई अब बंबई ही रहेंगे ?" कान्ता ने पूछा।

"हां। यहां क्या धरा है धंधे में। उसको इच्छा तो यहीं रहने को थी–पर परदेश बिना पैसा भला कमाया जा सकता है ?"

"बंबई में नौकरी करते हैं ?"

"हां। अभी महावार तो तय नहीं हुआ, पर शेठजी बड़े फैयाज़ दिल हैं।"

कान्ता और क्या पूछे ? अधिक पूछने की हिम्मत उसमें न रही–मानों उसकी कमर टूट गई। प्रसन्नता गायब हो गई–शोक उमड़ आया।

"पिताजी ! पानी तैयार है" कुसुम ने इत्तला दी।

"अच्छा बेटा ! तीनों की तैयारी कर दो। बहिन के लिये पासवाली मोरी में, समझी ?"

तीनों स्नान के लिये उठे।

३७

परिवर्तन

स्नान के बाद कान्ता ने अमुभाई से पूछा "भावनगर जाने की गाड़ी कब मिलेगी?"

"बारह बजे।"

"डेढ घंटा ही बाकी है न?"

"यहां से सीधा ही भावनगर जाना है?"

"हां" कान्ता ने कहा। सुमन कान्ता के मुख की सख्ती देखता ही रहा।

कुछ देर बाद सब भोजन करने को उठे। मामूली-सा भोजन ले-कान्ता ने अनंत का पता लिया। पिता कान्ता के भाव समझते थे-पर मन में खुश थे।

समय होते ही-दो गाडियां लाई गई-और स्टेशन की ओर चल दिये।

"सुमनभाई!" रेलगाड़ी चलते ही कान्ता बोली, "वर्षा और हवा से वृक्ष उखड़ सकते हैं-पर पहाड उखड़ा सुना है?"

प्राणजीवनदास दूर बैठे थे। सुमन कान्ता के नजदीक बैठा था—वह बोला—

"हमें उसकी परिस्थिति का ज्ञान नहीं।"

"परिस्थिति ! छि:" कान्ता ने ओठों को दबाते हुए कहा, "पूछती हूं किसकी परिस्थिति अनुकूल है ?"

सुमन चुप था।

"सुमनभाई ! पर तुम तलाजा जाकर क्या कर आये ?"

"चंद्रा की तबियत अच्छी न थी। मैं कुछ बातचीत ही न कर सका।"

"तुमने खुद ने क्या निश्चय किया है ?"

"मन में तो रामपुर जानेका है—पर प्रश्न उठता है—अनंत कैसे बंबई चला गया ?"

"हुं !" कान्ता बोली—कटाक्ष में।

"कान्ता ! तुझे कुछ विचार नहीं आता ?"

"मुझे ?" कान्ता जोर से बोली, "मुझे तो बहुत कुछ विचार आते हैं—पर तुम्हारी तरह नहीं।"

"भावनगर आने के बाद क्या करना है कान्ता ?"

"दो दिन बाद रामपुर जाऊंगी।" फिर कुछ देर अटकी, और बोली, "शायद किसी और जगह भी जाऊं।

"दूसरी जगह माने ?"

"मैं कह नहीं सकती।"

इस के बाद दोनों चुप रहे । कान्ता खिड़की के पास बैठी थी । आसपास के दौड़े जाते दृश्य देखती हुई सोचने लगी । सुमन सामने की सीट पर लेट गया–वह भी सोचने लगा । दोनों के विचारों का केन्द्र एक था–पर रीति भिन्न थी ।

अनंत के समाचार सुने–तो कान्ता उन्हें सच मानने को तैयार न हुई । और जब माननी ही पड़ी तो स्तब्ध हो गई । कुछ देर क्षोभ, फिर दुःख–फिर चिन्ता ने उसे आ घेरा ।

गाड़ी चली जा रही थी । कान्ता की दृष्टि दूर दूर के फैले हुए प्रदेश पर थी–पर मन न जाने कहां ? उसकी तमाम अभिलाषा–उसके तमाम मनोरथ ध्वंस होते हुए उसे दिखाई दिये । क्या अनंत के साथ बिना–उसकी सहायता के बिना वह एक क्षण भी काम कर सकती है ? वढ़वाण जंकशन तक कान्ता इन्हीं विचारों में झूमती रही । उसे अपना मार्ग न सूझा ।

गाड़ी को बदल, वे भावनगर की गाड़ी में बैठे । प्राणजीवनदास उसके पास आकर बैठ गये ।

"अब तो भावनगर ही रहेगी न ?" पिता ने पूछा ।

"न ! न ! भावनगर में रह कर क्या करूंगी ?"

"तब ?"

कान्ता ने इसका निर्णय अभी नहीं किया था ।

"तुझे तो अनंत के साथ ही रहना था न ! वह तो गया ।"

"ना ।" कान्ता ने स्पष्ट कहा, "उसके साथ रहने से मतलब ?"

"अब रामपुर में कौन है जो...?"

"अनंत के दूसरे मित्र विनुभाई।"

"अनंत के चले जाने से वे अकेले ही वहां रह गये होंगे क्यों?"

"सैनिक को इकल्ला दुकल्ला क्या? रामपुर की बस्ती पांचसो की है।"

"सुमन!" सुमन से पिता ने पूछा, "अब तू क्या करनेवाला है?"

"अभी तो भावनगर में ही हूं। आगे..."

"कुछ तय तो किया ही होगा न?"

"कुछ तय कर नहीं पाया। विचार तो रामपुर जाने का है–पर..."

"चंद्रा बीमार है?"

"हां, और माताजी भी आने को राजी नहीं।"

"वे राजी, भला, कैसे हो सकती हैं? चंद्रा भी राजी न होगी–बल्कि मना करेगी। शहर की जिंदगी छोड़–गांव के ढेले ढोने कौन आना पसंद करेगा?" प्राणजीवनदास ने कहा।

"खैर। ये सब तो घर पहुंचने पर तय हो जायगा।"

कुछ देर कोई कुछ न बोला।

"आपने पोरबंदर लिख दिया?" कान्ता ने पूछा।

"कुछ लिखने जैसा है नहीं; उनके दूसरे पत्र का जवाब ही नहीं दिया मैंने।"

"वे लोग–तुम्हें–पिताजी–किसी प्रकार..."

"मजाल है?—हं...जात में अपना मान कम हो जायगा...व्यवहार में कुछ मुश्केलियां पैदा होंगी। और क्या?"

कान्ता पिता की दृढता पर खुश हुई। पंद्रह दिन पहिले और आज की मनोदशा में कितना अन्तर! कितना परिवर्तन!

"इन्दुभाई का पत्र था?"

"पत्र था। वह फिजूल विलायत गया है?"

"क्यों?"

"क्यों क्या? वहां जाकर क्या आयगा? बालिष्टर बन आयगा–और लोगों में लड़ाइयां पैदा करायगा।"

"पर भिजवाया तो आपने ही है।"

"मैं क्या करूं? उस समय मुझ में यह दृष्टि न थी।"

कान्ता आश्चर्यपूर्वक देखती रही।

"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कान्ता! मेरी आंखों के सामने परदा था। मुझे मान और मरतबा चाहिये था–नहीं तो भला ऐसा भी हो सकता है–मेरे जैसा खादी-भक्त इन्दु को विलायत भेजे?"

"पर वे तो अपनी ही इच्छा से गये हैं न?" सुमन बोला।

"उसे इच्छा जैसी वस्तु है ही नहीं सुमन! इच्छा मेरी ही थी। मेरी इच्छा थी–वह बेरिष्टर बने और मेरा मान मरतबा बढ़े।"

गाड़ी निंगाला स्टेशन पर आई। दरवाज़ा खुला और एक फटे चिथड़ों में लिपटा व्यक्ति दाखिल हुआ। शायद चमार हो।

वह डर-सा गया। गाडी चलने को थी—वह झिझक रहा था आवे—न आवे।

"आ जाओ। आ जाओ। गाडी चलदेगी" उस व्यक्ति को भीतर खेंचते हुए प्राणजीवनदास बोले।

चालीसेक वर्ष का वह मनुष्य, उसकी स्त्री और उसके दो बच्चे ऊपर चढ़ आये। वे दरवाज़े के पास ही नीचे सिकुड़ पिकुड़ बैठ गये।

"यहां—बैठो—बहिन" कान्ता ने कहा।

"नहीं—माशा! यहीं ठीक है" वह बोली।

सुमन और प्राणजीवनदास ने आग्रह जारी रक्खा—वे दोनों बालक और स्त्री ऊपर बैठ गये। स्त्री आनंद में आ बोली—

"गांधीजी के पंथ के हो आप सब—माशा?"

उसबे डिब्बे के मनुष्य इस विचित्र दृश्य को देखते रहे।

प्राणजीवनदास ने देखा—स्त्री के पास डेढ साल का बच्चा है—चारेक वर्ष की लड़की—कपड़े मैले गंदे—बास मारते हुए।

"तुम लोग कपड़े वगैरह साफ नहीं रख सकते?" प्राणजीवनदास ने धीरे से पूछा।

जवाब देने के बदले वे लोग घूर घूर कर देखने लगे।

"भावनगर जाना है?" फिर प्रश्न आया।

"हां। वहां रोटी मिल जाय तो वहां—नहीं तो जहां भगवान ले जाय वहां।"

"कहां के हो ?"

"सुल्तानपुर ।"

"वहां काम धंधा नहीं मिलता ?"

"वहां अगर काम मिलता-त इस तरह दर दर भटकते क्यों ?" मर्द ने कहा ।

"दो दिन से पेट में कुछ नहीं पड़ा है" स्त्री बोली "मेरे तो यह बच्चा है-इससे कुछ मुझे तो मिला है । एक टिक्कड जितना इतना चून था जी ! भीख मांगकर कहां तक निभ सकता है । एक टुकड़ा मैंने खाया-एक टुकड़ा इस लड़की को दिया-एक टुकड़ा अभी और पड़ा है-पर मैं देती हूं-पर ये खाते ही नहीं ।"

प्राणजीवनदास ने अधिक न पूछा । मर्द की धसी हुई आंखें उन्होंने देखीं । लड़की और उस बच्चे का गला हुआ शरीर देख प्राणजीवनदास सहम गये ।

"टिकिट कैसे ली ?" सुमन ने धीरे से पूछा । कान्ता अनुकम्पा से यह सब देख रही थी ।

"टिकिट ? टिकिट तो साब ! ए-इन माष्टर साब की महरबानी । हाथ पैर जोड़ बैठ गये हैं ।"

प्राणजीवनदास के मन पर इस दृश्य की असर अचूक हुई । जेब में हाथ डाल-बटवा टटोला-कुछ विचार आते वे अटके ।

कुछ देर बाद दो रुपये निकाले । उस मर्द को देने लगे-उसने इनकार किया । अन्त में बहुत कहने पर उसने लिये । पुरुष और स्त्री के मुख पर आनंद छा गया ।

प्राणजीवनदास ने दो रुपये दिये तो सही पर शान्ति न मिली। त्याग की मात्रा बढ़ने लगी। अब सब छोड देना चाहिये—उनका मन बोल उठा।

"कान्ता!" वे बोले, "अब तो सब छोड़कर जीवन सार्थक करने का मन होता है!"

कान्ता खिल उठी।

"मै तो कहती हूं पिताजी! गांव के दुःख देखकर आप का दिल तो पिघल ही जांय! आपको अवश्य आना चाहिये।"

"देखा है बहिन! सब कुछ देखा है। ये धन दौलत जो कुछ है पास—सब इन्हीं गांवों से आया है बेटी! अब तो..."

कान्ता पिता का मुंह—निर्मल मुंह—देखती रही। ज्यों ज्यों विचार करते थे—दृढ विचार होता जाता था—अब सब छोड़ देना चाहिये—बहुत दिन तक झंझट की—अब तो भगवद्भजन किया जाय।

सुमन स्तब्ध-सा प्राणजीवनदास की ओर देखता रहा। उनके मुख पर विराजमान निर्मल हृदय के प्रतिबिंब को वह देख सका।

भावनगर तक कोई कुछ न बोला। वह चमार कुटुंब भी शान्त था—और बालक भी शान्त था—मानों वह भी यह सब कुछ समझ गया हो।

३८

कान्ता की प्रेरणा

सुमन के मन में अब विचार उठने लगे। रामपुर जाना ही सच्चा मार्ग है—वह सोचता था—किन्तु मन की दुर्बलताएं जागने लगीं और अनेक शंकाएं उठाने लगीं। किन्तु प्राणजीवनदास के परिवर्तन ने सुमन को खूब बल दिया।

घर आ सुमन ने माता के पास दिल खोलकर बातें कीं। सुमन की बातें सुन उन्हें इतना आश्चर्य न हुआ जितना आश्चर्य हुआ प्राणजीवनदास के परिवर्तन के समाचार सुनकर। पहिले तो वे इस बात को मानने के लिये तैयार न हुई किन्तु जब सुना कि दो चार दिन में ही सब छोड़ वे गांव चल देंगे—तो उन्हें मानना पड़ा।

"मां। हम भी रामपुर चलें तो?"

"ना भई। मुझे रामपुर नहीं जाना।"

"तो मैं जाऊं?"

"तो फिर मैं कहां रहूं?"

"तुम भी चलो न मां! तुम्हें वहां कोई तकलीफ न पड़ने दूंगा।"

"तू मुझे दुःखी क्यों करने लगा बेटा ?"

सुमन अधिक न बोला—माता की आंख में आंसू थे।

"तो मुझे जिंदगी किसीके भरोसे—किसीके टुकड़ों पर—बितानी पड़ेगी क्यों ?

"मैं ऐसा थोड़े ही कहता हूं मां ?"

"तू जा—तो फिर मुझे चचा के घर ही जीवन बिताना पडे न ?"

"पर तुम मेरे साथ चलने से क्यों इनकार करती हो ? मेरे साथ ही क्यों न चलो ?"

"तू मेरा कहा नहीं मानता कि मैं ? रामपुर आकर मैं क्या करूं ? कल तुम सब जेल चले जाओ-फिर मेरा कौन ?"

"पर अभी जेल में जाना ही कहां है ?"

"अभी नहीं तो—साल दो साल बाद! और सबसे प्रथम गिरफ्तार होगा तो तू होगा। फिर मैं किसके घर जाऊं ?"

"तो मैं क्या करूं मां ?" सुमन बोला।

"तुझे ठीक लगे वह कर भैया। तुझे हमारी बात तो सुननी नहीं—फिर क्या ?"

बात आगे न बढ़ सकी। थका-सा सुमन कान्ता के घर पहुंचा। वह किसीको पत्र लिख रही थी। सुमन को देख—दावात कलम एक ओर रख दिये।

"किसे लिखती थी कान्ता?"

"विनुभाई को।"

"अनंत को लिखा?"

"मुझे होता है अब क्या लिखूं?"

"क्यों?

"अनंतभाई–हमारे–अब नौकरी करते होंगे। पत्र पाते वे शरम के मारे गड़ जायंगें। होता है जाऊं–बंबई और उनके सामने खड़ी रहूं। कैसा परिवर्तनशील जीवन है? अनंतभाई टिक न सके। कितनी आशा बांधी थी मैंने उन पर?"

"कान्ता! पिताजी न समझे होते–तो तुझे बहुत सहन करना पड़ा होता न?"

"ठीक है। पर मुझे डर है–मुझ में ही शक्ति की कमी थी–ये डेढ वर्ष मैंने फिजूल ही बिताये हैं।"

"क्या करती?"

"जो अब करूंगी। लड़ाई के बाद मैं घर आई ही क्यों? मुझे प्रश्न उठता है। मैं अब तक सोच रही थी–मैं कुछ नहीं कर सकती। और अनंतभाई–जिनके सहारे मैंने जीवन का साहस लेहा वे–ही इतने निर्बल साबित होंगें–मैंने कभी न सोचा था।"

"पर तुझे उनका खुद का विचार नहीं आता?"

"आता है। दिये की तरह स्पष्ट है फिर भी शंका उठती है। जानती हूं–अनंतभाई की रगरग में स्नेह-प्रेम भरा है–वे

बंबई रह ही कैसे सकते हैं सुमनभाई ? मैं सोचती हूं-माता के देहान्त से-वे भावनाशील बन गये होंगे। नहीं तो भला ऐसा हो सकता है ?"

"मुझे भी यही होता है। पर इससे ही अनंत नौकरी के लिये तैयार हो जाय-यह बात मानने में नहीं आती। अधिक हो-पिता के पास चार छह महीने रह जाय। मुझे तो लगता है अवश्य कुटुंब की आर्थिक स्थिति अत्यंत निराशाजनक होगी।"

"कुटुंब की स्थिति वैसी ही होगी-मानती हूं। अपने अनेक राष्ट्र-सेवकों की स्थिति ऐसी ही थी-पर अनंतभाई ही कहते थे-सारे राष्ट्र का विचार हो उस समय हम कुटुंब का विचार ही कैसे कर सकते हैं ? और आज वे ही-अनंतभाई-बंबई पहुंच गये है-नौकरी करने !"

"कान्ता ! पर तेरा मार्ग अब सरल हो गया।"

"सरल ? सरल कैसे ? सब से बड़ी कठिनता तो अभी खड़ी ही है ?"

"कौन-सी ?"

"स्वराज्य की।"

सुमन ने इस जवाब की आशा न रक्खी थी।

"अब तो-कहां काम करना-क्या करना-ये ही प्रश्न सामने आने वाले हैं। पर इसकी अधिक चिन्ता नहीं। काम करना है-संगीन काम करना है-स्वराज्य प्राप्ति जल्द हो-यह काम करना है।"

"तू कहां जायगी ? रामपुर ?"

"रामपुर नहीं। विनुभाई वहां काम करते हैं–करें। न तो वे भी रहें। मै तो अमृतपुर जाने का विचार कर रही हूं।"

"वहां क्यों?"

"मैं वहीं से दो बार गिरफ्तार हुई हूं न!"

"पर वह तो रामपुर से बहुत दूर है।"

"कोई हर्ज नहीं।"

"पिताजी क्या करेंगे?"

"शायद मेरे साथ आवें।"

"तो तो ठीक है। नहीं तो तू अकेली कैसे रह सकती है।"

"अब तो अकेला ही रहना है। जीवन के विकट मार्ग पर जिसका साथ लिया था–वह तो मुझसे भी निर्बल निकला। अब ता होता है अकेले ही जीवन बिताना और अकेले ही जीवन–संग्राम में झूमना।"

"कान्ता!" सुमन बोला, "मेरी मां तो मानती ही नहीं।"

"वे कभी न मानेगीं।"

"पर उन्हें छोडकर कैसे आ सकता हूं कान्ता?"

"हमें तो दुखियों की सेवा करनी है न सुमनभई! अगर माताजी अधिक दुःखी हैं–उनकी ही सेवा करो।"

सुमन चुप था।

"मां तो कभी न मानेगीं–ऐसा लगता है। चंद्रा के ठीक होते ही–मैं उसे लेकर चला आऊंगा।"

"चंद्रा भाभी भी न मानीं तो ?" कान्ता ने सुमन की ओर देखकर कहा ।

सुमन जवाब न दे सका ।

"तो न आ सकोगे क्यों ? मां को छोड़ा जा सकता है–पर पत्नी को थोडे ही ? सुमनभाई ! माता पिता के सामने बलवा खड़ा करनेवाले युवक लोग यहां क्यों ढीले पड़ जाते हैं भला ? पत्नी को नहीं छोड़ा जाता न !"

"पर वह बिचारी कहां जा सकती है ?"

"तो मां कहां जा सकती हैं ?"

"किन्तु चंद्रा को उसकी इच्छा विरुद्ध गाम में ले जाना–क्या यह बलात्कार नहीं ?"

"मैं उसे ले जाने की कहां कहती हूं ? अगर वह न आना चाहे उसे मत ले जाओ। किन्तु उसके कारण कर्तव्य कैसे छोड़ सकते हो ?"

सुमन उत्तर न दे सका ।

"हम लोग बहुत ही परिस्थिति के गुलाम हैं–मुझे प्रतीत होता है। कोई भी सजीव या निर्जीव वस्तु से अधिक कीमत जब हम सेवा की समझें तब ही हम सच्ची सेवा कर सकते हैं; अन्यथा नहीं। मुझे अत्यंत आश्चर्य होता है सुमनभाई ! पर जब अनंत जैसे लोग भी डिग सकते हैं तो किससे क्या कहूं ? हम लोग स्वराज्य लेने निकले थे। मुझे डर लगता है–मेरी नाद सुनकर हम उस समय पागल-से हो गये थे–अब नशा उतर गया।"

सुमन को अनंत के शब्द याद आये ।

"कान्ता ! अनंत जब यहां आया-इसी प्रकार बोलता था ।"

"पर मैं उनकी तरह बंबई न चली जाऊंगी-यह याद रखना ।"

"मैं यह नहीं कहता । मुझे तो अनंत की याद आती है। सच कहता हूं-अनंत वहां कैसे रहा होगा ? रह सकता है ? कान्ता तू एक समय वहां न हो आ ? तूझे देखते ही उसकी तमाम दुर्बलता काफूर हो जायगी ।"

"मुझे भी यही होता है । किन्तु मेरा वहां जाना उचित है या नहीं-यही मैं अभी तय न कर पाई । कभी होता है-अनंत भाई मेरे प्रियजनों में से एक रहे हैं-उन्हें चेताना-भूलते हुए अटकाना यह मेरा धर्म है । फिर होता है अगर इतनी साधना के बाद भी अगर यह दशा है-तो यही ठीक है-रहने दो । उन्हें सूझेगा आप चले आंयगे-नहीं तो जैसा जीवन बिता रहे हैं-वैसा ही ठीक है ।"

"कान्ता ! अगर तू आने को तैयार है-तो मैं भी तैयार हूं । हम एक दफे चलें । अनंत को जागते देर न लगेगी ।"

"नहीं । जाना नहीं है । और जाऊंगी तो अकेली ही जाऊंगी । उसी समय उनका सिर ढल जायगा-खून उबल उठेगा । सुमनभाई ! पर मैं चाहती हूं तुम एक निश्चय पर तो आ जाओ । अधिक सोचना छोड़ दो । एक समय तय कर लो-जीवन का ध्येय एक है-वह स्वराज्य प्राप्ति-फिर आसपास का देखा जायगा ।"

सुमन का बंबई जाने का विचार शिथिल हो गया । उसे लगा कान्ता ठीक कहती है। उसे अब निश्चय कर लेना चाहिये ।

"कान्ता मैं अब निश्चय कर लूंगा।"

कान्ता सुन रही थी।

"मैं तलाजा हो आऊं और एक वक्त चंद्रा से बातचीत कर आऊं। अब उसकी तबियत ठीक हो गई होगी।"

कान्ता अब भी चुप थी।

"मेरा निश्चय फिर जायगा-तू सोचती है न ?"

"संग्राम में मैं तुम्हें एक बहादुर सैनिक की तरह पहचानती थी। किन्तु घर आने के बाद तुम इतने नर्म हो गये हो कि मैं मान भी नहीं सकती-सोच भी नहीं। अपनी आखों के सामने तुमने यह सब देखा है पर फिर भी अब तक निश्चय नहीं कर सके हो !"

सुमन शरमा गया।

"कान्ता अब मेरा निश्चय न फिरेगा।"

कान्ता ने सुमन के मुख पर की दृढता देखी।

कुछ देर बाद सुमन बोला-गंभीर आवाज़ से-

"मैं जाता हूं।"

"फिर आओगे न ?"

"हां। अब सब निश्चय कर के ही आउंगा।"

कान्ता देखती रही-सुमन गंभीर मुख से चलदिया। कान्ता को सुमन इस समय तेजस्वी दिखाई दिया।

३९

प्राणक्षय

अनंत मानों कोई नई ही दुनिया में आ पड़ा। गोरधनदास शेठजी की पेढ़ी में एक क्षण की भी शान्ति नहीं। चारों ओर से शोरगुल और हो हल्ला। सुबह से शाम तक लाखों का लेन देन। दो एक दिन तक तो मूर्ख की तरह अनंत यह सब दृश्य देखता रहा। उसे होने लगा—मानों उसकी तमाम विचारशक्ति—तमाम मंथन—डूब गया हो और उसकी बुद्धि भी मानों नष्ट हो गई हो। गोरधनदासजी ने अनंत की शक्ति को परखा और इस लिये अपने खास आदमी के पास हीरे परखने की विद्या सिखाने उसे नियत किया। सोना चांदी की झंझट में उसे न पड़ने दिया।

राजकोट से पिताजी के पत्र रोज आते थे—जिस में कूट कूट कर प्रेरणा भरी हुई थी—बेटा खूब कमावे और होशियार हो जावे। अनंत पत्र पढ़ता—जेब में रख कुछ भी विचार किये बिना काम में लग जाता।

अनंत विचार न करता—करने बैठता तो हिसाब में हजारों की भूल आ जाती। रात होते होते वह थक जाता और लोथपोथ हो वह सो जाता।

दस बारह दिन इसी प्रकार बीत गये। अनंत दिनुभाई के घर न गया था—न फोन ही किया था। धीरे धीरे उसे अपना काम सूझने लगा—और ज्यों ज्यों वह काम में मशगूल रहने लगा—मन का बोझा कमती होने लगा।

पंदरह दिन बाद—आज अमावस्या आई। उस दिन काम जल्दी ही खतम हुआ। पेढ़ी के लोग बाग घूमने चलदिये। इन दिनों में पेढ़ी के दो-चार लोगों से उसकी घनिष्ठता बढ़ी थी—उन्होंने अनंत को आमन्त्रित किया। किन्तु अनंत अकेला ही घूमने जाना चाहता था। कुछ देर बाद वह मरीन लाइन्स की ओर चलदिया। संध्या का समय था। मनुष्यों की मेदिनी मानों उलट पड़ी थी। किसी की ओर ध्यान दिये बिना अनंत कोलाबा की ओर चल दिया।

संध्या डूब गई, और रात आई। अनंत इतने दूर निकल गया था कि मनुष्य का नामोनिशान नहीं। अनंत समुद्र की पक्की चारह दीवारी पर बैठ गया। आकाश में असंख्य तारागण खिल उठे थे। समुद्र पर से वायु की मधुर लहरें आ आकर अनंत के बालों से खेल रहीं थीं।

बंबई आने के बाद अनंत आज ही अकेला पड़ा था। आज ही सुंदर आसमान के नीचे सागर के सान्निध्य में बैठा था। आज ही इतनी खुशनुमा हवा का सेवन किया था।

चलते चलते अनेक विचार आये और गये—किन्तु ज्योंहीं शांति से बैठा—मनःप्रदेश की कंदरा मानों खुल गई। कोलेज—जीवन से लेकर—आज दिन तक की तमाम बातें उसके सामने आ गई। संग्राम के चार वर्ष—उसके अनेक मधुर स्मरणों सहित समुद्र के

वक्षःस्थल पर खड़े हुए । युद्ध के बंद होते समय का हृदयमंथन, रामपुर निवास, विनु और कृपेश–दिखाई दिये–प्राणवान् तेजस्वी कान्ता खड़ी हुई–और उसका सिर लज्जा से ढल गया । जेब में पड़े हुए पिता के पत्र दिखाई दिये–पर पिता की मूर्ति सामने न आई । अंग पर पहना हुआ सफेद बंध कालर का झवेरियों की पेढ़ी योग्य कोट, धोती और कोकटी खादी की पहनी हुई टोपी दिखाई दी, पर पेढी दिखाई न दी । उसे लगा मानों कोई अजीब मुसिबत में आ पड़ा है–किसी भयंकर निर्जन प्रदेश में आ पड़ा है ।

बैठा रहा । रात के बारह बजे तक बैठा रहा । आसपास का वातावरण बिलकुल शांत हो गया तब तक बैठा रहा । समुद्र के फेनिल तरंग देखे । चारह दीवारी की चट्टानों से पछाड़ खाते हुए सागर के मौजे देखे । उस अगाध–विस्तृत काली जलराशि को देखा । आकाश में टिमटीमाते असंख्य तारकों देखे–उसे लगा–मानों अकेला–निस्सहाय वह कोई अरण्य में आ पड़ा है ।

क्या करूं ? कहां जाऊं ? जीवन एक बोझा प्रतीत होता है–अनंत बोला–भाग जाऊं ? रामपुर चला जाऊं ? यहां नहीं रह सकता–यह जीवन है ?–अनंत को अपने जीवन के प्रति तिरस्कार आने लगा ।

रात के दो बजे तक अनंत बैठा रहा । थके हुए पैरों से–डोलता हुआ तीनेक बजे वह अपने मुकाम पर आया । पेढी पर अपने जैसे अनेक गुमाश्ताओं को सोता हुआ देखा । अपना बिस्तर बिछा–पास ही वह भी लेट गया, और निद्रावश हो गया ।

सुबह उठा–और रात के विचार भी जागे । आसपास मच गया था–वही कोलाहल–शोरगुल । सब अपने काम में लग गये

थे । वह भी उठा । यंत्रवत् प्रातःकार्य निमटाया । दूध पीया और नो बजे अपने काम पर हाज़िर हुआ । मुंह पर उदासीनता व्याप्त थी । किसी ने पूछा "ठीक नहीं ?" अनंतने–कहा "हां सिर दुःख रहा है ।" जहां रात को सोया था वहां आया और दरीपर लेट गया ।

चेन न पड़ा । उठा । अपनी बेग में से पेढ़ी के शिरोनामे वाला पत्र निकाल लिखने लगा–

प्रिय विनु,

क्षण क्षण पर मेरी मृत्यु हो रही है । यहां किसीको फुरसद नहीं अपना जीवन देखने की या इसपर विचार करने की । अविरत गति से दौड़ी जती हुई किसी गाड़ी में मानों सब बैठे हुए हैं–दौड़े चले जा रहे हैं । मैं भी बैठा हूं इसी गाड़ी में– जानता नहीं कहां चला जा रहा हूं–कहां चला जाऊंगा ।

विनु ! अनंत का कुछ दिनों में मृत्यु होगा । हां, मेरा कंकाल अवश्य संसार में फिरता होगा–घूमता होगा । ऐसे करोड़ों कंकालों को चलते फिरते मैं देखता हूं । और उन्हीं लोगों की भाँति मेरा आत्मा क्षण क्षण पर मृत्यु के पथ पर बढ़ता चला जा रहा है ।

क्या लिखूं तुझे ? यह सब मेरे ही किया हुआ है । अब भी होता है इस को फेंक दूं–विनु–किन्तु माता के मृत्यु के कारण दुर्बल पड़ा हुआ हृदय दिन–बे–दिन दुर्बल पड़ता जा रहा है । कुछ दिनों में वह नितान्त दुर्बल हो जायगा–सत्त्वहीन हो जायगा और अनंत अंतिम सांस लेता हुआ–लय होगा–सदैव के लिये विलीन होगा ।

अनंत

अनंत ने पत्र लिखा। पढा। हंसा। कुछ देर बाद पत्र को फाड़ कर फेंक दिया। शाम के चार बजे तक उसी दरीपर–उसी स्थलपर वैसे ही पड़ा रहा। किसी ने भोजन की याद दिलाई तो कह दिया "भूख नहीं।" चार बजे नीचे गया–फिर ऊपर आया, और लेट गया।

रात को शेठजी खुद ऊपर आये। अनंत उठ बैठा।

"क्यों? आज ठीक नहीं?"

"इस समय ठीक है।"

"दवा ली?"

अनंत ने सिर हिलाया।

"देखो। यह बंबई है। ठीक न लगते ही दवाई ले लिया करो।"

अनंत सुनता रहा।

"बिलकुल ठीक न हो जाओ तबतक आराम करना। समझे?" शेठजी ने कहा और चल दिये।

शेठजी के जाने के बाद अनंत ने फिर पत्र लिखना शुरू किया। थकावट लगने लगी। दो लकीर लिख फिर दरीपर लेट गया।

४०

भयंकर बीमारी

अनंत जब सुबह उठा तो उसे लगने लगा मानों सारी चेतना उसमें से नष्ट हो गई है। कल तक तो हृदय-मंथन की—मन की ही बीमारी थी—आज तो शरीर की भी दिखाई देने लगी। निश्चेष्ट की भांति बिस्तर पर पड़ा रहा।

अनंत के शरीर को दोष कैसे दे सकते हैं ? रामपुर छोड़ने के बाद भूख और अनिद्रा तो हुई ही थी—किन्तु मानसिक शक्ति पर तो अत्याचार ही हुआ था। दुःख, परिताप, हृदय-व्यथा और मनोमंथन ये तो नित्य के साथी बन गये थे। उसका वज्र जैसा हृदय आज पोपला हो गया था। एक ही आघात की आवश्यकता थी—और वह आघात आया। उसका शरीर मानों छिन्नभिन्न-सा होने लगा।

दसेक बजे अनंत को बुखार आया। सारा शरीर तवे की भाँति तपने लगा। सिर फटने लगा। आंखें लाल लाल हो गईं। पेढी का काम शुरू हो गया था—इससे अनंत अकेला ही था। बारह बजे तक वह बिस्तर में पछाड़ें खाता रहा। वेदना असह्य हो पड़ी।

बारह बजे पेढी का एक आदमी दवाई के लिये आया। अनंत ने मना कर दिया। उसे काम था; अतः चल दिया, और नौकर से कहता गया कि संभाल रक्खे। अनंत ने उस बूढ़े नौकर की ओर देखा। रामा हाथ में छोटा-सा एक अंगोछा पकड़े खड़ा था। उसके मुख पर न था दुःख, न थे कुछ भाव।

एक बजे के करीब नीचे से खबर आई कि अनंत के नाम टेलीफोन आया है। उठने की शक्ति न थी–फिर भी जैसे तैसे नीचे पहुंचा। फोन हाथ में लिया। दिनुभाई थे। अनंत ने अपनी बीमारी के समाचार दिये-और ऊपर आ बिस्तर पर लेट गया।

पंदरह मिनिट बाद दिनुभाई आये। मुखपर चिंता स्पष्ट दिखाई देती थी। दिनुभाई आते ही अनंत के भाल पर हाथ रक्खा। बुखार की मात्रा अधिक देख घबरा-से गये। थरमामीटर मंगवा देखा तो एक सो पांच।

"अनंत! मेरे साथ आयगा?"

अनंत ने इनकार किया "यहीं ठीक है। शाम को उतर जायगा।"

"नहीं। ऐसे नहीं उतरेगा। पंदरह दिन में कैसा हो गया है। अपना शरीर तो देख। कितने दिनों से बुखार आता है?"

"कल कुछ ठीक न था। बुखार तो आज दस बजे से ही।"

"अब घर चल। यहां के शोरगुल में और गंदी में तू कभी अच्छा नहीं हो सकता। मैंने तो तुझे उसी दिन कहा था कि मेरे घर पर ही चल। पर माने तब न! तेने फोन किया था?"

"मुझे तो दूसरे ही दिन सूरत जाना पड़ा था। कल ही आया। मैंने आकर तेरी तलाश की थी—पर कुछ समाचार न मिले।"

"सुशीला बहिन कहां हैं?"

"सूरत।"

अनंत फिर चुप रहा।

"तू यहां नौकरी करता है?"

"हां" धीरे से अनंत ने कहा।

"तू इसी समय मेरे घर चल। मैं मोटर लेकर ही आया हूं। नीचे किसीसे पूछना है?"

"पर बुखार तो उतर जायगा। एक दिन के बुखार में..."

"बुखार उतर जाय तब चला आना। मना कौन करता है? मैं नीचे कह आता हूं।" दिनुभाई ने खड़े होते हुए कहा।

कुछ देर बाद दिनुभाई और गोरधनदास शेठ ऊपर आये।

"अनंत!" शेठजी बोले, "कल दवाई न ली न! बंबई में तो तुर्त ही उपाय करना चाहिये। अब तुझे जाना हो—तो इन भाई साहब के साथ चला जा। बुखार उतरने के बाद भी आराम करना। काम तो चलता ही रहता है। समझा अनंत!"

अनंत सुनता रहा। गोरधनदास शेठ के जाने के बाद अनंत उठा और दिनुभाई के साथ नीचे आया। मोटर में बैठते बैठते उसने कहा "मेरा सामान यहीं रहने दें?"

"लेना हो तो ले लें।"

"हां हां। ले लें।"

ऊपर जाकर दिनुभाई अनंत की बेग ले आये। उसका बेडिंग वगेरह बाकी ऊपर पड़ा था–पर अनंत कुछ न बोला। दिनुभाई के नीचे आते ही उसने पूछा–

"तुम्हारे वहां कौन कौन हैं?"

"कौन कौन मानी? सब हैं। माताजी–अभी बहिन भी आई है।"

बातें करते करते वालकेश्वर आन पहुंचे। बंगले के नजदीक आते ही फाटक खुला। मोटर अंदर दाखिल हुई। तीन वर्ष पहले जब अनंत यहां आया था–अनंत को यहां का वैभव–विलास चुभा था–आज कुछ विचार हृदय में न थे।

एक सुंदर स्वच्छ कमरे में पलंगपर अनंत का बिस्तर लगाया गया। अनंत लेटा और कुछ देर बाद दिनुभाई एक डोक्टर के साथ भीतर आये।

डाक्टर ने परीक्षा की, और आराम लेने की तथा चिंता न करने की सूचना दी। दवाई आई–फल आये–पीकदानियां आईं–और देखते देखते उसके आसपास सब जम गया।

"दिनुभाई! इन सब की क्या जरूरत है?"

"बंबई में इन सब की आवश्यकता है। यह रामपुर नहीं।"

अनंत दिनुभाई की ओर देखने लगा–वे मजाक कर रहे थे।

शाम को बुखार उतरा। सारी रात अनंत खूब सोया। दिनुभाई उसी के पास सोये। सुबह उठते ही स्फूर्ति लगने लगी। हाथ-मुंह धोने उठा तो कहा गया "न! डाक्तर साहब ने फरमाया है कि शौच के लिये भी न उठना।"

"वाह! भई। यह तो कैद है।"

हंसते हंसते दिनुभाई ने दातन दिया। सब से फारिक हो दवा के बाद मोसंबी का रस दिया गया।

नो बजते बेचेनी मालूम होने लगी। दस बजे फिर बुखार आ गया। कल जितनी ही वेदना। दिनुभाई ने सिर पर बर्फ की थैली रक्खी। शाम तक बुख़ार कमती न हुआ। शाम को डाक्टर साहब पधारे।

तीसरे दिन भी ऐसे ही रहा। दिनुभाई को चिंता होने लगी। अनंत भी घबराने लगा।

चोथे दिन सुबह जब अनंत अपने खाट में लेटा हुआ था, उसने दिनुभाई को अपने पिता के साथ बातें करते सुना।

"मुझे आपकी जायदाद में से कुछ न चाहिये। सब प्रभाकर को दे दीजिये।"

"वह सब जवानी के जोश में बोल रहे हो बच्चाजी! फिर याद पड़ेगी।" दिनुभाई के पिताजी बोल रहे थे।

अनंत अधिक न समझ सका। मात्र इतना ही समझा कि दिनुभाई अपने पिता की इच्छा विरुद्ध कहीं जाना चाहते हैं।

दिनुभाई के आते ही पूछने की इच्छा हुई पर अनंत चुप रहा। भीतर आते ही उन्होंने अनंत के हाथ में दो पत्र रक्खे। दोनों पत्र पिताजी के थे। पत्र में कुछ खास न था।

नियमानुसार न बजे बुखार फिर शुरू हुआ और पांच बजे तक न उतरा। छ बजे भी उतना ही रहा। दवाई चालू थी—पर फ़र्क कुछ न था। डाक्टर ने आकर शरीर देखा—मुख पर चिन्ता के चिह्न थे।

"तुम देश में नहीं जा सकते?" डाक्टर ने अनंत और दिनुभाई की ओर देखते कहा।

"क्यों?"

"आराम तो हो ही जायगा—पर देश जाओ तो बिना दवा आराम होगा। इन्हें शांति और आराम की ही आवश्यकता है। गांव में अगर रहा जाय तो सब से अच्छा।"

डाक्टर के जाने के बाद अनंत से पूछा—

"सुबह किसका पत्र आया?"

"पिताजी का।"

"तेरी बिमारी का पता है उन्हें?"

"न। उन्हें इत्तला देने की भी आवश्यकता नहीं। फिज़ूल चिंता करेंगे।"

"पर अब तो तेरी बीमारी बढ़ती ही जाती है।"

"डाक्टर ने हवा तबदीली के लिये कहा न?"

"हां । क्यों ? रामपुर चलेंगे ?" दिनुभाई ने पूछा ।

"रामपुर ?" अनंत सोचने लगा ।

"हां । डाक्टर की सलाह है—गांव में जाना बहतर होगा। वहां शांति और आराम दोनों भली भाँति मिल सकते हैं ।"

अनंत बोला नहीं । उसके मुख पर चिन्ता का बादल छा गया ।

उस दिन रातभर बुखार रहा । दिनुभाई ने बर्फ घिसना जारी रक्खा । पांच बजते बजते बुखार कमती हुआ, और अनंत के नेत्र मुंद गये ।

४१

स्वराज्य के साधक

सुमन के जाने के बाद कान्ता ने विनु को पत्र लिखा। पत्र खतम होते ही प्राणजीवनदास बहार से आये। कान्ता ने पत्र पिता के हाथ में दिया। प्राणजीवनदास ने पत्र पढ़कर कहा।

"आठ दस दिन बाद जाने का रख तो!"

"एक दिन भी अधिक ठहरने से फायदा?"

"तेरे रहने से मुझे कितनी शान्ति मिलती है—कान्ता!"

कान्ता चुप रही। पिता के शब्दों में इतनी ममता और प्रेम भरा हुआ था कि कान्ता जवाब न दे सकी।

"कान्ता!" कुछ देर बाद प्राणजीवनदास बोले, "मैंने निश्चय कर लिया है कि मेरी जायदाद की एक एक पाई देश के हित के लिये इस्तमाल की जाय; और इस काम का बोझा मैं तुझे सौंपता हूं।

कान्ता देखती रही—वे बोलते चले जा रहे थे।

"इन्दु की मुझे चिंता नहीं कान्ता! वह पच्चीस वर्ष का जवान है। आज दिन तक मैंने उसे पाला है पोषा है—अनेक

लाड लड़ाये हैं–पर वह मर्द है–वह कमा सकता है–धरती को चीर अपना हिस्सा पैदा कर सकता है। मेरी फर्ज मैंने अदा की। उसे पढ़ाया लिखाया–अब उसे मेरी जायदाद की क्या आवश्यकता है?"

प्राणजीवनदास के शब्दों में स्पष्टता तो थी ही, किन्तु अब तक न देखा हुआ धैर्य और माधुर्य भी था। कान्ता के आनंद का पार न था।

"अब क्या करोगे पिताजी?"

"मेरी तो इच्छा है आज ही रामपुर या और किसी गांव में चल दें, किन्तु अभी बीच में अन्तराय है–उन्हें निकाल फेंकना होगा। चार छः महीने में, अपना तमाम व्यवसाय बटोर लेना चाहता हूं। हालांकि, आज ही सब छोड़ सकता हूं–पर यह अच्छा नहीं। मैंने अपने रिश्तेदारों को–व्यापारियों को सबको सूचना दे दी है। चारों ओर से सुन रहा हूं मैं पागल हो गया हूं पर मैं इसकी परवाह नहीं करता। शायद यह पागलपन ही अच्छा है।"

कान्ता पिता पर मुग्ध हो गई। उसने विनु के पत्र में लिखा–वह दसेक दिन बाद आवेगी।

दस दिन कान्ता भावनगर में रही। सुमन तलाजा गया हुआ था, अतः कान्ता अधिक पिता के सहवास में ही रहती। दस दिन में एक घटना घटी। उसने पिता पुत्री दोनों को शान्ति दी। पोरबंदरवाले युवक महाशय की सगाई प्राणजीवनदास के किसी रिश्तेदार की पुत्री से हो गई। कुछ दिन तो शहर में अनेक गप्पें उड़ीं–किन्तु प्राणजीवनदास के निश्चय और त्यागवृत्ति की कहानी ने इन आशंकाओं तथा टीकाओं के बादलों को उड़ा दिया।

उस दिन जब कान्ता रामपुर के लिये चल दी तो भावनगर के अनेक संस्कारी लोगबाग उसे बिदा देने के लिये स्टेशन पर हाजिर हुए। कान्ता को याद आये वे दिन जब वह बहिनों के एक काफले के साथ सत्याग्रह में जुटने के लिये चली थी और इसी प्रकार अनेक लोग उसे बिदा देने को स्टेशन पर जमा हुए थे। कहां वे दिन–कहां आज!

जब गाड़ी चलदी, प्राणजीवनदास की आखें छलछला आईं। कान्ता के नेत्रों से भी आंसू बहने लगे। बिदा देने वाले सब के हृदय करुणा से भर गये।

शाम हो चुकी थी जब रामपुर जाने वाले स्टेशन पर कान्ता उतरी। तीव्र गति से वह रामपुर की ओर चलदी। धूल से ढकी हुई कच्ची सड़क थी–वह उसपर सरपट चली जा रही थी–चलने से धूलि उड़ती थी। कान्ता ने आसपास देखा–राह पर कोई नहीं। उसे अनंत याद आया। धोती और खादी के कुरते में सज्ज हास्य करता हुआ अनंत का चहरा नाचने लगा–नेत्रों के सामने। कान्ता के मुख से एक निःश्वास निकल गया। इच्छा हुई बंबई जा अनंत को लौटा आय।

रात्रि का गाढ अंधकार चारों ओर व्याप्त होने लगा। गांव की हद में वह आन पहुंची। सारे गांव पर शांति का साम्राज्य छाया हुआ था। कान्ता की कल्पना सतेज हो उठी–उसे अनंत की अधिकाधिक याद आने लगी।

"तो आखिर अनंत ने रामपुर छोड़ा ही" वह गुनगुना उठी। कान्ता गांव की सीम पर ही खड़ी रही। चारों ओर देखा।

भादर नदी कल कल करती हुई बहती चली जा रही है। किनारे पर वृक्षों के झुंड खड़े हुए हैं। पास ही एक शिवमंदिर खड़ा है।

कितना सुंदर गांव है! वह सोचने लगी—पर यह सूनापन क्यों? आज यहां अनंत होता तो? साथ साथ कार्य करने में कितना आनंद आता!

कान्ता ने अधिक खड़ा रहना उचित न समझा। गांव के रास्ते से परिचित थी। चल दी और गांव के बडे मंदिर पर आ पहुंची। मंदिर पर इकट्ठे हुए लोगों का ध्यान उस पर गया। विनु कान्ता को देख खड़ा हो गया।

"आ गये? मै तो कल की राह देख रहा हूं।"

हंसती हंसती कान्ता ऊपर आई। गांव के लोग आसपास अपने नियत स्थान पर बैठ गये। पांच दस मिनिट में तो सारे गांव में कान्ता के आगमन के समाचार फैल गये। घर घर से लोग बाग उलटने लगे—और मंदिर के आसपास इकट्ठे हो गये।

विनु—डेढ महीने पहिले का विनु न रहा था। दुबला हो गया था। नेत्र चिंता और व्यथा से मानों भरे थे। अनंत के जाने के बाद से उसे तीन बजे ही उठना पड़ता; और दस बजे तक लगातार काम में लगा रहना पड़ता। गांव के लोग मना करते पर विनु हंस देता।

बंबई जाने के पूर्व अनंत के समाचार मिले थे, इसके बाद कुछ नहीं। विनु सोचता शायद अनंत फिर लौट आवेगा। पर न कोई समाचार आये, न अनंत ही आया—तो उसका हृदय दुःख से पसीज उठा। वह निराश हो उठा। दो दिन तक कुछ काम न

सूझा–अनमना-सा रहा। किन्तु तीसरे दिन–एक पागल अवधूत की भाँति वह उठा और उसने निश्चय किया परवाह नहीं–वह अकेला ही तनतोड मिहनत करेगा–और जो अग्नि चेताई है उसे कदापि न बुझने देगा।

गांव के लोग विनु को अधिक आदर और सन्मान से देखने लगे। उन्हें वह बालयोगी-सा जंचने लगा। अकेला अनंत जिस प्रेम से प्रभावित होकर अपना कार्य करता चला जा रहा था–गांव के लोगों पर इसकी खूब असर पड़ी।

विनु गांव के लोगों को पहचानता था, पर अभी इस बात को ठीक तय न कर पाया था। कितनों के घर दो जून रोटी पकती हैं–कितनों को भरपेट खाना मिलता है–कितनों को दूध मयस्सर है–किन्तु जब उसने यह तलाश भी शुरू की–वह सहम उठा–उसने घी और दूध को तिलांजलि दी।

विनु को शरीर की आवश्यकता थी। आरोग्य की उपयोगिता और आवश्यकता वह समझता था–पर रामपुर के गरीब से गरीब किसान जैसा जीवन वह व्यतीत न करने लगे तब तक वह किस प्रकार सुखी रह सकता था? विनु ने रोटी–छाछ और प्याज पर ही निभना मंजूर रक्खा और तनतोड़ गांव के कार्य में लग गया।

हमेशा उसे अनंत की याद आती। अनंत के साथ उसने लंबे पांच वर्ष बिताये थे। अनेक रात्रियां जीवन के मनोरथ बनाने में–जीवन के स्वप्न रचने में–बिताई थीं। एक ही वेदी पर बलिदान देने का निश्चय किया था जिसने–उस अनंत को कैसे भुलाया जा सकता है? पर जब अनंत की याद उसे बहुत सताती–उसे लगता वह स्वार्थी है–उसे भारतमैया पर सच्चा प्रेम नहीं। अगर सच्चा

प्रेम होता तो एक अनंत को खोकर कैसे दुःखी होता—जब कि उसी माता के असंख्य बाल हीन दशा में कंगाल बने गड़े हैं ? और विनु अपनी इन प्रेममयी मीठी भावनाओं को सेवा की वेदीपर जला कर भस्मीभूत करने का अथाग परिश्रम करता ।

ऐसे विनु के पास आज कान्ता बैठी है और आसपास बैठा है सारा रामपुर । गांव लोगों को विनु ने कान्ता का परिचय दिया। उसने कहा रामपुर का कल्याण करने को वे यहां आई हैं—पर कान्ता ने कहा कि सच तो वह अपना ही कल्याण करने आई है। विनु ने हंसते हंसते इस बात का अनुमोदन किया ।

लंबी रात तक बातें होती रहीं । गांव के लोग कान्ता के आगमन से हर्षित हो उठे । विनु का तप देख कान्ता आश्चर्यान्वित हुई ।

उस अमावस्या की आधी रात के बाद विनु, कान्ता और कृपेश ने उस मंदिर में बिस्तर बिछाये—निद्रा करने ।

४२

रामपुर में

नियमानुसार विनु की आखें तीन बजे सुबह खुल गई। शरीर में थकावट-सी मालूम हुई पर उठ खड़ा हुआ। नदी की ओर चल दिया। चारेक बजे स्नानादि नित्यकर्म से निमट वापिस आया। बत्ती जलाई। कान्ता गाढ निद्रा में पड़ी हुई थी। विनु ने देखा कान्ता कैसी शांत सो रही है! चरखा उठाया और कातने लगा।

कुछ देर बाद चरखे के मधुर संगीत ने कान्ता को जगाया। कृपेश भी उठा। कृपेश नदी की ओर चल दिया—कान्ता बिस्तर में बैठ आसपास देखने लगी।

"कब उठे?" कान्ता ने पूछा।

"तीनेक बजे।"

"इतना जल्दी?"

"और भी तो काम करना है न" हंसते हंसते विनोद ने कहा। कान्ता ने दिनचर्या जान ली। कुछ देर में कात कर वह उठा।

हमेश विनु छ बजे खेतों में जाता पर आज उसे कान्ता से बातचीत करनी थी—न गया।

विनु की उम्र अनंत जितनी ही थी—फिर भी विनु मानों उस से बड़ा है ऐसा कान्ता को लगने लगा। ज्यों ज्यों कान्ता विनु की बातें सुनती थी—उसके हृदय में विनु के प्रति आदर और पूज्यभाव बढ़ने लगे।

आसपास की बातों के बाद, अनंत की बात छिड़ गई। कान्ता को अनंत के लिये अधिक भाव था या विनु के लिये यह कहना कठिन है। दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे मानों अनंत उन्हीं का आत्मजन हो।

"कान्ता बहिन!" विनु बोला, "अनंत को तुम्हीं एक पत्र लिखो तो? तुम्हारे पास उसका पता तो है।"

"मुझे भी इच्छा तो होती है कि लिखूं या खुद बंबई जाऊं—पर फिर होता है अभी ठहर जाऊं।"

"ठीक है। काम शुरू हो जाने दो। बाद को ही जाना।"

"मेरी इच्छा अमृतपुर जाकर कार्य करने की है।"

"ठीक है। इच्छा हो तो आज ही चलें।"

"मेरी तो इच्छा है—मैं अकेली ही जाऊं।"

"ओह! तब तो कहना ही क्या?" हर्ष में विनु ने कहा।

"मुझे पहिले तो अकेले जाने की हिम्मत न थी। लोगों का डर नहीं किन्तु आत्मश्रद्धा की कमी ही समझिये। पर मुझे होता है मुझे अपने में श्रद्धा होनी चाहिये—रास्ता तो आप ही सूझ जायगा।"

"मुझे हर्ष है तुम अपने पैरों पर खड़ा रहना चाहती हो। रास्ते की बात-सो तो आप ही सूझने लगेगा। चिंता की कोई बात नहीं। सहकार की आवश्यकता है ही-किन्तु हरेक में अकेले ही लड़ने की तत्परता, तमन्ना और शक्ति होना आवश्यक है। सहकार सबसे रखना चाहिये-पर उड़ना तो अपने ही पंखों से।"

कान्ता को इस वार्तालाप से खूब प्रोत्साहन मिला।

"मैं चार पांच दिन यहां ठहर कर तुम्हारे कामों का निरीक्षण करूंगी-बाद को अमृतपुर जाऊंगी।"

विनु ने कहा "ठीक है।"

दोपहर तक बातें होती रहीं।

शाम को टहलने के लिये तैयार हुई-आशा थी विनु भी साथ आयगा-पर विनु ने अनंत के जाने के बाद शाम की हवाखोरी छोड़ दी थी-और उस समय वह किसानों की गायों की सेवा में बिताता। उसने कहा "तुम अकेली नहीं जा सकती?"

कान्ता चुप रही। विनु उसके भाव समझ बोला, "इसी ओर अपनी बाड़ी है। कृपेश गांव के कुमारों के साथ काम करता हुआ वहां मिलेगा। वहां से सूर्यास्त भी अच्छा दिखाई देगा।"

कहां संग्राम के दिनों का रामपुर और कहां आज का रामपुर? स्वच्छ और खड्डे टेकरे बिना के रस्ते को देख कान्ता खुश हुई। गांव के बाहर या आसपास जरा भी गंदी दिखाई न दी। उसने सोचा-वह भी अमृतपुर इतना ही स्वच्छ इतना ही सुंदर बनावेगी।

कुछ देर में बाड़ी के पास आन पहुंची। कृपेश और उसका साथीलोग दिखाई न दिये। दूर दूर से किसी की बुलंद आवाज

आ रही थी—उसने उस ओर देखा। वहां दूर नदी की रेती में बीस पच्चीस लड़के खेल रहे थे। बाड़ी में से हो कान्ता नदी की ओर चल दी। कान्ता को देख बालकों ने नारा लगाया 'वन्देमातरम्।'

कान्ता ने कहा 'वन्देमातरम्।'

रात तक कुमारों के खेलकूद वह देखती रही। कान्ता को सोलह वर्ष का कृपेश अच्छा लगा। उसकी सुंदर भोली निर्दोष सूरत देख कान्ता मुग्ध हो गई।

गाढ अंधकार जब चारों ओर छा गया—कुमारों के साथ कान्ता वापिस लौटी। गांव में दाखिल होते ही 'वन्देमातरम्'की आवाज़ें लगाते बालकवृन्द बिखर गये—अपने अपने घर चल दिये। मन्दिर में दिये जल गये थे; और लोगबाग इकट्ठे होने लगे थे। कृपेश साश्चर्य देख रहा था—आज ये लोग क्यों इतने जल्दी यहां इकट्ठे होने लगे हैं? पर देखा तो मंदिर में सुमन और चन्द्रा बैठे हैं। कान्ता के आश्चर्य की अवधि न थी।

कान्ता को देखते ही सुमन उठा और आगे आया। उसके मुख पर हर्ष और उल्लास छा रहा था—चंद्रा गोद में लेटे अनिल के साथ हर्ष से कान्ता की ओर देख रही थी।

४३

मूक वेदना

अनंत जब जागा तो अपने को अकेला पाया। वह हताश हो गया था—शरीर में मानों कुछ बल ही न रहा—सत्त्व ही न रहा। उसने अत्यंत थकावट सहित आसपास देखा। अंत में उसने सिरहाने पर थककर अपना सिर पटक दिया।

छ दिन के बुखार ने उसके शरीर को पीस डाला था। कल के बुखार ने तो उसे जीवन से हताश बना दिया—उसे लगने लगा उसके जीवन-तंतु अब दूर दूर हो रहे हैं और उसके बचने की आशा नहीं। उसे अपने जीवन के प्रति उदासीनता आने लगी—उसे लगा बहतर है वह इस संसार से बिदा हो।

बुखार से क्षीण बना हुआ अनंत कल्पना के जगत में विचरने लगा। अतीत का सारा जीवन उसकी आखों के सामने नाचने लगा। एक एक प्रियजन याद आने लगा—दस वर्ष का जीवन सामने खड़ा हो गया।

विद्युत के चमत्कार की भाँति एक विचार आया। मरना ही है तो रामपुर में ही क्यों न मरूं? विनु के लिखे हुए शब्द उसके सामने नाचने लगे—'रामपुर की धरती जो तेरी और मेरी

माता है–तेरे वियोग को कैसे सह सकेगी ?' अनंत को याद आये रामपुर के वे घटादार वृक्ष और आम्र-कुंज। किलकिलाहट करते हुए पक्षियों का गान और निनाद करती हुई बहती भादर। वे मनोहर बाडियां और लहलहाते खेत। रामपुर के ग्रामवासी और भादर की रेत में खेलते हुए बालकवृन्द ! !

अनंत ने नेत्र मूंद लिये और कितनी देर तक वैसे ही पड़ा रहा–उसे लगा मानों वह कोई अथाग नीरव शांति में डूब गया है। उसे लगा मानों उसका आत्मा अब उड़ता हुआ चला जा रहा है और चेतनाहीन देह अब पड़ा है।

जब नेत्र खोले तो वही कमरा था–वही वातावरण था-वही बिस्तर था–क्या वह इसी प्रकार मर जायगा ? कहां फांसी पर चढ़–कर देश की वेदी पर मरने के स्वप्न–कहां यह मृत्यु !

"मैंने ही इस अवस्था का स्वीकार किया है–मेरा आत्मा तो मर चुका है–मैंने ही उसकी हत्या की है–कुटुंब–कुटुंब ! ! कुटुंब के चार मनुष्यों के पीछे–तमाम आदर्शों को–भारत मैया की सेवा को–मैंने तिलांजलि दिया–छि..." वह बोला।

"पर अब ! शरीर छिन्नभिन्न होता जा रहा है–हो गया है–अब ? रामपुर जाकर भी क्या करूं ?"

इन्हीं विचारों में जब अनंत पछाड़ें खा रहा था दिनुभाई आये। दिनुभाई के हाथ में एक पत्र था। अनंत समझ गया पिताजी का होगा।

अनंत ने पत्र पढ़कर एक ओर रख दिया।

"पिताजी का पत्र है ?"

"हां" पत्र देते हुए अनंत ने कहा। दिनुभाई ने पत्र पढ़कर कहा "मैं अभी ही तार कर देता हूं।"

"न-न-ऐसा मत करना-कृपा कर।"

"तो उन्हें यहां आने देना है?"

अनंत निरुत्तर था।

"मैं तार करता हूं कि चिंताजनक कुछ नहीं। वे आवें। हवा तबदीली की आवश्यकता है।"

अनंत की अर्ध सम्मति ले दिनुभाई तार करने चल दिये।

अनंत को घर के खयाल आने लगे। माता की मृत्यु याद आई। घर का कर्ज-कमला, कुसुम...विचारों की परंपराएं बंध गईं।

इसी समय दिनुभाई आये।

"किसी और को समाचार देने हैं?"

"और किसको?" अनंत सोचने लगा। विनु याद आया-कान्ता याद आई। पर उन्हें इत्तला देने से फायदा? उसने सिर हिलाया 'न'।

मोसंबी का रस पिला दिनुभाई बाहर गये-अनंत फिर विचार में पड़ा "विनु को बुलाऊं? उसका सान्निध्य मुझे शान्ति देगा। कान्ता को? वह क्यों आने लगी?" अनंत को अचानक याद आया "उसका क्या हुआ होगा? उसकी शादी हो गई होगी?" अनंत कांपने लगा "मैंने उसे वचन दिया था-उसका क्या हुआ होगा-मेरे विश्वास पर..."

कान्ता की तेजस्वी गंभीर मुखमुद्रा सामने आई । रोषभरी आंखे और उग्र चहरा देख वह डर गया । उसने अपने हाथों से नेत्र मूंद लिये—उस दृश्य को मानों हटाने का प्रयास करते हुए ।

दस के बदले बारह बजे पर बुखार न आया । अनंत को इसका खयाल न था । जब बारह के डंके बजे—तो अनंत को याद आया । बुखार न आया था पर अशक्ति बहुत ही महसूस होती थी । पिता आंयगे इस खयाल से वह अधिक दुःखी हुआ ।

अनंत को विनु के सानिध्य की अधिक आवश्यकता लगी । उसे बुलाना ही चाहिये । उसके आने से तसल्ली होगी—वह दिल लगेगा । विनु की प्रेममयी मूर्ति उसके सामने नाचने लगी—उसकी आंखें छल छला आईं । वह चिल्ला उठा "दिनुभाई !"

दिनुभाई आये "क्या है अनंत ?"

"विनु को तार कर दो न । फौरन चला आवे ।"

दिनुभाई अनंत के दर्दभरे मुंह की ओर तांकते रहे ।

"जाओ न भैया !" करुणा से सने शब्द निकले ।

दिनुभाई चल दिये—विनोद को तार करने ।

४८

मिलन

कान्ता अमृतपुर हो आई। अमृतपुर रामपुर से बारह मील के फासले पर था। रामपुर जितना ही गांव था। जो रामपुर के प्रश्न थे वे ही अमृतपुर के भी थे। पर वहां एक कमी थी—नैसर्गिक शोभा की। रामपुर के जीवन में अमृत बरसाने वाली भादर नदी वहां न थी। पानी का भी अधिक दुःख था। वृक्षों के झुरमुट भी इतने नहीं। पर कान्ता ने यह स्थल ही पसंद किया। एक ही ममता से वह वहां गई थी—उसी स्थल से उसने राष्ट्रजीवन का अमृत पिया था। वहीं पर जीवन का बलिदान देकर संजीवनी बनने के स्वप्न उसने रचे। उस अमृतपुर को वह कैसे छोड़ सकती है?

विनु को भी यह ठीक लगा। सुमन और चंद्रा के लिये विनु ने चंदनपुर पसंद किया। वे वहां अपना डेरा ले गये। सुमन की माता न आई—न आ सकीं। सुमन के समझाने पर भी वे न मानीं, बोलीं, "अगर तेरे चचा न पटेगी तो तेरे पिता की पूंजी ले अलग मकान किराये पर ठीक कर भगवद्भजन में जीवन बिता दूंगी—पर गाम में न आऊंगी।" सुमन को तसल्ली थी माता को

इतना दुःख न हुआ जितना उसे डर था। चंद्रा की खास इच्छा भावनगर छोड़ने की न थी—किन्तु जब सुमन को अपने निश्चय पर दृढ देखा तो आने को तैयार हो गई। सुमन की इच्छा तो रामपुर में ही रहने को थी पर विनु ने कहा "बहतर है वह और चंद्रा बहिन चंदनपुर में ही जाकर अपना कार्य शुरू कर दें।"

अमृतपुर और चंदनपुर की बात तय कर, गांवों का निरीक्षण कर—अलग अलग अपने स्थानों पर जाने ही के लिये सब लोग रामपुर में इकट्ठे हुए थे। चंद्रा सुमन और कान्ता जब जाने की तैयारियां कर रहे थे कि विनोद ने कहा "अब अनंत को पत्र लिखना चाहिये न?"

"अवश्य" कान्ता ने कहा।

"तो आज ही लिख डालना चाहिये। मैं भी लिखता हूं सुमन भी कुछ लिखेगा।"

कान्ता उठी और एक ओर बैठ पत्र लिखने लगी।

विनोद और सुमन अनंत की बातें करने लगे। इसी समय विनोद की दृष्टि सामने की गली में पड़ी। एक हलकारा[1] स्टेशन की ओर से आता दिखाई दिया। हलकारे ने एक तार विनोद के हाथ में रक्खा। कान्ता भी पत्र उधर रख दौड़ी।

विनोद ने तार के कवर को चीर तार पढ़ा और सुमन के हाथ में सरका दिया। सुमन ने तार कान्ता को दिया। तीनों के मुख पर चिंता की छाया स्पष्ट दिखाई देती थी। तार की बात फैलते ही गांव के लोग मन्दिर की ओर आने लगे।

कुछ क्षण में तो अनंत की बीमारी के समाचार चारों ओर फैल गये।

"तो मै जाता हूं" विनोद ने गंभीर मुखमुद्रा से कहा।

"मै भी चलूं?" कान्ता ने आतुरता से पूछा।

"अच्छा।"

"तुम लोग लौटोगे तब तक मैं यहीं रहूंगा। अनंत को ठीक होते ही यहां ले आना।" सुमन बोला।

विनोद बिना कुछ कहे तैयार हो गया। कान्ता तैयार थी।

"हम लोग बड़ी मुश्किल से गाड़ी के समय पर पहुंच सकेंगें" विनोद ने कहा।

कान्ता और विनोद चल दिये—स्टेशन की राह।

अनंत की बीमारी के समाचार ने विनोद का स्थिर हृदय डुला दिया। अनंत के बंबई चले जाने से कान्ता के हृदय में रोष की जो चिनगारी प्रकटी थी—इस समाचार से बुझ गई। समाचार ने उसके हृदय में ममता और करूणा जगा दी।

बिना कुछ बोले एक डिब्बे में बैठ गये। आज गाड़ी क्यों इतनी धीमी चल रही है? क्या हो गया है गाड़ी को? रात को पटरी पर ही दोनों सो गये पर नींद एक क्षण के लिये भी न आई। भोर होते होते गाड़ी वीरमगाम के स्टेशन पर आ पहुंची। गाड़ी बदलनी थी। दोनों नीचे प्लेटफोर्मपर उतरे। सहसा विनोद की दृष्टि अमुभाई पर पड़ी। दोनों उसी ओर चल दिये। जिस डिब्बे में अमुभाई अभी ही चढ़े थे उसी पर कान्ता और विनु आ धमके!

"तुम ?" अमुभाई बोले

"हूं।" और इस शब्द ने तमाम हालात कह दिये।

"उसने मुझे लिखा भी नहीं कि उसकी स्थिति इतनी खराब है।"

"तुम्हें भी कुछ समाचार न दिये गये ? हमारी ही तरह कल तार मिला ?"

"तीन दिन पहले शेठजी का पत्र था कि उसे मामूली बुखार आता है। पर मेरा दिल खटकता था–मैंने तो लिखा तार से समाचार भेजो।"

कुछ देर वे चुप बैठे रहे फिर बोले "मेरी ही गलती है। उसे बंबई भेजना ही न चाहिये था। उसका मन वहां जाने को था ही नहीं।"

कान्ता को अपने पिता की याद आई।

स्टेशन पर दिनुभाई आये थे। विनोद और दीनानाथ भेट पड़े। "कितने दिनों बाद मिले हैं मित्र ?"

"अनंत को कैसे है ?" विनु ने पूछा।

"कल से–तार करने के बाद से–बुखार नहीं है। हां, अभी कमजोरी बहुत है। बिलकुल हड्डी-पसली हो गया है।"

बंगले पर आये। अनंत जग रहा था। पिताजी को तथा विनु को अंदर आते देख उसकी आंखें हंस उठीं। कान्ता को

आसपास रक्खी कुर्सियों पर सब बैठ गये । सब चुप थे पर एक दूसरे के हृदय बोल रहे थे । कान्ता अनंत के फीके मुंह की ओर देख रही थी–अनंत ने आंखें मूंद लीं । "पत्र भी न लिखा रे ?" पिता बोल उठे । अनंत ने देखा–पिता की आंखों से अश्रु बह रहे थे ।

दिनुभाई समझ गये । वे अमुभाई के पास आये, उनका हाथ पकड़कर बोले–

"आप लोग थक गये हैं । चलिये । स्नान वान कीजिये ।"

अमुभाई उठें । कोट और पघड़ी उतारकर खूंटी पर लटका दिये ।

"अनंत ! " विनु अनंत की खाट पर बैठता हुआ बोला ।

अनंत ने अपने दोनों हाथ विनु की गोद में डाल दिये और करवट बदली । उसकी सूखी आखें गीलीं थीं । वह न बोल सका । हृदय मानों बाहर निकलना चाहता था । कान्ता पास खड़ी खड़ी इन मित्रों का मिलन देख रही थी । मुश्किल से अनंत के मुख से शब्द निकले "कान्ता ! विनु !"–

४५

यह परिवर्तन !

कुछ देर बाद कान्ता और विनु उठे और कमरे के बाहर हो लिये। अनंत शांति से लेट रहा। पिता कब उसके पास आकर बैठ गये—उसे पता न पड़ा।

"मुझे लिखा भी नहीं बेटा !"

"क्या लिखता पिताजी ? फ़िजूल की चिन्ता में डालना ?"

"पर इस प्रकार अचानक बुखार कैसे आ गया ?"

"अचानक नहीं आया। शरीर का भी कसूर है ? उसके ऊपर जो अत्याचार किया है—मैं ही जानता हूं।"

अमुभाई अनंत के भावार्थ को न समझ सके। अक्सर ऐसा ही होता है।

"जिस दिन से आया हूं—न नींद आई है—न कुछ भाया है।"

अमुभाई भयभीत दृष्टि से अनंत को तांक रहे थे।

"तो मैंने ही तुझे जानबुझकर इस बीमारी में डाला है न ?"

अनंत को लगा उसने अपने पिता का दिल दुखाया है। मौन रहना उसने ठीक समझा।

"अब क्या करना है? कल राजकोट चल दें?"

"राजकोट?" वह बोला–फिर सोचने लगा–रामपुर जाय या राजकोट! यहां से जाना तो था ही।

"हां! देश के हवा पानी से ठीक हो जायगा।" पिता ने कहा।

'पर राजकोट?" अनंत ने कहा और फिर अटका।

"क्या?"

"राजकोट में मुझे शान्ति न मिलेगी। रामपुर जाऊं तो?"

"रामपुर?" अमुभाई ने साश्चर्य पूछा।

"हां!"

"वहां क्या सुभीते मिल सकते ह? न वैद्य न डाक्टर।"

"मुझे डाक्टर बाक्टर की जरूरत नहीं। मै रामपुर में चंगा हो जाऊंगा।"

"पर...रामपुर नहीं।" पिता के आवाज में भय था।

"तो मै अच्छा नहीं हो सकता।"

अमुभाई डर गये। "मैं अच्छा नहीं हो सकता" ये शब्द उनके मन में गूंज उठे। वे डर गये। क्या उनका पुत्र अच्छा न होगा? वे इसकी कल्पना ही न कर सके।

"तो तेरी इच्छा हो सो करना।"

पास ही के कमरे में कान्ता, विनोद और दीनानाथ बातें कर रहे थे।

"अभी हमें अनंत से कुछ बातें न करना चाहिये। उसे पूर्ण शान्ति और आराम की आवश्यकता है" विनु ने कहा।

"अभी तो उसे रामपुर ले चलें। वहां वह जल्द ठीक हो जायगा।" दिनुभाई ने कहा।

"हां-उन्हें मर्ज़ यही है" कान्ता ने कहा।

"मैं इस इतिहास में अनभिज्ञ हूं-पर यह अवश्य देख सका हूं-उसे चैन नहीं-यहां शान्ति नहीं। मुझे जानने की तीव्र उत्कंठा थी किन्तु अपने आप को बलपूर्वक रोका है। युवकों को कैसे कैसे मनोमन्थन भुगतने पड़ते हैं !" दिनुभाई अन्तिम वाक्य वेदनापूर्वक बोले।

"यह सब परिणाम अत्यंत भावुकता का है।"

"न, विनु! अपने कौटुंबिक प्रश्न ही ऐसे जटिल हैं। माता पिता की भावनाएं-झेलने जैसी न हों-फिर भी वे हमें छूती अवश्य हैं। और चूंकि हम सत्य ढूंढना चाहते हैं हमें इन भावनाओं के संघर्ष में आना ही पड़ता है।"

"दिनुभाई!" कान्ता बीच ही में बोल उठी, "तुम तो विलायत जानेवाले थे न?"

"हां। जानेवाला था। पर न गया।"

"सुशीला बहिन कहां हैं?"

"तुम्हें शायद याद न होगा–सुशीला और मेरी शादी हो गई। सुशीला सूरत है। हम दोनों सूरत के गांवों में काम शुरू करनेवाले हैं।"

ये समाचार कान्ता और विनु के लिये हर्षकारक थे।

"पर विलायत जाने का विचार कैसे छोड़ दिया?"

"मैंने नहीं छोड़ा! सुशीला ने छुड़ाया। यह समय मैंने विलायत जाने या न जाने के विचार में ही बिता दिया। जेल में से आने के बाद अनेक मांगी बिन मांगी सलाहें मिलीं। किसीने कहा अब मुझे ये सब ढोंग ढकोसले फेंक देना चाहिये–किसीने कहा ग्रामोद्धार के काम में लग जाना चाहिये। पर मैं सब सुनता रहा। पिताजी की इच्छा ही नहीं–आग्रह भी था कि मैं बैरिष्टर बन जाऊं।"

"ओ! तुम्हारे पिताजी भी यही चाहते थे?" हंसते हंसते कान्ता ने कहा।

"हां। पर बात यह थी, मुझे खुद को कुछ सूझता ही न था। लड़ाई खतम हुई–निराशा ले हम वापिस लौटे। सामने कुछ कार्यक्रम नहीं। क्या करना क्या न करना–कुछ सूझता ही न था। महत्वाकांक्षाएं तो बहुत थीं–बड़े बड़े स्वप्ने भी रचे थे–और आकाश में भी विचरते थे। पर सूझता कुछ न था। एक विचार आया। बैरिष्टर हो आऊं। खूब ज्ञान और अनुभव लेकर आऊं–और फिर सेवा-कार्य में जुट जाऊं। बस इस विचार ने पैर जमा लिये–और ओर कुछ मैं सोच न सका। इसके विरुद्ध कोई बोलता तो मैं अपने तर्क वितर्क से उन्हें शांत कर देता।"

विनोद और कान्ता यह सब ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

"किन्तु सुशीला ने मुझे परास्त कर दिया। तुम शायद जानते तो होगे कि हमारी मित्रता तो बहुत पुरानी–लड़ाई से भी पुरानी थी। उसके सामने मेरी एक न चली। वह कहती थी–अभी संग्राम खतम हुआ है–यह मानना ही मूर्खता है। संग्राम तब तक खतम नहीं हो सकता जब तक पूर्णस्वराज्य-प्राप्ति न हो। और इन दलीलों के सामने मैं चुप हो जाता। कहता–भई ज्ञान होगा तो सेवा भी अधिक अच्छी तरह से हो सकेगी–पर वह कहती–इन पांच वर्षों में तुमने कभी अपने में ज्ञान की कमी देखी? मैं कहता–पर अब इसकी कमी मालूम होती है–मैं यह सब कुछ कहने के लिये कहता पर मन कबूल न करता।"

कुछ ठहरकर वे बोलने लगे 'कान्ता बहिन! मनुष्य अपने आपको कितना धोखा देता है? संसार में ज्ञान का अभाव तो हमेश ही रहनेवाला है। और मैं पूछता हूं ज्ञान का उपयोग क्या है? अगर जनकल्याण के लिये ही ज्ञान की आवश्यकता हो, और उस ज्ञान को प्राप्त करने को मैं कटिबद्ध न होऊं–तो अवश्य मैं अपने आप को धोखा दे रहा हूं। पर मैं तो ज्ञान सेवा के लिये चाहता था। क्या सेवा करने जितना ज्ञान मुझ में न था? फिर वह आत्मवंचना क्यों? यह आत्मविडम्बना क्यों? क्या मैं न जानता था–देश की ऐसी गरीब स्थिति क्यों है? क्या मैं न जानता था उन कुरिवाजों और रिश्मों को–जिसके कारण आज देश अधोगति के गर्त में डूबा चला जा रहा है? क्या अस्पृश्यता और उसके भयंकर परिणामों को मैं न समझता था। पर न–मैं तो चाहता था बैरिष्टर बनना और बैरिष्टर बन अपनी अकड़ दिखाना–विलायत के तेजवर्तुल को अपने आसपास खींचना।"

संग्राम के दीनानाथ का चित्र विनु और कान्ता के सामने खड़ा हो गया।

"पर मैं सुशीला की दलीलों से ही समझनेवाला या परास्त होनेवाला न था। अगर मैं परास्त हुआ तो सुशीला के हृदय से-हृदय से उठती हुई आवाज़ से। भला मैं कैसे उसकी बात हटा सकता था?" अन्तिम शब्द प्रेम से सने थे।

"पिताजी को तो बहुत दुःख हुआ होगा" दिनुभाई के बंद होते ही विनु ने कहा।

"हां दुःख तो हुआ ही है—पर इस समय क्रोध की मात्रा अधिक है।" दिनुभाई ने कहा, "वे कहते हैं अगर मैं सेवा के कार्य में लग जाऊंगा तो वे अपनी जायदाद में से एक पाई भी न देंगे। मैंने कहा विनयपूर्वक की मुझे जायदाद की आवश्यकता नहीं पिताजी! और मगर मिली भी तो उसे भी मैं देश को ही अर्पण कर दूंगा।"

कान्ता दिनुभाई के शब्दों पर मुग्ध हो गई। वह समझ गई उसे पिता कि मिल्कत का क्या उपयोग करना चाहिये।

"तो हमें अब अमुभाई को समझाना पड़ेगा।" विनु ने कुछ देर बाद कहा।

"हां। इस समय उन्हें समझाना चाहिये कि वे भी रामपुर चलें; और जबतक अनंत को कतई ठीक न हो जाय—कुछ और बात न करें।"

तीनों मित्र अनंत के कमरे में आये। अनंत खाट पर खुले नेत्र लेटा हुआ था। चिंतातुर अमुभाई सामने कुर्सी पर बैठे थे। तीनों मित्र भी कुर्सी खींच पास बैठ गये।

४६

रामपुर के रास्ते

वातावरण में से गमगीनी दूर करने के लिये दिनुभाई ने अनेक मन बहलाने वाली बातें कहीं। रात के दस बजे तक सब अनंत के पास बैठे रहे। अनंत को आराम की आवश्यकता थी इस लिये सब उठे।

अमुभाई, विनु और कान्ता पास के कमरे में चले गये। दिनुभाई ने अनंत को दवाई पिलाई और मित्रों वाले कमरे में आकर बोले—

"तो सुबह की गाड़ी से चल दें?"

"हां। जितना जल्दी चला जाय उतना अच्छा।"

अमुभाई की ओर देखकर विनोद बोला "मैं कहता हूं—आप भी रामपुर चलें।"

"राजकोट आने में हर्ज है?"

"हर्ज तो कुछ नहीं—पर रामपुर में अधिक ठीक रहेगा।" दिनु ने कहा—फिर पास आकर कहा "देखिये अमुभाई! अनंत को कोई और रोग नहीं है। मानसिक बीमारी है। डाक्टर साहब

भी कहते थे अत्यंत मानसिक पीडा, भूख और अनिद्रा का ही यह सब कारण है। तुम यह तो जानते ही हो कि राजकोट आने के बाद ही यह बीमारी हुई है इसे।"

अमुभाई कुछ उत्तर न दे सके।

"इस में आपका कोई कसूर नहीं। आप तो अनंत के हित में ही राजी हैं—यह हम सब भली भाँति जानते हैं—किन्तु हमारे हृदय ही ऐसे हो गये हैं कि हमें घर में शान्ति नहीं मिलती। अखिल हिन्द ही मानों हमारा घर हो गया है।"

"तो अनंत अब रामपुर ही रहेगा?"

"वह तो अनंत ही तय करेगा—ठीक हो जाने के बाद। पर मैं तो कहूंगा अनंत रामपुर रहे यही अच्छा है—उसी में उसका श्रेय है—आपका भी।" दीनानाथ ने कहा।

"अमुभाई" विनु ने गंभीर स्वर से कहा, "अनंत घर आया और घर से यहां आया—यही ठीक न हुआ। उसका हृदय इतना विशाल है कि घर की दिवालों में वह रुंध जाता है—रुंध गया है। मैं तो कहता हूं आप भी रामपुर पधारें। आप को वहां अनुपम शांति मिलेगी। अनंत और हम आप ही के तो पुत्र हैं। चलिये तो सही और देखिये आपकी कितनी सेवा करते हैं हम लोग।"

किन्तु अमुभाई के दिल में यह बात न उतरी। उन्होंने देखा इन नौजवानों से वादविवाद करना व्यर्थ है—फिज़ूल है। वे समझ गये अनंत को बचाना है तो रामपुर जाने की राय देनी ही होगी। इधर उधर की टाल लगा अन्त में वे राजी हुए—रामपुर ले जाने को।

एकाध घंटे में सारे बंगले में शान्ति व्याप्त हो गई। सब सो गये थे—पर विनोद को नींद न आई। कान्ता भी करवटें बदल रही थी। विनोद उठा और अनंत के कमरे की ओर चला। अनंत के पास आ खड़ा रहा। अनंत कैसा शांत गाढ निद्रा में लेटा हुआ है! सामने दिवाल से सटे हुए पलंग पर दिनुभाई थकावट के चिह्न लेकर निद्राधीन हैं।

अनंत के मुंह की ओर टकटकी लगाये विनोद देखता रहा। हृदय में अनेक भाव उठते थे—अनेक शमते थे। यही है वह अनंत उसका बालसखा—संग्राम का मित्र और रामपुर का सहायक। आज लेटा है इतना क्षीण और दुर्बल। वह पास गया, अनंत के भालपर अपना हाथ रक्खा प्रेमपूर्वक। गरम गरम लगा। शायद बुखार आने की तैयारी है! हाथ खींच लिया। दिनुभाई को जगाने की इच्छा हुई। पर अनंत की निद्रा में भंग करना ठीक नहीं ऐसा जंचा—और विनु वापिस लौटा—बिस्तर पर बैठा पर नींद न आती थी। पास ही अमुभाई सो रहे थे। उनकी स्थितिपर दया आई!

विनोद लेटा। पर नींद कहां? करवटें बदलता रहा। तीन बजे। रोज का उठने का समय। विचारों के वेग के कारण सिर दुःखने लगा। क्या जीवन है—वह सोचने लगा। संसार में कितने लोग दुःखी है—कितने पीड़ित हैं। यह दशा कैसे सुधरेगी। यह सारा जीवन इसी प्रकार बीतेगा—पर इससे क्या? कितनों का दुःख वह मिटा सकेगा? वह खिड़की के पास गया। समुद्र के स्पर्श से शीतल हुआ मारुत् खिड़की में से उसे भिगोने लगा। विचार-धारा बढ़ने लगी। कृष्ण का संवाद याद आया—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

फिर अर्जुन को बोध देते हुए-उसे कर्म पर डटे रहने का आदेश देते हुए-कृष्ण याद आये-

"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"

उसका हृदय प्रेम से-भक्ति से-भीग गया। वह कौन? उसका धर्म है काम करनेका। फल के लिये आतुर होने वाला वह कौन? उसके मन में उसने एक अजीब संतोष का अनुभव किया। कितना शांत मीठा वायु बह रहा है! जीवन कितना मधुर है!! बस जिए जाओ-इसी प्रकार इसी आनंद में।

सुबह तक वह जागता ही रहा। न थकावट मालूम हुई न नींद की अलसाई।

प्रातःकाल होते ही विनोद ने सबको जगाया। कान्ता ने कहा "क्यों कल रातभर जागते रहे?"

"हां। रात को नींद न आई। पर तुमने कैसे जाना?"

"मैं भी जग रही थी। अनंत के कमरे से वापिस लौटे तब तक मेरी आंखें खुलीं थीं।"

"हूं! आज रात को न जाने कैसे नींद न आई। पर एक बात तय कर पाया हूं। अब देश की आजादी दूर नहीं। तुम्हारी जैसी बहिनें स्वार्थ को-सुख को-तिलांजलि दे हमारे साथ सेवाकार्य में जुट गई हैं-तो उद्धार दूर नहीं। देखते देखते गांवों का स्वरूप ही बदल जायगा।"

कान्ता चुप थी।

रामपुर जाने की तैयारियां होने लगीं। अमुभाई सुबह गोरधनदासजी शेठ साहब को मिल आये। शेठजी मोटर में आये

और अनंत को देख गये। दिनुभाई ने भी रामपुर आने की तैयारियां शुरू कर दीं।

अनंत ने कहा कि कीर्ति को समाचार देने की आवश्यकता है और बन सके तो वह अहमदाबाद स्टेशन मिले। तार दे दिया गया।

अनंत को रात के समय कमजोरी के कारण थोड़ा-सा बुखार आया था, पर वैसे तबियत अच्छी थी। अनंत की इच्छा तो तीसरे दरजे से चलने की थी, पर दीनानाथ के आग्रह से उसे और अमुभाई को दूसरे दरजे में बैठना पड़ा। विनोद और कान्ता तीसरे दरजे में ही बैठे।

जब गाडी चल दी तो अनंत को इतना अच्छा लगा मानों वह स्वर्ग में जा रहा है—जहां अब शांति और सुख है।

४७

अमुभाई न समझे

ज्यों ज्यों बंबई दूर दूर जाता गया—अनंत को लगने लगा मानों वह कोई असंख्य बंधनों को तोड़ता हुआ किसी आजाद प्रदेश की ओर चला जा रहा है। विनु और कान्ता के दर्शन मात्र से ही उसकी निराशा उड़ने लगी थी—सरपट दौड़ी जाती गाड़ी की खिडकी में से फूंकता हुआ पवन और सूर्य के किरण उसे इतने मीठे लगे मानों वे कोई आशा का संदेश लिये आ रहे हों।

इधर अमुभाई की स्थिति विचित्र थी। अनंत बीमार पड़ गया इसका दुःख तो था ही—पर अधिक दुःख होने लगा इस बात का कि अब अनंत वापिस न आयगा; रामपुर में ही रम जायगा। तर्क उठते, होता—क्यों बिचारे को संसार की माया, स्वार्थ और झंझट में लपेटा जाय—पर पचास वर्ष से व्यवहार के अनेक रंगों में रंगा हुआ उनका हृदय इस बात को स्वीकारना न चाहता था।

कितना प्रफुल्लित चहरा था आज अनंत का! उसको लगता था मानों वह अब बिलकुल ठीक है। न व्याधि है न उपाधि। उसने देखा, पास ही पिताजी विचारों में डूबे हैं—और सामने बैठे हैं विनुभाई—और वे भी विचारों में तल्लीन।

अगर उसे जीना ही है तो वह राष्ट्रीय-कार्य, राष्ट्र-सेवा बिना न जी सकेगा। उसके जीवन का रस उसी में है। उसके बिना वह जिंदा नहीं रह सकता।

उसने उस अगम्य, अदृश्य शक्ति को हाथ जोड़ते हुए कहा 'क्षमा करना देव। अगर मैं गलती करता हूं-मेरी इसमें भूल हो तो भी क्षमा करना। मैं और कुछ करने में असमर्थ हूं। जीवन का तथ्य ढूंढने में-मैंने खूब प्रयास किया। मार्ग-सत्य मार्ग ढूंढने के लिये मैंने अनेक प्रयत्न किये, किन्तु मैं असफल हुआ हूं-मुझे और कोई रास्ता नहीं सूझा है-बस बस यही दृढ निश्चय है।"

उसके नेत्र भीग गये थे। उसने पिता की ओर पत्थर भी पिघल जाय इतने करूणासने शब्दों में कहा-

"पिताजी! क्षमा करना। मैं विवश हूं। मैं राजकोट नहीं रह सकता।"

अमुभाई कुछ न बोले-न बोल सके। सजल नेत्रों से पुत्र की ओर देखते रहे।

अनंत ने अपने नेत्र खींच लिये। प्रबल वेग से अपने आंसुओं को रोका और खिड़की में से आसपास का दृश्य देखने लगा। पास के ही डिब्बे में कान्ता और विनोद बैठे थे। कान्ता का हाथ खिड़की के बाहर लटक रहा था। अनंत ने देखा और निर्भारधारा उस ओर बहने लगी। उसने कितनी देर तक उधर देखा ही किया! फिर कुछ शर्म-सी मालूम होने लगी और वह बोल उठा "यह सब धो डालूंगा।"

अनंत का मन अब एकाग्र होने लगा । विचारों की व्यग्रता दूर होने लगी । बस अब रामपुर में ही जीवन बिताऊंगा—उसने निश्चय किया ।

दोपहर तक बुखार न आया। सूरत स्टेशन पर विनु और कान्ता ने आकर समाचार पूछे । अनंत ने अत्यंत प्रसन्नता से दोनों के साथ बातें कीं, और दोनों अपने डिब्बे के लिये चल दिये । दिनुभाई भी अनंत की इजाजत ले उनके साथ गये । उस डिब्बे में मात्र रहे पिता और पुत्र ।

गाड़ी चल दी । अमुभाई के मुखपर निराशा भरी थी—मानों उनका सर्वस्व लूटकर उन्हें अकेला छोड़कर कोई भाग गया हो। अनंत को हुआ, क्या अपनी इस स्थिति में—कर्मयोगी की स्थिति में—अपने पिता को वह सुखी नहीं कर सकता ? पिता को सुखी किस प्रकार कर सकता है ?

मन को एकाग्र कर एक सन्यासी की भाँति वह विचार करने लगा ।—क्या पिता रामपुर में नहीं रह सकते ? वे वहां क्या कर सकते हैं ? वे बाड़ी में काम नहीं कर सकते ? आदर्श वैश्य-वणिक नहीं बन सकते ? पर इससे जीवन बिताने जितना मिल सकता है। पर कर्ज ? पिता के पास और कुछ नहीं है ? हां, दोएक हजार तो होंगे ही। दोएक हजार का जेवर होगा ! वे सब कुछ दे सकते हैं और कर्जदारों से कह सकते हैं—इससे अधिक कुछ नहीं है। अनंत को ये विचार ठीक लगे—पर सहसा दूसरा विचार आया 'कर्जदार मान जायगें ?'

अनंत को पिता के साथ बातचीत करने की इच्छा हुई। विचार हुआ, रामपुर जाकर ही ठीक रहेगा। पर अपने आपको

न रोक सका–वह बोला, "पिताजी ! आप रामपुर नहीं रह सकते ?"

"वहां क्या करूं ?" पिता ने पूछा।

"गांव में दूकान नहीं चल सकती ? रामपुर में बनिये की दो दूकानें हैं–पर तीसरी भी चल सकती है। किसानों का हित देखकर धंधा किया जाय तो अवश्य कुछ मिल सकता है–साथ मिल सकते हैं उनके आशीर्वाद भी।

"नहीं हो सकता भैया। वहां तो मुश्किल से रोटी निकल सकती है। यह इतना सारा कर्ज सिर पर खड़ा है–उसका क्या ?"

"जो कुछ अपने पास है कर्जदारों को अदा कर दिया जाय और उनसे कहा जाय–भाईसाब उससे अधिक देने की शक्ति नहीं। अगर कभी शक्ति हुई तो पाई पाई चुका देंगे।"

"पर अपने पास धरा क्या है ? दोएक हजार का गहना और वह पुराना खंडहर-सा मकान ! और घर पर तो तीन हजार उठाये हुए हैं।"

"वह सब दे दें।"

"फिर ? कल कमला की शादी करनी पड़ेगी। दो चार वर्ष बाद कुसुम की। यह सब खर्च कहां से लावेंगे ?"

कुसुम और कमला को तो वह भूल ही गया था। बोला–

"उनकी शादी में अपन एक पाई भी न खर्चें। और बापुजी ! आप रामपुर आवें तो कमला और कुसुम की शिक्षा में भी मैं मदद कर सकता हूं।"

अमुभाई को अधिक वादविवाद करना ठीक न लगा। वे बोले–

"तेरी मरजी हो तो तू रामपुर रहना । हम तो जैसे रहते चले आये हैं वैसे ही रहेंगें ।"

"पर आप ऐसा करें तो क्या बुरा है ? हम सब सुख से रह सकते हैं" अनंत ने फिर भी कहा ।

"हमें सुखी नहीं होना । तू रामपुर रहना-अगर तेरी ऐसी ही मरजी हो तो । तेरी तबियत ठीक होने तक मैं वहां रहूंगा । बाद को तू तेरे मार्ग पर, मै अपने ।"

अनंत कुछ कहना चाहता था पर अमुभाई ने कहा-

"सब फिजूल है अनंत ! मुझे तेरी बातें नहीं जंचती-तुझे मेरी । मुझे इतने से ही संतोष रहेगा कि मेरा लड़का कोई बुरा काम नहीं कर रहा है । और मुझे तेरे बीच में क्यों आना चाहिये ? अगर तुझे अपना कल्याण इसी में सूझता है-तो तू तेरे रास्ते-मैं अपने । मै कहता हूं-अब तू मुझे इस संबंध में कुछ न कहना ।" अमुभाई का आवाज़ मन्द हो गया था "बेटा ! और क्या कहूं । अपने शरीर की संभाल रखना । कभी कभी अपने पिता के पास राजकोट चला आना ताकि तुझे देख कभी कभी ये बुढे नेत्र ठंडे हों ।"

अनंत पिता के ये भावभीगें शब्द सुन दुःखी हुआ । पिता की बात सच जंची । वह पिता को न समझा सकेगा । यही काफी है पिता उसके भाव को-आदर्श को-समझ सके हैं ।

दिनुभाई, कान्ता और विनोद के ही पास बैठे रहे । गाड़ी ठहरते ही वह अनंत की खबर पूछ जाता । अनंत को आराम था । अहमदाबाद स्टेशन पर तीनों मित्र अनंत के पास आये । कीर्ति भी आता दिखाई दिया ।

४८

प्रेम और धर्म

कीर्ति अत्यंत प्रेमपूर्वक अनंत से मिला। अनंत की अवस्था देख उसे दुःख हुआ पर अनंत अब रामपुर जा रहा है—वहीं रहनेवाला है—सुनकर आनंदित हुआ। बिछुडा हुआ—गुमा हुआ स्वजन मिलने से जितना आनंद होता है उतना आनंद कीर्ति को हुआ।

मित्रों में अनेक बातें होती रहीं और स्टेशन का वातावरण मित्रों की हंसाहसी और कल्लोल से गूंज उठा। कीर्ति ने गाड़ी चलते चलते कहा 'हां अवश्य रामपुर आऊंगा।' गाड़ी वेग से चल दी।

रामपुर आया। रामपुर के स्टेशन से अनंत को गांव तक पहुंचाने का काम कठिन था। विनोद ने सोचा था गाड़ा मिला जाय। पर अनंत गाड़े में जा सकेगा? दिनुभाई तो व्यवस्था के लिये स्टेशन-मास्टर के पास दौड़े।

अनंत ने कहा वह मोटर में न जायगा। गाड़ा ही ठीक रहेगा। स्टेशन से आधेक मील के फासले के एक गांव में जा विनोद एक गाड़ा ठीक कर लाया।

अनंत गाड़े में बैठा। पहो फटने का समय था। आसपास का अंधकार बिखरने लगा था। गाड़ी की मुसाफिरी तथा गाड़े की चाल से अनंत का शरीर दुखता था, पर चित्त में अपूर्व शांति थी मानों उसे नया जन्म मिला हो। उसके रोम रोम पुलकित हो उठे थे मानों उस धरती की रज से—अणु अणु से—उसका अपूर्व प्रेम हो—अपूर्व नाता हो।

"विनुभई! कान्ता बहिन!" अनंत बोला। तीनों मित्र आये। "अब मैं ठीक हो जाऊंगा। मुझे यही रोग था। मैं समझ गया हूं। यह आसमान, यह धरती बंबई में—राजकोट में कहां? ये खेत! ये हवा!! कहां मिल सकते हैं?"

मित्रों ने सुना और उनके हर्ष का वारापार न रहा।

रामपुर आया। प्रभात के उजियाले में रामपुर के कच्चे मकान दिखाई देने लगे। शांत बहती हुई भादर नदी दिखाई दी—और आसपास के वृक्षों से मोर बोल उठे—मानों उसका स्वागत कर रहे हों।

गाड़ा गांव में दाखिल हुआ। गांव लोग सामने से आते दिखाई दिये। हरेक के मुख पर आनंद और विषाद की मिश्र रेखाएं थीं। अनंत ने देखा सामने ही खड़ा है सुमन और अनिल को गोद में लिये चंद्रा। एक ओर खड़ा था हंसता हुआ कृपेश। उसे इच्छा हुई वह नीचे उतर आय।

गाड़ा गांव के मन्दिर की ओर चल दिया। कृपेश और उसके साथियों ने पुकारा 'वन्देमातरम्।' अनंत बीमार है यह सब भूल गये। और एक क्षण के लिये तो विनु, कान्ता और दिनुभाई भी आनंद में विभोर हो उठे।

मन्दिर आते ही विनोद ने अनंत को धीरे से नीचे उतारा। अनंत को खड़ा देखकर जन-कोलाहल यकायक बंद हो गया। रामपुर का लाड़ला अनंत-हड्डी पसलियों का ढांचा बन गया है। अनंत ने सबको नमस्कार किया। विनोद और सुमन की सहायता से मन्दिर में दाखिल हुआ।

दूसरे दिन थकावट के कारण अनंत को बुखार आया; पर तीसरे दिन से उसे आराम होने लगा—और आठेक दिन में उसकी तबियत काफी अच्छी हो गई। अनंत का मन वैसे शांत था—मात्र पिता राजी नहीं है इस से उसे दुःख होता।

अनंत ने पिता को रामपुर ही में बस जाने को बहुत समझाया। विनोद ने भी कहा। पर वे न माने—मात्र बोले 'भई! यह सब अब तो आते जनम में करेंगे।'

अनंत को ठीक होते ही कान्ता अमृतपुर चली गई। सुमन और चंद्रा चंदनपुर गये। अमुभाई भी जाने को तैयार हुए। अनंत और विनु उन्हें स्टेशन पहुंचाने आये। स्टेशन पर पहुंचे पर गाड़ी आने में देर थी। तीनों उस उज्जड़-से स्टेशन पर बैठे। गंभीरता तीनों के मुख पर फैली हुई थी। आध घंटे बाद गाड़ी आई पर कोई कुछ न बोला—मात्र बोल रहे थे एक दूसरे के नेत्र और हृदय की कोमल भावनाएं।

अमुभाई ने गाड़ी में जगह ली। अनंत ने उनके पैरों में अपना सिर रक्खा—पिता ने पुत्र को छाती से लगा आशीर्वाद दिये। बोलना चाहा पर—गला रुंध गया।

गाड़ी ने सीटी दी। अनंत विनोद दूर हट गये। अमुभाई की आंखें छलछला आईं—और पुत्र और विनोद को छोड़ गाड़ी चल दी।

४९

सुमन निराश हुआ

सुमन और कान्ता रामपुर से साथ साथ ही निकले थे। चंदनपुर से ही अलग अलग होना था-बिदा लेनी थी। गांव की सीम पर एक बड़े-से बरगद के वृक्ष के नीचे वे लोग बैठ गये। काम की और इधर उधर की बातों के बाद अनंत की बातें करने लगे। कान्ता अत्यंत भाव और स्नेह से अनंत के विषय में बात करती थी। सुमन के मनोरथ जागे। बोला नहीं-पर मन में हवाई क़िले रचने लगा।

बिदा ले सुमन गांव में आया और अपने काम में लग गया। आठ दिन तक यही विचार उसके मन में चकराता रहा। उसे हुआ "अनंत अवश्य मान जायगा। पर विनोद से बातचीत करलूं।" उसने चंद्रा से यह बात कही-वह तो आनंद से नाचने लगी।

सुमन और चंद्रा रामपुर आये। नियम तो किया था-प्रत्येक माह सब मिले। सुमन को वापिस लौटा देख विनोद को आश्चर्य हुआ-समझा कार्य में कठिनता पड़ी होगी इसीसे आया होगा। पर सुमन ने तो कोई और ही बात की।

"नहीं। ऐसा नहीं हो सकता" विनोद ने कुछ विचार करके कहा।

"पर उस में हर्ज क्या है?"

"हर्ज? हर्ज कुछ नहीं। मैं मानता हूं कान्ता ब्रह्मचारिणी ही रहना पसंद करती है और अनंत के हृदय में इस विचार का अंकुर भी न फूटा होगा।"

"पर दोनों एक-से तेजस्वी हैं—एक ही आदर्श की साधना कर रहे हैं—एक दूसरे को चाहते हैं।"

"पर इससे शादी की आवश्यकता साबित नहीं होती।"

सुमन को जवाब ही न सूझा। उसने एक और ऊटपटांग-सा—विनोद को चमका देनेवाला प्रश्न पूछ डाला "विनु! तू कभी भी शादी करने वाला नहीं?"

एक पल में विनु के मुख के भाव बदल गये। कालिमा-सी छा गई। सामान्य तौर पर अजीब धैर्य रखनेवाला विनोद सन्न-सा हो गया।

सुमन ने वहां खड़ा रहना उचित न समझा—वह बाहर चल दिया।

कुछ देर बाद विनोद सुमन के पास गया और बोला "सुमन! तुझे शायद याद न होगा। अनंत के सिवा और कोई नहीं जानता। छिपाने की उसमें कोई बात भी नहीं। पर कहने से भी क्या फायदा? मैं अपरिणीत नहीं हूं—विधुर हूं।"

सुमन स्तब्ध खड़ा रहा।

"सोलह वर्ष का था तब पिताजी ने शादी की। पंद्रह साल की मेरी पत्नी थी। दो वर्ष बाद उसकी मृत्यु हुई। मौत सूतिकागृह में प्रसव के अवसर पर हुआ। मरी लड़की पैदा हुई थी। और तब मैं समझा जीवन क्या है? मेरे लिये अब जीवन प्रायश्चित्तरूप ही हो सकता है ऐसे लगने लगा। अपने दर्द और दुःखपर मैंने रख ढंक दी और अपना अभ्यास शुरू कर दिया। शायद मैं पढ़ भी न सकता, न जी सकता—यदि इस राष्ट्रीय संग्राम ने न चेतना दी होती।"

सुमन इस इतिहास से अनभिज्ञ था। सहसा वह पूछ उठा—

"अनंत के जीवन में भी कुछ ऐसा बना है?"

"न! मैं जानता हूं मेरे जीवन के अनुभव से उसे दुःख अवश्य है किन्तु उसकी अपरिणित अवस्था का यह कारण नहीं है।"

"तो और क्या कारण हो सकता है?"

"मुझे याद नहीं। पर इसकी आवयश्यकता भी क्या है? अब उसे शादी की आवश्यकता लगेगी आप कर लेगा। तू क्यों इतना आग्रह रखता है?"

सुमन कुछ न बोल सका। विनोदपर उसने आशा बांधी थी। विनोद सहकार अवश्य देगा वह—यह बात मान चुका था।

फिर भी सुमन हताश न हुआ। शाम को अनंत को लेकर वह घूमने चलदिया? एकाध मील चलकर दोनों नदी की रेत में

बैठ गये। इधर उधर की बातों के बाद, सुमन ने सकुचाते सकुचाते कहा। अनंत हंस दिया।

"अब तक यह बात तेने अपने दिल में रख रक्खी है रे सुमन !"

"अनंत ! पर मुझे यह होता है यह शादी एक आदर्श उपस्थित करेगी–और समाजपर इसकी अनोखी असर होगी।"

"अपरिणीत स्थिति से भी लग्न क्या एक ऊंचा आदर्श गिना जायगा ! छिः छिः सुमन ! तेरे मन में भी यह भूत कैसे पैठ गया रे ? हां...कान्ता को मैं स्नेह करता हूं–वह भी मुझे चाहती होगी। पर एक ही यज्ञवेदी पर खड़े होकर–देश की आज़ादी के मन्त्र गाते–एक ही साधना के पीछे झूमते–हम क्या ऐसे ही अच्छे नहीं लगते ? क्या यह स्थिति शादी से भी अधिक भव्य–ऊंची नहीं है ?"

सुमन चुप था।

"और शादी तो, मुझे लगता है, हृदय की भूख है। यदि मनुष्य को भीतर से धक्का लगता हो, उसके बिना चैन ही न पड़ता हो, इस भरे हुए जगत में भी उसे सूनापन लगता हो–मानों वह अकेला है–उसका कोई नहीं है, उसे ऐसा होता हो–मानों उसकी ओर कोई ममता दिखावे, उसके पास बैठा रहे–उसके सिर पर हाथ फेरता रहे–उसको कोई अहर्निश याद करता रहे–ऐसी इच्छावाला मनुष्य शादी करे यह समझ में आ सकता है–पर मुझे तो इसमें से कुछ भी तो नहीं होता सुमन ! मैं कान्ता को देखता हूं और उसमें भारत की स्त्री-शक्ति का दर्शन पाता हूं। सुमन ! तू न

मानेगा–मैं अन्तर से उसे पूजता हूं। कान्ता में अद्भुत शक्ति है–अद्भुत धैर्य है–दृढ़ता है, श्रद्धा है–मुझे विश्वास है, अपनी मरी हुई राष्ट्रीय अस्मिता की वह संजीवनी बनेगी।”

सुमन चुप था। अनंत के शब्दों ने कान्ता के लिये उसे श्रद्धा पैदा की। जिस आशा को साथ ले आया था–उसे तिलांजलि दी और चंद्रा को ले वापिस लौटा चंदनपुर!

अनूठा—मौलिक उपन्यास

घर की राह

ले. इन्द्र वसावड़ा

प्रेमचंदजी:—इस रचना में जो मौलिकता, चरित्रों के मर्म तक पहुंचने की जो शक्ति, कल्पना का जो विस्तार, वर्णन शैली का जो प्रवाह है, वह कह रहा है कि यहां ऊंचे दरजे की प्रतिभा है, और वह चुप बैठने वाली नहीं! यह उपन्यास इस बात का प्रमाण है कि हमारे साहित्य का भविष्य कितना आशा-पूर्ण है। चरित्रों का इतना सजीव दर्शन और हमारी दुर्बलताओं पर इतना कठोर संयम और भिन्नभिन्न परिस्थितियों की इतनी गहरी अनुभूति, उपन्यास-कला के ये सभी अंग इस तरह मिल गये हैं कि यह उपन्यास जीवन का जीता जागता चित्र बन गया है।

मेघाणीजी:—सोमवार का प्रभात पड़ता है और मंगलवार की संध्या की छाया मन पर गाढ़ बनती है। क्योंकि बुधवार की 'कलम किताब' में पुस्तकों का अवलोकन लेना है। सोमवार के बारह बजते हैं—और मेरे भी बजते हैं—इतनी दाज़ चढ़ती हैं—इन तमाम पुस्तकों का ढेर सम्पादक के सिर पटक

आऊं ? किन्तु इस गर्म मनोदशा पर गत एक घंटे ने शीतलता छिड़की है । अकस्मात् से इस कचरे के ढेर में से एक सांत्वन की वस्तु प्राप्त हुइ है ।...बस इस एक ही पुस्तक ने आज का सोमवार मीठा किया है ।

जनार्दनराय नागरः—इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र वसावड़ाजी के परिचित संसार में रहनेवाली जीती जागती मूर्तियों की वर्षों संसर्गित प्रेरणाओं पर रचा गया है ।...वसावड़ाजी की यह प्रवृत्ति बहुत कुछ 'हार्डियन' सी मालूम होती है । अपने पात्रों को इतना सजीव और मूर्तिमान करने का सारा श्रेय लेखक की इस 'जेन अस्टिन' की-सी लालसा को है...

रानी जीजी लेखक के दिल का सारा सौंदर्य, सारी कोमलता, सारी करुणा और स्नेह की पूर्ति है । उसने हमें रुला दिया...रानी जीजी हमारी राय में वसावड़ाजी की कोमल उदात्त समवेदना तथा उदार मानवता की प्रतिनिधि है—अतः कलम की भी । 'पानी पीकर आंचल से मुंह पूंछना' रानी जीजी के सारे अन्तर बाहर की कल्पना के लिये बस है ।

सुंदर छपाई २३० पृष्ठ मू. १।)
हमारे ग्राहकों को पौने मूल्य में।

मिलने का पता :—

भारती साहित्य संघ
पानकोर नाका
अहमदाबाद